भारत में धर्म संबंधी मानवाधिकार एवं अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की
एल-एल. डी. उपाधि हेतु
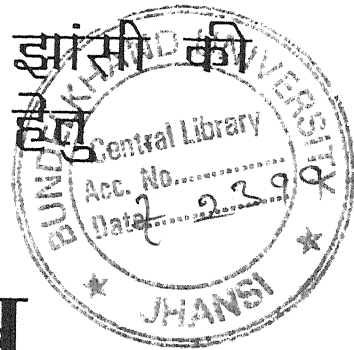
शोध-प्रबंध
२००२

निर्देशक
डॉ. प्रो. जे. डी. सिंह
विधि विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय
झांसी (उ.प्र.)

प्रस्तुति
कु. ज्योति जैन
एम.ए, एल-एल. एम.
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,
झांसी (उ.प्र.)

विधि संकाय
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी (उ.प्र.)

2002

घोषणा-पत्र

मैं घोषणा करती हूँ कि यह शोध-प्रबंध जिसका शीर्षक **''भारत में धर्म संबंधी मानवाधिकार और अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न''** है, मेरा मौलिक कार्य है जिसे मैंने प्रो. जे.डी. सिंह विधि-विभाग बुन्देलखण्ड कॉलेज, झांसी के कुशल निर्देशन में शोध केन्द्र बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय, झांसी में पूर्ण किया है।

मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार प्रस्तुत शोध-प्रबंध में किसी भी ऐसे कार्य का कोई भी अंश समुचित उद्धरण के बिना सम्मिलित नहीं है, जिसे किसी उपाधि प्रदान करने हेतु इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय में जमा किया गया हो। इस शोध-प्रबंध की समस्त सामग्री मौलिक है। सम्पूर्ण लेखन स्वतंत्र रूप से स्वयं के द्वारा पूर्ण किया गया है इसे मौलिकता प्रदान करने में उल्लिखित संदर्भों एवं वादों की सहायता ली गयी है।

दिनांक :

(ज्योति जैन)

एम. ए., एल. एल. एम.

शोध-छात्रा

बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी
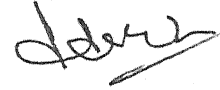
प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध जिसका शीर्षक **''भारत में धर्म संबंधी मानवाधिकार और अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न''** है जो बुंदेल खण्ड विश्वविद्यालय झांसी के विधि विषय अन्तर्गत एल-एल.डी. की उपाधि हेतु मेरे निर्देशन एवं देखरेख में **कु. ज्योति जैन** शोध छात्रा विधि विभाग बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी के द्वारा किया गया मौलिक शोध कार्य है।

मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार यह शोध प्रबंध स्वयं शोधार्थी द्वारा किया गया शोध कार्य है, शोध कार्य विधिवत पूर्ण किया गया है एवं विश्वविद्यालय की एल-एल.डी. उपाधि से संबंधित अध्यादेश की आवश्यकता को पूर्ण करता है।

मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

दिनांक :

(डॉ. प्रो. जे.डी.सिंह)
विधि- विभाग
बुंदेलखण्ड कॉलेज, झांसी

कृतज्ञता

मैं श्री मज्जिनेन्द्र 1008 कुण्डलपुर वाले बड़े बाबा के श्री चरणों को सहत्रों बार नमन करती हूँ, जिनकी असीम अनुकम्पा से, तथा श्री 108 परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के शुभाशीष से यह दुरूह तथा दुष्कर कार्य सम्पन्न कर सकी ससंघ उनको नमन करती हूँ।

मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। वह अपने भाग्य एवं भविष्य का निर्माण स्वयं करता है इसीलिए अपनी अनन्त इच्छाओं आंकाक्षाओं की प्राप्ति हेतु निरन्तर प्रयासरत रहता है हम जिन महत्वपूर्ण लक्ष्य एवं ऊँचाइयों को प्राप्त करना चाहते हैं, हमें अपने प्रयासों को उसी क्रम में उतना ही तेज करना पड़ता हैं, जिससे वहाँ तक आसानी से पहुँचा जा सकें। कठिनाइयों से युक्त इस सांसारिक सागर में दृढ़ संकल्प एवं उचित प्रयास ही व्यक्ति की देर-सबेर अपने गंतव्य तक पहुँचा देते हैं। लेकिन व्यक्ति के उस कार्य की सम्पन्नता तथा सफलता के पीछे अनेकों व्यक्तियों की प्रेरणा, आर्शीवाद सहयोग तथा प्रोत्साहित करने की शैली प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से उतना ही योगदान करती है जितना कि व्यक्ति का स्वंय का अपना योगदान होता है।

इस संदर्भ में, मैं सर्वप्रथम विधिवेत्ता आदरणीय डॉ. प्रो. जे. डी. सिंह का हार्दिक अभिवादन करते हुए कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने अद्वितीय त्याग, समर्पण, स्नेह एवं अपने मार्गदर्शन रूपी आर्शीवचनों से अभिसंचित कर मेरे भविष्य को एक नई दिशा, एक नया आयाम देने का सदैव अकथनीय प्रयास किया। मैं उनकी सदैव आभारी रहूँगी कि उक्त शोध-प्रबंध कार्य को पूर्ण करने के लिए उन्होंने समय-समय पर अत्याधिक व्यस्तता के बावजूद अपना अमूल्य समय एवं प्रेरणा मुझे प्रदान की।

मैं आदरणीय श्री पी. पी. सिंह प्रवक्ता, विधि विभाग डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर का हृदय से आभार या धन्यवाद प्रकट करती हूँ, जिनके असीम सहयोग, सहृदयता एवं सुभाशीष से आज में अपने स्वप्न को साकार होने की सुखद अनुभूति कर पा रही हूँ। साथ-ही-साथ में डॉ. प्रो. एच. एन. गिरि, श्री एम. पी. मिश्रा, श्री एस. के. कक्कर, श्रीमति सुशीला यादव, श्री संजीव जैन, श्री नवल किशोर मिश्रा, डॉ. एच. सी. जैन. श्री धीरज सरवैया, श्री सत्येन्द्र सराफ की भी आभारी हूँ। जिन्होंने मुझे इस कार्य हेतु उत्साहित कर परिपक्व बनाया।

मैं कु. मिक्की अग्रवाल, डॉ. सत्येन्द्र जैन, चंद्रकात दुबे, अनिल समैया, मुकेश साहू, सपना ताम्रकार, श्याम सुन्दर सिंह, आदेश जैन परवेज काजी, अरविन्द्र जैन एवं सुधीर जैन को इस

अवसर पर उन्हें साधुवाद ज्ञापित करती हूँ।

मेरे शोध प्रबंध के अनेक आयाम हैं, जिनकों पूर्णता प्रदान कराने में श्री न्यायाधीश के. सी. ठाकुर, श्री चौ. आर. के. जैन तथा डॉ प्रो. रवीन्द्र अग्रवाल का विस्मरण अक्षम्य अपराध होगा। जिनके पितृतुल्य स्नेह एवं सतत् परामर्श से ही यह कार्य पूर्ण हो सका है।

मेरी कल्पना को नया आयाम देने वाले मेरे मम्मी-पापा की सतत् कृपा वृष्टि, स्निग्ध छाया का यदि आश्रय न होता, तो शायद यह शोध-प्रबंध अपनी पूर्णता को प्राप्त न होता। मैं उनके प्रति किसी भी प्रकार की कृतज्ञता ज्ञापित करके उन भावनाओं को अपमानित नहीं करना चाहूँगी।

मैं अपने आत्मीय स्वजन श्री सुशील कुमार टड़ैया (जीजाजी) दीदी अलका, भाई दीपक, अमित एवं बहिन आभा और अश्विन, अदिति के सहयोग से ही यह कार्य सम्पन्न कर सकी हूँ। मैं उनकी जीवन भर ऋणी रहूँगी।

मैं अपने स्नेहिल मित्र निरूपमा, सोनू, अंजूलता, नीलू, आलोक, रजनीश, दीपक तथा ज्योति, मंजू एवं समस्त मित्रगण को हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने हमेशा इस कार्य के अतिरिक्त मुझे सहयोग शुभकामनायें एवं आत्मीयता प्रदान करते हैं।

मैं, बुदेलखण्ड विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय के पुस्तकालय झाँसी के, पं. जवाहरलाल नेहरू पुस्तकालय सागर तथा जिला अधिवक्ता संघ पुस्तकालय के समस्त कर्मचारियों, विधि विभाग के समस्त कर्मचारियों लिपिक, मौर्य, बाबूलाल, राधे, विजय एवं इस शोध-प्रबंध को रूपाकार प्रदान करने के लिए अनुकृति ग्राफिक्स के संचालक प्रफुल्ल सिंघई, अनिल मलैया को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने समय पर मेहनत व लगन से इस कार्य को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया है। अंत में उन सभी को धन्यवाद देती हँ जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य में या मेरी जीवन मीमांसा में किसी भी क्षण मेरा सहयोग एवं सहायता की है।

दिनाँक-

ज्योति जैन

एम. ए., एल. एल. एम.

प्राक्कथन

"परस्परोग्रहो जीवानाम" अर्थात् जीव का धर्म परस्पर सहयोग करना है। धर्म संबंधी मानवाधिकार एवं अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न का प्रश्न समसामाजिक समाज में गंभीर चर्चा का विषय बन गया है इसमें धर्म कब से शुरू हुआ और कैसे -कैसे समाज रूपी सागर की लहरों में करवटें लेता हुआ अपना रूप बदलता रहा है। इसके वे पहलू जो धर्म को संरक्षण देते हैं और वे पहलू जो इसे एक दण्डनीय अपराध की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देते हैं और समान को एक बार फिर यह सोचने पर मजबूर कर देते हैं कि धर्म क्या हैं ? क्या धर्म के विरूध करना दण्डनीय अपराध हैं ? क्या धर्म के नाम पर अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न किया जाता है ? क्या धर्म रूपी मानवाधिकार सभी को तथा किसके द्वारा प्राप्त है? इस प्रकार शोध किये जा सकने वाली समस्याओं पर समाजशास्त्रीय, मनौवैज्ञानिक, नैतिक तथा विधिक दृष्टियों से भी विचार किया गया है। अनेक आयोग तथा समितियों की रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है लेकिन फिर भी इस समस्या का कोई ठोस हल नहीं मिल पाया है।

सवाल यह है कि बहुसंख्यक मानवाधिकार रूपी धर्म की आड़ में अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न क्यों करते हैं वे कौन से कारण है जिनके कारण धर्म को उत्पीड़न का मुद्दा बनाया जाता है। क्या संविधान में धर्म व अल्पसंख्यक संरक्षण संबंधी कोई प्रावधान है ? वे कौन सी विधियाँ है जिनके अंतर्गत धर्म के नाम पर अल्पसंख्यकों पर अत्याचार तथा उत्पीड़न के लिए दण्डनीय किया जा सकता है। क्या इनसे समाज या राष्ट्र प्रभावित नहीं होता ? भारत में अल्पसंख्यकों की क्या स्थिति है ? इन पर होने वाले उत्पीड़न के क्या कारण है ?

प्रारंभ से ही मानवमात्र के लिए धर्म का एक ऐसा नियंत्रण या अंकुश रहा है "वस्थुसहावों धम्मो" अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। आधुनिक युग के बदलते परिवेश के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक धार्मिक और राजनीतिक कर्त्तव्य इसी को धर्म माना गया है इसके बारे में भारतीय तथा अन्य देशों में कुछ अंतर है। विधिवेत्ताओं , मनोवैज्ञानिकों का कुछ कहना है और समाजशास्त्रियों का कुछ।

बिजों एमैनुयल बनाम केरल राज्य उच्चतम न्यायालय ने इस पर अपना निर्णय बहुत अधिक विस्तृत अर्थो में दिया है। इस निर्णय के अत्यन्त दूरगामी परिणाम हो सकते हैं। उक्त निर्णय देते समय न्यायाधीशों ने अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट के निर्णय का सहारा लिया। यह उचित नहीं है। भारत में

परिस्थितियाँ भिन्न हैं। यहाँ अनेक भाषा, अनेक धर्म के मानने वाले लोग हैं। देश में एकता और अखण्डता को खतरा पैदा करने वाली प्रवृत्तियाँ कार्यरत हैं। ऐसी दशा में उक्त निर्णय आग में घी का कार्य करेगा। राष्ट्रगान गाने, राष्ट्रध्वज के सम्मान से नागरिकों में देश-प्रेम, देश-भक्ति के प्रति संस्कार बनते हैं। भारत की जनता में राष्ट्रप्रेम की भावना उतनी है जितनी अमेरिका में। उक्त निर्णय राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज और संविधान का अनादर और अवहेलना करने वालों को बढ़ावा देकर देश की एकता और अखण्डता को खतरा पैदा कर सकता है। राष्ट्रगान गाना एवं राष्ट्रध्वज का सम्मान करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य ही नहीं वरन् उसका धर्म होना चाहिए। केरल उच्च न्यायालय का निर्णय बिल्कुल ठीक है व्यक्तिगत हित से राष्ट्रीय हित सर्वोपरि है धर्म राष्ट्र और समाज से ऊपर नहीं हो सकता कोई धर्म इस की अनुमति नहीं देता।

इसी तरह अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के बारे उच्चतम न्यायालय ने डी. ए.वी.कालेज के मामले में कहा कि उस राज्य में ऐसी संस्था नहीं है परंतु अन्य राज्य में है तो उससे संबंद्ध कराने को अवसर देना चाहिए न्यायालय के इतने विस्तृत दृष्टिकोण के बावजूद भी अल्पसंख्यक संस्थाओं पर तथा अल्पसंख्यको पर उत्पीड़न कई तरह से जारी है धर्म के आधार पर अल्पसंख्यको पर उत्पीड़न को कैसे रोका जाये ? इसी सोच को आगे बढ़ाते हुए प्रस्तुत शोध प्रबंध में अध्ययन किया गया है।

सम्पूर्ण शोध प्रबंध में, प्रस्तुत अध्ययन को विषय वस्तु के आधार पर तीन-खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड, जो कि धर्म एवं मानवाधिकारों की संकल्पना के सामान्य सैद्धान्तिक एवं अवधराणात्मक पहलुओं से संबंधित है, में तीन अध्याय है। प्रथम अध्याय में धर्म की परिभाषा, स्वरूप, मानव जीवन में धर्म का महत्व, ऐतिहासिक परिवेश का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय में, धर्म की स्वतंत्रता तथा भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 25 से 28 तक की धर्म की स्वतंत्रता तथा समान सिविल संहिता आदि के बारे में संविधिक स्थिति तथा न्यायिक दृष्टिकोण का वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में धर्म के विरूध अन्य अपराधिक विधियों के संबंध में भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 295 से 298 तक, 153 क, 153 ख, 505 आदि का वर्णन किया गया है, दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973की धारा 144, सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955, की धारा 3, 10 क से संबंधित धर्म परिवर्तन तथा धर्मान्तिरण से संबंधित विधियों तथा उसके दण्डनीय बनाये जाने से संबंधित प्रावधान तमिलनाडू में धर्म परिवर्तन को संज्ञेय अपराध बनाया गया है सामाजिक परिवेशों को सम्मिलित किया गया है।

द्वितीय खण्ड में अल्पसंख्यक के संबंध में संविधिक व्याख्या है इसमें दो अध्याय हैं इसके पहले और क्रमशः चतुर्थ अध्याय में अल्पसंख्यक की परिभाषा, ऐतिहासिक दृष्टिकोण, अल्पसंख्यक

धर्मो की उत्पत्ति, विकास, अल्पसंख्यक आयोग का गठन, कृत्य तथा रिपोर्ट आदि का वर्णन किया गया है। इसके दूसरे और क्रमश पंचम अध्याय में अल्पसंख्यकों की संवैधानिक स्थिति तथा उनके उत्पीड़न से संबंधित घटनाओं का न्यायिक निर्णय तथा दृष्टिकोण में संबंधित बातों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय खण्ड में एक ही अध्याय का समावेश है। षष्ठम् अध्याय में निष्कर्ष और सुझाव आदि को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। अन्ततः संदर्भिका तथा संक्षेप शब्द सूची आदि संलग्न है ।

विषय सूची

प्रथम-खण्ड

द्वितीय-खण्ड

तृतीय-खण्ड

वाद सूची

1. रत्ती लाल बनाम बम्बई राज्य
2. एस. पी. मित्तल बनाम भारत संघ
3. हनीफ कुरैशी बनाम बिहार राज्य
4. एवर्सन बनाम बोर्ड आफ एजुकेशन
5. डाउन्स बनाम विडबेल
6. यू. एस. बनाम बनार्ड
7. एस. आर. बोम्बई बनाम भारत संघ
8. संतोष कुमार बनाम सचिव मानव संसाधन विकास मंत्रालय
9. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य और अन्य
10. इंदिरा नेहरु गाँधी बनाम राजनारायण
11. अरुणा राय और अन्य बनाम भारत संघ
12. रोमेश कुमार थापर बनाम मद्रास राज्य
13. रामजी लाल बनाम उत्तरप्रदेश राज्य
14. रमेश बनाम भारत संघ
15. इस्माईल फारुखी बनाम भारत संघ
16. इस्माईल फारुखी बनाम भारत संघ
17. मौलाना मुफ्ती सईद मो. नुरु रहमान बरकती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य
18. चर्च ऑफगॉड इण्डिया बनाम के. के. आर. एम. वेलफेयर एसोसियेशन
19. के. के. मैजेस्टिक कालोनी, कल्याण संघ बनाम तमिलनाडू प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड
20. रवि स्टैनीस्लाव बनाम मध्यप्रदेश राज्य
21. आचार्य जगदीश्वरानंद अदधूत बनाम पुलिस कमिश्नर कलकत्ता
22. गुलाम अब्बास बनाम उत्तरप्रदेश राज्य
23. सेशाम्मी बनाम तमिलनाडू राज्य
24. तिलकायत जी महाराज बनाम राजस्थान राज्य
25. वेस्ट वर्जीनियर स्टेट बोर्ड ऑफ ऐजूकेशन बनाम बर्नेट

26. मोहम्मद हनीफकुरैशी बनाम बिहार राज्य

27. स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल बनाम आशुतोष लाहिड़ी

28. स्टेट ऑफ बाम्बे बनाम नराजु आम्रपाली

29. लिली थॉमस बनाम भारत संघ

30. बिज्रो एमैनुएल बनाम केरल राज्य

31. ए. एस. नारायणन बनाम आंध्रप्रदेश राज्य

32. वैष्णव देवी मंदिर बनाम राज्य

33. पंजाब राज्य बनाम डॉ. डी. पी. मेशराम

34. एम. पीरण्य साहेत बनाम विशेषाधिकारी

35. मोहम्मद बासी बनाम बच्चन साहेब

36. संत ईश्वरसिंह बनाम पंजाब और हरियाणा राज्य

37. सरदार सैयदना बनाम बम्बई राज्य

38. शास्त्री यज्ञ पुरुष दास जी बनाम मूलदासभूघर दास वैश्य

39. श्रीधर राव बनाम आंध्रप्रदेश सरकार

40. राजस्थान राज्य बनाम सज्जन लाल

41. ब्रह्मचारी सिद्धेश्वर सहाय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य

42. अजीज पाशा बनाम भारत संघ

43. सैफउद्दीन साहेब बनाम बम्बई राज्य

44. वीरा किशोर देव बनाम उड़ीसा राज्य

45. दरगाह कमेटी बनाम हसन अली

46. एथीस्ट सोसाइटी ऑफ इण्डिया बनाम आंध्रप्रदेश राज्य

47. हिन्दू धर्मादा आयुक्त मद्रास बनाम एल. टी. स्वामीयार

48. सईद फजल बनाम भारत संघ

49. नारायण प्रसाद बनाम हैदराबाद राज्य

50. सिकंदराबाद हैदराबाद होट्ल आनर्स एसोसिएशन बनाम एच. एम. सी.

51. श्री जगन्नाथ रामानुज बनाम उड़ीसा राज्य

52. सुरेश चन्द्र बनाम भारत संघ

53. रघुनाथ बनाम केरल राज्य
54. डी. ए. पी. कॉलेज बनाम पंजाब राज्य
55. काठी रेनिंग बनाम सौराष्ट्र राज्य
56. नैनसुख बनाम स्टेट ऑफ यू. पी.
57. एम. बी. नाम जी बनाम डिप्टी कस्टोड्यिन ऑफ एवैकुई प्रापर्टी
58. सेंट स्टीफेन्स कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय
59. मोहम्मद अहमद खाँ बनाम शाहबानो बेगम
60. सरला मुद्‌गल बनाम भारत संघ
61. प्रगति वर्गीज बनाम सिटील जार्ज वर्गीज
62. नूर शाबा खातून बनाम मोहम्मद कासिम
63. गोपीनाथ बनाम रामचन्द्र
64. अनिवास जनरल ट्रेडर्स बनाम आंध्रप्रदेश राज्य
65. केदारनाथ सिंह बनाम बिहार राज्य
66. इन्द्रमणि सिंह बनाम राज्य
67. रोमेश चन्द्र सन्याल बनाम हीरू मण्ड्ल
68. गोपीनाथ बनाम रामचन्द्र
69. एस. वीरभद्रम बनाम ई. व्ही. रामास्वामी नायकर
70. वंशीधर चमारिया बनाम राज्य
71. कुट्टी चामी मूथम बनाम रामा पट्टार
72. आर बनाम रामास्वामी,
73. जोसेफ बनाम राज्य
74. बेचान झा बनाम एम्परर
75. राम लाल मोदी बनाम राज्य
76. वोव मैन बनाम सेकुलर सोसाइटी लिमिटेड
77. स्टेट ऑफमैसूर बनाम हेनरी रोडेगल्स
78. आर. बनाम वाल्टर
79. ललई सिंह यादव बनाम उत्तरप्रदेश राज्य

80. बाबा खलील अहमद बनाम राज्य

81. टी. परमेश्वम् बनाम जिला कलेक्टर

82. नंद किशोर सिंह बनाम राज्य

83. चंदनमल चौपड़ा बनाम राज्य

84. लाल जी सिंह बनाम राज्य

85. शैलेन्द्र शाह बनाम गुजरात

86. सालीभद्र शाह बनाम स्वामी कृष्ण भारती

87. आचार्य रजनीश बनाम नवल ठाकुर

88. मनोज राय तथा अन्य बनाम मध्यप्रदेश राज्य

89. अताउल्लाह बनाम अझीमुल्लाह

90. जयपाल बनाम धर्मपाल

91. जंगू बनाम अहमदुल्ला

92. कोहिमा महबूब साहिब बनाम सम्राट

93. मोहम्मद खान बनाम एम्परर

94. जयपाल गिर बनाम धरमपाल

95. रत्ना मुदाली बनाम एम्परर

96. घसीटा बनाम कालका

97. सुब्रमनिया बनाम वेकंटा

98. किताब अली बनाम शांति रंजन

99. तारासिंह बनाम राज्य

100. बाबूलाल पटैल बनाम राज्य

101. विशम्भर दयाल बनाम सम्राट

102. गोपाल बनाम राज्य

103. मेसर्स वर्षा पब्लिकेशन (प्रा.) लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य

104. बलवंत सिंह बनाम पंजाब राज्य

105. जी. वी. गोड्से बनाम श्री राम संघ

106. केदारनाथ बनाम राज्य

107. शिवनाथ बैनर्जी बनाम सम्राट

108. नरंत कठ बनाम पारम्कल

109. कैलाश शंकर बनाम माया देवी

110. आर्यसमाज शैक्षणिक ट्रस्ट बनाम शिक्षा निदेशक दिल्ली प्रशासन

111. शिवानंद पाण्डे बनाम भगवानदास हरलाल

112. आंध्रेकेसरी शिक्षण संस्थान बनाम आंध्रप्रदेश राज्य

113. योगेन्द्र नाथ सिंह बनाम उत्तरप्रदेश राज्य

114. बम्बई ऐजूकेशन बनाम बम्बई ऐजूकेशन सोसायटी

115. सिद्धराज भाई बनाम गुजरात राज्य

116. डब्ल्यू प्रोस्ट बनाम बिहार राज्य

117. श्रीकृष्णा बनाम गुजरात राज्य

118. मदर प्रोविंटियल बनाम केरल राज्य

119. एस. के. पात्रो बनाम बिहार राज्य

120. मद्रास राज्य बनाम चम्पाकमदौरे राजन

121. के. वी. परकींय बनाम स्टेट

122. आर्य प्रतिनिधि सभा बनाम बिहार राज्य

123. सेंट जेबियर कॉलेज बनाम गुजरात राज्य

124. गाँधी फैजे ऑम कॉलेज बनाम आगरा विश्वविद्यालय

125. आर्य समाज शिलांग बनाम मेघालय राज्य

126. ऑल केरल अनरस्पेड रिकग्नाइज्ड स्कूल पैरेनस एसोसिएशन बनाम केरल राज्य

127. नारायण शर्मा बनाम पंकज कुमार

128. मैनेजिंग बोर्डऑफमिली तामीली मिशन बनाम बिहार राज्य

129. मार्कनिटी बनाम केरल राज्य

130. लिली कुरीयन बनाम लेविना

131. आल सेण्ट्स हाई स्कूल बनाम आंध्रप्रदेश राज्य

132. ए. पी. क्रिश्चियन मेडीकल एजूकेशन सोसायटी बनाम आंध्रप्रदेश राज्य

133. फ्रेंक एंथोनी पब्लिक स्कूल एम्पलाईज एसोसियेशन बनाम भारत संघ

134. वाई थेकलामा बनाम भारत संघ

135. क्रिश्चियन मेडीकल कॉलेज हॉस्पिटल एम्पलाईज यूनियन बनाम क्रिश्चियन मेडीकल कॉलेज वेलूर एसोसिएशन

136. ऑल बिहार क्रिश्चियन एसोसिएशन बनाम बिहार राज्य

137. बिहार एस. एम. ई. बोर्ड बनाम एम. एच. ए. कॉलेज

138. सेंट जॉन टीचर्स इन्स्टीट्यूट बनाम तमिलनाडु राज्य

139. एन. अहमद बनाम मैनेजर इमजाये हाई स्कूल

140. विजय शांति एजूकेशन ट्रस्ट बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान और अन्य

प्रथम-खण्ड

अध्याय -1

धर्म, और मानवाधिकार

परिचय:-

प्राचीन काल से ही धर्म का मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन और समाज में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। धर्म द्वारा मनुष्य का आचरण निर्धारित होता है। धर्म यह निर्धारित करता है कि मनुष्य को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ? यदि मनुष्य धर्म द्वारा निर्धारित आचरण के विपरीत आचरण करता है तो धर्म के अनुसार ऐसे आचरण के लिए वह दण्ड का भागी होता है। धर्म की उत्पत्ति से पूर्व मनुष्य का आचरण अन्य पशुओं की भांति स्वच्छंद, अनियंत्रित एवं स्वेच्छाचारी था।मनुष्य किसी भी विधि या नियम या सत्ता के आधीन नहीं था।मनुष्य को प्रकृति द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता एवं समानता का अधिकार प्रदत्त किया गया था। मनुष्य द्वारा अपनी इस पूर्ण स्वतंत्रता के अधिकार का दुरुपयोग करने के कारण कमजोर मनुष्यों का जीवन संबंधी अधिकार असुरक्षित हो गया था क्योंकि उस समय केवल एक ही नियम था ''जिसकी लाठी उसकी भैंस'' या आंग्लभाषा में "Might is Right"। ऐसी कोई पद्धति नहीं थी जिसके द्वारा मनुष्य के सही और गलत कार्यों का निर्धारण किया जा सकता। न ही ऐसी कोई व्यवस्था थी जिससे कि मनुष्य के स्वेच्छाचारी और अनियंत्रित व्यवहार को नियंत्रित किया जा सकता और शक्तिशाली व्यक्तियों से कमजोर व्यक्तियों के जीवन की रक्षा की जा सकती। सभ्यता के विकास के साथ साथ सम्पत्ति की अवधारणा का भी विकास हुआ जिसके परिणामस्वरूप स्वामित्व का उद्भव हुआ। प्रारंभ में सम्पत्ति स्वामी विहीन होती थी और संपूर्ण सम्पत्ति पर प्रकृति का अधिकार था एवं सभी मनुष्यों को उस सम्पत्ति का उपयोग करने का एक समान रूप से अधिकार था। मनुष्य का आचरण अनियंत्रित होने के कारण से सम्पत्ति के स्वामित्व संबंधी अधिकार भी जीवन के अधिकार की भांति ही असुरक्षित हो गया था। उस समय मनुष्य की प्रमुख समस्या अपने जीवन और सम्पत्ति के अधिकारों की रक्षा भी इस समस्या के समाधान हेतु मनुष्य ने समाज की रचना की परन्तु समाज के अस्तित्व में आने के पश्चात् भी मनुष्य की इस समस्या का हल नहीं हो सका क्योंकि मनुष्य के आचरण को नियंत्रित करने के लिए समाज में कोई व्यवस्था नहीं थी और न ही मनुष्य को किसी का भय था। यह प्रमाणित तथ्य है कि बिना भय के किसी भी प्राणी के आचरण को नियंत्रित नहीं किया जा सकता। भय एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा प्राणियों के आचरण को नियंत्रित किया जाना संभव है। संभवत: इसी कारण से समाज में मनुष्य के आचरण को नियंत्रित करने के लिए धर्म की उत्पत्ति हुई और समाज में धर्म के अनुरूप मनुष्य के व्यवहार की अनिवार्यता पर बल दिया गया। धर्म के विपरीत आचरण होने पर मनुष्य दण्ड का भागी होगा इस प्रकार की व्यवस्था की गयी। जिसके परिणाम स्वरूप समाज में मनुष्य के आचरण को नियंत्रित किया जाना संभव हो सका। इसीलिए धर्म की मनुष्य के जीवन में और समाज में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है।

धर्म संस्कृत भाषा का शब्द है अर्थात संस्कृति कोशों में इसकी उत्पत्ति ध्रियते लोकोनेन धरति लोकं वा (धृत धारणी + मन) तात्पर्य यह कि जो लोक का धारण करता है वह धर्म है लोक में व्यक्ति ,परिवार, समाज राष्ट्र तथा विश्व सभी समाविष्ट है इसलिए जो पदार्थ इन सभी को स्वस्थ, स्थिर व पवित्र बनाये रखता है वही धर्म है। महाभारत में न्याय,स्वभाव, आचार, ऋतु आदि तक विस्तार है महर्षि वेद व्यास ने स्पष्ट किया है कि -

धारणाद्धर्म इत्याहुधर्मेण विधता: प्रजा:।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चय: ॥[1]

अर्थात धर्म को धर्म इस कारण कहा जाता है कि वह प्रजाओं को धारण करता है और वह दुर्गति की ओर बढते हए जीवों को धारण कर लेता है तथा उन्हें शुभ स्थिति में पहुँचा देता है और जिससे लोक परलोक में कल्याण हो वही धर्म है।

अंग्रेजी भाषा में धर्म को रिलीजन (Religion) कहते हैं। यह लेटिन भाषा के रिलिजियो शब्द से बना है जो संभवत: रि+लिजेयर = पुन: बांधना से उद्‌भूत होता है। धर्म वह है जो आत्मा को परमात्मा व अन्य किसी इष्टदेव से पुन: बांध देता है । [2]

प्रत्येक धर्म मानव विकास की उपज होता है एवं सामाजिक वातावरण से प्रभावित होता है। चूंकि मनुष्य बर्बरता की स्थिति से भी नीचे की स्थिति से विकसित हुआ है एवं एक समय वह केवल बौद्धिक पशु ही था यह मानना युक्तिसंगत होगा कि उस स्थिति में उसकी धार्मिक चेतना पशु की धार्मिक चेतना के बराबर ही थी। कोई ऐसी जाति नहीं है जिसको धर्मविहीन बनाया जा सके। धर्म मनुष्य की धार्मिक प्रवृत्ति की उपज है। धर्म के उद्‌भव के कारण एवं विकास की व्याख्या करने वाले अनेक सिद्धांत हैं कट्टरपन के कारण प्राचीन भारत में ऐसा समझा जाता था कि एक प्रेरक धर्म था और सभी दूसरे धर्म इसके उदाहरण स्वरूप ही थे कई शताब्दियों बाद यूरोप में वे ही सिद्धांत स्वतंत्र रूप से उठ खड़े हुए ।

एडवर्ड टेलर और हर्वर्ड स्पेंसर[3] के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को अध्यात्मवाद कहा जाता है और यह तथ्यों एवं अनुमानों पर आधारित है, असभ्य व्यक्ति यह विश्वास करता है कि जो सक्रिय है, वह जीवित है और जीवित होने के कारण एक वस्तु, पशु या पार्थिव- इनमें उसी प्रकार की आत्मा विद्यमान है जिसको मनुष्यअपने आप में पहचानता है । अत: वह संसार को आत्मायुक्त वस्तुओं से आबाद मानता है।

मेक्समूलर [4] द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत प्रकृतिवाद के नाम से जाना जाता है। यह सिद्धांत झरना,झंझावात या एक भव्य वृक्ष जैसे प्राकृतिक एवं शक्तिशाली वस्तुओं के प्रति असभ्य व्यक्तियों

का भय एवं पूजा का रवैया है, पर आधारित है। वे इन सभी को जीवन से युक्त मानते हैं । मनुष्य प्रकृति की सभी वस्तुओं का मानवीयकरण करता है । जो भी भयावह है वह उसकी पूजा करता है। धर्म जादू का बच्चा है । यह सिद्धांत जे जी फ्रेजर द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य सबसे पहले प्रकृति को मायावी साधनों से नियंत्रित करने का प्रयास करता है और इसको असंभव पाने पर अभ्यर्थना की शरण लेता है। यह जादू से भिन्न रूप में धर्म का प्रमाण चिन्ह है परन्तु यह धर्म के सिद्धांतों की कोई व्याख्या नहीं है क्योंकि जादू स्वयं अधिकांश रूपों में धार्मिक है। धर्म जादू का बच्चा है इसकी अपेक्षा यह कहना चाहिए कि जादू धर्म का बच्चा है।

यह सारगर्भित तथ्य है कि धर्म सामाजिक क्रिया कलाप का एक जैविक अंग है यह विचार कि धार्मिक चेतना सामाजिक उल्लास एवं मदहोशी से पैदा होती है जिसमें मनुष्य पहली बार अपने आपको अमानव समझने लगता है एवं सामान्य दुनियॉ से भिन्न एक दूसरी दुनियॉ की कल्पना करने लगता है । जिसे धर्म कहा जाता है उसका अधिकांश भाग दृढ रूप में सामाजिक ही है प्राचीन युग की सभ्य एवं असभ्य जातियों में राजा की भावना तथा धार्मिक नेतृत्व की भावना एक दूसरे में घुलमिल गईं थीं । इसी कारण से ही आदिम समाज में नैतिकता एवं नियम दोनो मिलकर एक संपूर्ण इकाई बनाते हैं और यह सम्पूर्ण इकाई ही धर्म है इस प्रकार कोई भी केवल धार्मिक नैतिकता एवं धार्मिक नियम या नैतिक नियमों की ही चर्चा कर सकता है इसलिए कर्मकाण्ड एवं अनुष्ठान मूलतः सामाजिक या आर्थिक दोनो ही धार्मिक बन जाते हैं तथा उनके भागीदार व्यक्ति को सामाजिक रूप से धार्मिक कहा जाता है।

धर्म की परिभाषा :-

ई.बी.टायलर के अनुसार ''धर्म आध्यात्मिक सत्ताओं में विश्वास है।''[5] कान्ट के अनुसार ''दैवी आदेश के रूप में कर्त्तव्यों की स्वीकृति ही धर्म है।''[6] प्लेडटर के अनुसार '' देवता के विचार के अनुरूप निर्दिष्ट संकल्प ही धर्म है।''[7] श्लायरमाखर के अनुसार ईश्वर पर पूर्णरूपेण निर्भर रहने की भावना में ही धर्म का तत्व निहित है। श्री सी0 के0 दुबे के मतानुसार ''धर्म एक भयाक्रांत करने वाला भ्रम है जिसे केवल इसलिए अस्तित्व में लाया गया ताकि समाज में किसी अंजानी शक्ति का भय रहे और लोग उससे डर कर अराजकता का दामन थामने से परहेज करें।''[8]

धर्म एक जीवन पद्धति है जो जीवन को उसके कर्त्तव्यों का बोध कराती है, वह सिद्धांत जिसके आधार पर हम जीवन व्यतीत करते हैं - धर्म है। धर्म एक आचरण संहिता है जो समाज के एक सदस्य के रूप में व्यक्ति के जीवन को नियमित करती है धर्म का संबंध समाज को सुसंगठित रखने, प्रत्येक व्यक्ति के कर्त्तव्यों का निर्धारण कर समाज को संतुलित बनाने से है ताकि

संघर्ष कम हो। धर्म के कर्त्तव्य का पालन करने के लिए अलौकिक शक्ति का भय दिखाया गया है, ताकि व्यक्ति उसकी अवहेलना न करे और उसकी पाशविक शक्तियों का समाजीकरण हो सके। अलग-अलग देश, काल व भौगोलिक परिवेश की अलग-अलग अलौकिक शक्तियों से कालांतर में संप्रदाय बने और विशेष संप्रदाय का पालन करने वाले उस संप्रदाय के सदस्य ।[9]

धर्म की परिभाषा भारतीय संविधान में नहीं दी गई है और वास्तव में धर्म की पूर्ण परिभाषा देना संभव ही नहीं है।[10] परन्तु न्यायालय द्वारा इसकी परिभाषा इस प्रकार की गयी है 'धर्म' एक भ्रामक शब्द है जिसका प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुसार अर्थ समझता है जिसे एक व्यक्ति धर्म समझता है वह दूसरे के लिए अंधविश्वास हो सकता है। वर्ट्रण्ड रसेल के अनुसार 3धर्म प्रथमत: और मुख्यत: अंजाने का आतंक है यह अंशत: अभिलाषा है कि आपका एक बड़ा भाई हो जो प्रत्येक संकट और विवाद में आपके साथ रहे। भय ही इन सब का आधार है, गूढ तत्व का भय, हार का भय, मृत्यु का भय । भय अत्याचार का जनक है इसलिए अत्याचार और धर्म साथ साथ रहते हैं।''[11]

धर्म तो व्यक्तियों एवं समुदायों के विश्वास का विषय है। यह आवश्यक नहीं कि वह ईश्वरवादी हो इसका नि:संदेह आस्था और सिद्धांत रूपी आधार होता है। जिन्हें उस धर्म के अनुयायी मानते हैं किन्तु यह कहना उचित नहीं है कि धर्म आस्था अथवा सिद्धांत के अतिरिक्त कुछ नहीं है।[12] इसके अंतर्गत धर्म के अनुसरण में किये गए सभी कार्य भी सम्मिलित हैं प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या संगठन को यह विनिश्चित करने की पूरी छूट है कि कौन से कर्मकाण्ड और उतसव उनके धर्म के सिद्धांतों के अनुसार आवश्यक हैं।[13]

धर्म केवल अपने अनुयायियों के लिए नैतिक नियम ही विहित करता है अपितु धर्म द्वारा धर्म का अभिन्न अंग समझे जाने वाले आचार, व्यवहार, संस्कार और पूजा की विधियाँ भी विहित की जातीं हैं और इन प्रकारों एवं इनका अनुपालन भोजन एवं पहनावे तक भी विस्तारित हो सकता है।[14] गांधीजी का कहना था कि ''धर्म ही राजनीति को नैतिक बल प्रदान करता है और धर्म राजनीति की आत्मा है व्यक्ति और समाज के नैतिक विकास के लिए धर्म निंतात आवश्यक है।'' भारतीय राजनीति के निर्धारक तत्वों में धर्म और साम्प्रदायिकता अत्यन्त प्रभावशाली तत्व माने जाते हैं। साम्प्रदायवाद के रूप में धर्म का प्रयोग राजनीति में जहां एक ओर तनाव उत्पन्न करने के लिए किया जाता है वहां दूसरी ओर प्रभाव और शक्ति अर्जित करने में भी धर्म माध्यम बना लिया जाता है।

धर्म तब तक साम्प्रदायिकता का कारण नहीं बनता है जब तक वह व्यक्तिगत रहे और उसे राजनीति से अलग रखा जाए। लेकिन यदि उसे राजनीति या अन्य किसी स्वार्थ से मिला दिया जाता है तो वह साम्प्रदायिकता का हथियार बन जाता है।

नासिरा शर्मा ने धर्म के महत्व के सम्बंध में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये है- ''इन्सान अपने आदिम दौर में एक बड़े कुनबे की शक्ल में रहता था। जहाँ पर जो उसका था वह सबका था, अपना पराया जैसा कुछ न था। जैसे जैसे विकास का पहिया घूमता गया, अधिकार की बढ़ती चेतना ने कई तरह के बंटवारे कर इंसानों को परिवार की इकाइयों में बांटना शुरू कर दिया। बराबर से अपना अपना भाग पाने वालों ने इंसानी सत्ता नकार कर अपने लिए एक अदद 'भगवान' पैदा कर लिया, जो आंधी और तूफान के देवता की ही नया रूप था। भाग्य और भगवान ने धर्म द्वारा नए नियम उन्हें बताए कि वे कैसे जिन्दगी गुजारें। कानून ने उनके जंगलीपन पर अंकुश लगाने शुरू किए। समय के गुजरने के साथ नए-नए धर्म जन्म लेने लगे। कुछ प्राचीन धर्म पुराने पड़ इतिहास बनते चले गए। शिक्षा ने तर्क और ज्ञान की क्षमता दी। विज्ञान ने एक आराम देह जिंदगी की व्यवस्था प्रदान कर इंसान को एक नई शक्ति दी। इन सारी सुख-सुविधाओं और प्रगति के विकसित होते रात-दिन की दौड़ के बावजूद धर्म की निष्ठा से मिले सुख के आध्यात्मिक अनुभव से इन्सान मुकर नहीं सका।''

स्वामी पवित्रता नंद के दृष्टि-कोण में ''धर्म सदा से बड़े विवाद का विषय रहा है परन्तु हाल में यह विवाद बहुत अधिक बढ़ गया है। कुछ का कथन है कि धर्म जीवन की समस्त बुराइयों का मूल है। कुछ के अनुसार धर्म से कोई उपयोगी कार्य सिद्ध नहीं होता। यह जनता के लिए अफीम है। जनता के शोषण के लिए, उसे अपनी मुट्ठी में रखने के लिए यह उच्च्च वर्गो के हाथ का औजार है जो लोग खुले-आम चर्चा किया करते हैं उनमें अधिकाशं ऐसे लोग होते हैं। जो धर्म के पथ की अपेक्षा विपक्ष में बोलते हैं। उनमें कुछ लोग ऐसे होते हैं। जो अपने व्यवहार में आक्रामक होते हैं। तथा धर्म को पूरी तरह से दबाना अथवा कुचल देना चाहते हैं। फिर भी धर्म जीवित है। वह अपना रंग बदल रहा है। नया रूप धारण कर रहा है वह मरा नहीं है और न ही वह मर सकता है।''

मानव जीवन में धर्म का स्थान:-

धर्म का मानव जीवन में क्या स्थान है इसका उत्तर इन उक्तियों में मिल जाता है मनुष्य का इतिहास धर्म का इतिहास है (मैक्समूलर) संपूर्ण अस्तित्व धर्म के अंतर्गत है और धर्म का इतिहास मानव विकास के संपूर्ण इतिहास को चित्रित करता है। (काम्टे)। एडवर्ड के शब्दों में मनुष्य का अध्ययन तब तक पूर्ण रूप से नहीं किया जा सकता जब तक कि उसमें धर्म का अध्ययन न सम्मिलित किया जाय, क्योंकि मनुष्य के इतिहास में अन्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो धर्म की अपेक्षा अधिक व्यापक प्रभावकारी एवं महत्वपूर्ण हो। प्रो. एडवर्ड ने यह भी कहा है कि धर्म के प्रति लोगों की व्यक्तिगत धारणा या मनोवृत्ति चाहे जो भी रही हो, परन्तु मानव जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। सचमुच धर्म विश्व में हर तरह से बहुत बड़ी चीज है।[15]

मानव के अनुभवों का सर्वेक्षण करने से पता चलता है कि आदिकाल से लेकर अब तक धर्म मनुष्य के जीवन और इतिहास में प्रमुख रहा है । धर्म चाहे आदिम समाज में आदिम रूप में रहा हो चाहे सभ्य समाज में विकसित रूप में हो, सदैव से मानव जाति के जीवन का अभिन्न अंग माना जाता रहा है। मनुष्य की पशु से भिन्नता का कारण धर्म है। धर्म मनुष्य के विवेक में अनुस्यूत है मानव चेतना में धार्मिक चेतना समाहित है इसीलिए मनुष्य बिना धर्म के जीवित नहीं रह सकता। धर्म का अनुसरण न करने वाले धर्म की आलोचना कर सकते है परन्तु धर्म से छुटकारा पाना संभव नहीं है। इसी से धर्म की अनिवार्यता सिद्ध होती है। मानव जीवन में धर्म के स्थान का निर्धारण हम दो रूपों में कर सकते है

प्रथम -धर्म की जीवन में उपयोगिता, द्वितीय- धर्म की अनिवार्यता को सिद्ध करके।

धर्म की उपयोगिता :-

(1) धर्म प्रगति और प्रेरणा का स्त्रोत है

धार्मिक चेतना में निहित ज्ञानात्मक पहलू के कारण धर्म वृद्धि पर आधारित है। वौद्धिक विवेचन, स्वतंत्र चिन्तन और वैज्ञानिक विश्लेषण के कारण ही धर्म द्वारा सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक प्रगति संभव है। धर्म शुभ तथा आंनद का प्रेरक स्त्रोत है।

(2) धर्म द्वारा मानव में शक्ति-संचार होता है-

मनुष्य अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपने को अपूर्ण और नि:सहाय पाता है। ऐसी स्थिति में वह किसी पराशक्ति में विश्वास रखकर अपने अन्दर शक्ति और पूर्णता का अनुभव करता है।

(3)धर्म की सामाजिक उपयोगिता-

धर्म ही है जो युगों से मानवता की सेवा कर रहा है। इतिहास इसका प्रमाण है। धर्म की शक्ति का महत्व केवल व्यक्तिगत जीवन के लिए ही नहीं सामाजिक जीवन के लिए भी है। वस्तुत: समाज की उचित स्थापना तभी हो सकती है जबकि समाज के आदर्श में यह तथ्य समाविष्ट हो कि सभी व्यक्तियों में एक सत्ता अनुप्रमाणित और ईश्वरीय चेतना से अभिभूत समाज के विभिन्न व्यक्ति समाज में समता और सहयोग की स्थापना करते रहे हैं। इसी के आधार पर समाज में प्रेम की अजस्त्रधारा प्रवाहित हो सकती है।

(4) धर्म साधन तथा साध्य मूल्य है-

जब धर्म का उपयोग उच्चतम मूल्यों की प्राप्ति (आत्म-लाभ) के लिए साधन के रूप में किया जाता है तब यह व्यावहारिक रूप से मूल्यवान सिद्ध होता है। परन्तु जब यह स्वत: उच्चतम मूल्य होने के कारण साध्य के रूप में प्राप्त किया जाताहै तो आंतरिक या साध्य मूल्य के रूप में हो जाता है। साधना के प्रारम्भ में धर्म व्यावहारिक मूल्य का स्थान ग्रहण करता है और साधना के अन्त में वही

आन्तरिक मूल्य के रूप में अनुभूत होता है। डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में "धर्म का उद्देश्य न सिर्फ सत्य है, न अच्छाई, न सौन्दर्य और न इन सबका मिश्रण, बल्कि उसका उद्देश्य ईश्वर है; जिसमें वे सब मूल्य तो निहित है ही साथ में ही इनसे ऊपर भी है।"[16]

(5) धर्म द्वारा समता की स्थापना-

धर्म द्वारा समाज में स्थायी समता की स्थापना की जाती है। अव्यवस्था, अशान्ति एवं उपद्रव वहीं देखने में आता है जहाँ धार्मिकता के आधार पर प्रेम, सौहार्द और संतोष की धारा प्रवाहित नहीं होती है। अभाव संतोष से दूर किया जा सकता है और इसका पाठ धर्म ही सिखलाता है।

(6) धर्म की मनौवैज्ञानिक उपयोगिता-

साधुता स्वयं अपना साध्य है। धर्म द्वारा मनौवैज्ञानिक दृष्टि से समाज को लाभ होता है। हृदय की कोमलता, शान्ति तथा मधुरता, धर्मानुसरण से ही प्राप्त होती है। प्रेम तथा आदर की भावना भी उत्पन्न होती है। धर्म से उच्चातिउच्च आदर्शो की प्राप्ति तथा समाज, देश और विश्व में शान्ति उत्पन्न करने के लिये बलिदान की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। विश्व-बन्धुत्व की भावना धर्म से उत्प्रेरित समता के द्वारा ही प्राप्त होती है। मित्रता तथा सेवा की भावना, साथ के जीवों के प्रति दया का प्रवाह, त्याग तथा सहिष्णुता धर्म की ही देन कही जा सकती है। इससे व्यक्ति के मस्तिष्क को जो एकाग्रता प्राप्त होती है उससे समाज लाभान्वित हुए बिना नहीं रहता।

(7) नैतिकता की दृष्टि से धर्म की उपयोगिता-

धर्म का प्रभाव संक्रामक होता है। जब किसी साधु व्यक्ति को दूसरों का उपकार करते देखते हैं तो उसके प्रभाव से हमारे अन्दर उस और बढ़ने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। प्लूटार्क ने ठीक ही कहा है कि धार्मिक व्यवहार की हम जहाँ प्रशंसा करते हैं वहॉ उसके अनुकरण की प्रवृत्ति भी हमारे अन्दर उत्पन्न हो जाती है । कर्त्तव्यपरायण पुरूष तथा रहस्यवादी के व्यवहारों में अन्तर यही है कि सामान्य रूप से हम सामाजिक तथा राजनीतिक दण्ड विधानों के भय से कर्त्तव्यनिष्ठ होते हैं परन्तु साधु तथा रहस्यवादी स्वेच्छा से कर्त्तव्यपालन करते हैं और अन्य लोगों में भी स्वेच्छा से कर्त्तव्य-बुद्धि उत्पन्न करने की प्रेरणा उत्पन्न करते हैं।

(8) धर्म से लोकोपकार, आत्मपूर्णता तथा व्यक्तित्व का संकलन होता है-

बुद्ध, क्राइस्ट, मुहम्मद इत्यादि धार्मिक महापुरूषों का जीवन लोकोपकार का ज्वलन्त उदाहरण है। वे नैतिकता, न्याय, प्रेम तथा सहयोग का जो पाठ सिखा गये वह विश्व-इतिहास में युगों तक अमिट रहेगा। व्यक्ति धार्मिक आचरण द्वारा आत्मपूर्णता प्राप्त करता है। धर्म से पाशविक वृत्तियों का परिमार्जन एवं शोधन होता है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है।

(9) धर्म से सुख का प्रसार होता है-

मानव जीवन में सुख का प्रसार धार्मिकता पर ही अवलम्बित है। स्टेस ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि बुद्ध तथा ईसा जैसे नैतिक प्रतिभा सम्पन्न महापुरूषों की सबसे बड़ी खोज यह थी कि स्वार्थपूर्ण जीवन सुखी जीवन नहीं होता, और अपने को सुखी बनाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम दूसरों के सुख के लिए प्रयत्न करें। ऐसा क्यों है, ऐसा कहना कठिन है। मनुष्य सुखी नहीं हो सकता जब तक उसके चारों ओर सब सुखी न हों। मानव जाति के सुख में ही उसका सुख है।

(10) सांस्कृतिक विकास और विश्वशान्ति में धर्म की उपयोगिता-

विकसित धर्मो तथा धर्म के वैज्ञानिक विवेचनों से यह सिद्ध हो चुका है कि विज्ञान और धर्म एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। वैज्ञानिक विकास के साथ धर्म का नाता होने पर विश्व की संस्कृति का विकास मंगलमय सिद्ध हो सकता है। विज्ञान मानव ऐश्वर्य की वृद्धि कर सकता है परन्तु धार्मिकता के आधार पर ही मानव-संस्कृति में मानवता का प्रवेश हो सकता है। ऐसी ही संस्कृति विश्वशान्ति की स्थापना कर सकती है। जैन, बौद्ध तथा ईसाई धर्म के पंचसूत्र तथा शैलोपदेश विज्ञान के साथ मनुष्य को शांति और प्रगति की ओर ले जा सकते हैं।

धर्म एक अनुशासन है। मानव जीवन जब भी अनुशासन में नहीं रहेगा प्रगति संभव नहीं होगी। अनुशासनविहीन प्रगति उच्छश्रृंखलता है। वास्तव में धर्म आंतरिक सौन्दर्य, शुभ और अन्तर की प्राप्ति में प्रेरणा प्रदान करता है। धर्म व्यक्ति को सशक्त करता है न कि अशक्त।

बेटविच ने धर्म को जातीय संगठन रूपी भवन की नींव तथा राजनीतिक जीवन का सीमेंट कहा है। इतिहास साक्षी है कि विश्वसमाज की रचना और विकास में धर्म कितना सहायक सिद्ध हुआ है। यदि धर्म के नाम पर युद्ध, हिंसा एवं विघटन हुआ है तो यह स्वस्थ धर्म का लक्षण नहीं कहा जा सकता। वास्वविक धर्म तो मानव विरोधी प्रवृत्तियों यथा हिंसा, घृणा, कलह आदि की सदैव से निन्दा करता है और इन प्रवृत्तियों के स्थान पर दया, क्षमा, प्रेम सहयोग, सेवा और उपकार की भावना पैदा करता है।[17]

धर्म की अनिवार्यता :-

जैसे मनुष्य के शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है और मस्तिष्क को ज्ञान की, वैसे ही उसकी आत्मा को धर्म की। जैसे अन्न के बिना तन तथा ज्ञान के बिना मन जड़ बन जाता है वैसे ही धर्म के बिना आत्मा भी मर सी जाती है और वह अशांत एवं भूखी रहती है। धर्म हीन जन का जीवन वैसा ही उद्देश्यहीन होता है, जैसा कि दिग्दर्शन यंत्र (कुतुबनुमा) के बिना जहाज। जैसे वह जहाज कुछ काल तक इधर-उधर घूमकर किसी चट्टान से टकराकर चकना चूर हो जाता है वैसे ही धर्महीन मानव

भी खान-पान तथा भोग विलास को ही अपने जीवन का परम ध्येय मानकर पशु तुल्य जीवन व्यतीत कर, हाथ मलता हुआ संसार से चल बसता है। इसी बात को भारतीय विद्वान चाणक्य ने इस प्रकार कहा है कि-

आहार-निद्रा-भय-मैथुनानि समानि चैतानि नृणां पशुनाम् ।
ज्ञानं नराणाम् अधिकोविशेषो ज्ञानेन हीना पशुभिः समानाः ।।[18]

अर्थात खाने-पीने, सोने-जागने, डरने तथा भोग-विलास करने में तो मनुष्य पशुओं के समान ही है। मनुष्य की विशेषता तो उसके धर्मवान् होने में ही है। जो धर्म हीन है वे तो पशुओं के ही समान है।

वास्तविक शांति व आनंद तो धर्मात्मा को ही मिलता है पापी तो पाप का विचार भी छिप कर करता है बात भी छिप कर करता है तथा आचरण भी छिप कर ही करता है। वह न केवल पाप करते हुए ही कांपता है। बल्कि जीवन भर इसी चिंता में भी लगा रहता है कि कहीं पाप प्रकट न हो जाए।परन्तु धर्मात्मा मानव निर्भय तथा निष्कंप रहता है। पापी को इससे न कोई इस लोक में बचा सकता है न परलोक में।

मनुस्मृति के अनुसार -

नापुत्र हि सहायांर्थ पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्र द्वारा ज्ञाति धर्मस्तिष्ठति केवलः ।।[19]

अर्थात् परलोक में माता, पिता, पुत्र, पत्नी, बंधु -बांधव कोई भी सहायता नहीं कर सकता। वहां तो केवल धर्म ही सहायक है।

कुछ लोगों की यह मान्यता है कि कलियुग में पापी ही फलते फूलते है और धर्मात्मा कष्ट उठाते हैं। मनु ने भी कहा है कि पापी मानव पहले तो अधर्म से कुछ बढ़ता है और उसमें अपनी भलाई देखता है फिर उस वृद्धि से अपने विरोधियों को जीतता भी है परन्तु बाद में जड़ समेत नष्ट हो ही जाता है। पाप का फल सदा तत्काल नहीं मिलता। उस की प्राप्ति में ही वैसे विलम्ब हो सकता है जैसे पृथ्वी में डाले हुए बीजों से फल की प्राप्ति में।

प्राचीन भारत के लोगों का संम्पूर्ण जीवन चक्र वेदों और धर्मशास्त्रों पर आधारित था। उनकी विधि व्यवस्था, उनकी संस्थायें और उनके आदर्श इन्हीं धर्मपुस्तकों में समाविष्ट थे। दर्शनशास्त्र के उपोत्पाद [20] प्राचीन भारत की विधि व्यवस्था ऋत की संकल्पना से अनुप्रेरित होकर धर्म के नियमों द्वारा शासित होती थी। प्राचीन भारत के लोगों का जीवन, उनकी परम्पराएँ एवं विधि व्यवस्था का ज्ञान प्राचीन भारत के धर्मग्रंथों के अध्ययन से ही संभव है। प्राचीन भारत के लोगों का

संपूर्ण जीवन ऋषियों एवं स्मृतियों में प्राधिकारिक रूप से सुस्थापित निर्देशो, आदेशो, व्यादेशों और आज्ञाओं द्वारा विनिमित होता था। प्राचीन भारत की विधि व्यवस्था दैवी विधान पर आश्रित विधि व्यवस्था कही जाती थी।[21] यह माना जाता है कि ईश्वर ने स्वयं प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था के आधार ''धर्म'' का स्फुरण या रहस्योदघाटन किया था जिसे भारतीय ऋषि-मुनियों ने ''श्रुति'' या वेदों के रूप में समाज को दिया।[22] श्रुति शब्द का अर्थ होता है श्रवण किया हुआ। हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा श्रवण की हुई ईश्वर की वाणी जिसे उन्होंने हमे दिया श्रुति कहलाती है और श्रुति का ही दूसरा नाम वेद है। वेदों में ईश्वर की वाणी है। वेदों की रचना किसी मनुष्य द्वारा नहीं की गयी है, अपितु इनकी रचना स्वयं ईश्वर द्वारा की गई है।[23]

वैदिक युग में धर्म का पालन ही परम धर्म माना जाता था। प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था में ''धर्म'' शब्द का अर्थ केवल पूजा पाठ और संध्या वंदना ही नहीं था। ''धर्म''शब्द से उस समय उन सब बातों का बोध होता था, जो इस जीवन में मनुष्य के लिए आवश्यक है। भोजन, स्नान, उठना-बैठना, आचार-व्यवहार सभी कुछ धर्म में सम्मलित थे। समाज के वो नियम भी जिन्हें विधान या विधि-व्यवस्था कहा जाता है धर्म की परिधि में आते है। [24]मनु के अनुसार राजा को शासन करने के लिए ईश्वर ने भेजा है अत: राजा को शासन करने की और विधि का प्रतिपालन करने की दैवीय शक्ति प्राप्त है। प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था को सदैव से ही दैवीय विधि व्यवस्था माना जाता रहा है। मनु के अनुसार दण्ड ही समाज में संतुलन स्थापित करता है और व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करता है। ''दण्ड'' व्यवस्था का दूसरा नाम है और यह विधि व्यवस्था का प्रतिपूरक है। राजा को दाण्डिक शक्ति प्राप्त है और वह अपनी दण्ड शक्ति द्वारा शासन करता है। प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था में धर्म ही विधि का पर्याय था।[25]

भारतीय धर्म दर्शन के अनुसार यदि हम धर्म के अनुसार रहते हैं तो हम इस भावबोध के अंतर्गत पुरस्कृत होते हैं कि हमारे हितों की पूर्ति होती है और विश्व में हम अपने नाम और यश के प्रसार से लाभान्वित होते हैं। यदि हम धर्म के अनुसार आचरण नहीं करते, तो हम पाप करते है, क्योंकि धर्म का अनुपालन न करना अनुद्धिकास की ओर उन्मुख होना है और अनुद्धिकास सदैव अधोगति की ओर गतिमान होता है अत: वह पाप है और वरूण द्वारा दण्डनीय है। वरूण इस जीवलोक के बाहर कहीं अन्यत्र विराजमान हैं और उन्हें दण्ड के अधिरोपण द्वारा हमारे रास्तों को ठीक करने का अधिकार प्राप्त है। प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था धर्म की ही एक शाखा थी। डा. पी वी. काने के अनुसार ''धर्म'' संस्कृत भाषा का एक ऐसा शब्द है जिसका सटीक अनुवाद आंग्ल अथवा अन्य भाषाओं में नहीं है। शब्दकोषीय तात्पर्यो के अनुसार इस शब्द का अनुवाद अध्यादेश, प्रथा, कर्त्तव्य, अधिकार, न्याय,

विधि-व्यवस्था, सदाचार, पुण्य, संप्रदाय, सद्कार्य, सदकृत्य अथवा सद्लक्ष्णों के रूप में किया गया। अधिकाशं मामलों में धर्म का तात्पर्य पवित्र या पुण्यशील अध्यादेश अथवा कर्मकाण्डों से है।[26]

प्राचीन भारतीय हिन्दू विचारधारा में धर्म केवल एक विशिष्ट विचारधारा या उपासना पद्धति वाले समुदाय के लिये प्रयुक्त नहीं है क्योंकि इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं विश्व व्यापी है। पूरे मानव समाज को धारण करने के कारण ही उसे ''धर्म'' कहा गया है यथा ''धारणाद्धर्भ इत्याहु: धर्मो धारयते प्रजा:'' धर्म माना गया है यथा, ''आचार: परमोधर्म:।'' धर्म का अर्थ सत्यनिष्ठा, मन-वचन से पवित्रता, नैतिकता एवं आध्यात्मिकता है। प्राचीन भारतीय हिन्दू विचारधारा के अनुसार मानव में यदि धर्म न हो तो वह एक पशु के समान है क्योंकि आहार निद्रा भय और मैथुन दोनों में एक समान विद्यमान है।

राज्य की दैवीय उत्पत्ति का सिद्धांत राज्य की प्राथमिक उत्पत्ति से संबंधित प्राचीनतम सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार राज्य की स्थापना एवं शासन ईश्वर द्वारा स्वयं किया गया अथवा किसी महाशक्तिशाली मानव द्वारा। ईश्वर किसी राज्य पर प्रत्यक्षत: स्वयं अथवा किसी शासक के माध्यम से जिसे ईश्वर का प्रतिनिधि अथवा अभिकर्त्ता समझा जाता था शासन कर सकता है। ऐसा राज्य ईश्वर द्वारा शासित राज्य के रूप में जाना जाता था राज्य की दैवीय उत्पत्ति का सिद्धांत लगभग उतना ही पुराना है जितना कि राज्य स्वयं और यह सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से प्राचीन संप्रदायों में मान्य था।[27]

उपयुक्त विवेचना से यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल से ही धर्म का मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन और समाज में अति महत्वपूर्ण स्थान रहा है। धर्म के आधार पर राष्ट्रों की स्थापना राष्ट्रों का विभाजन और किसी राष्ट्र में राज्यों का पुर्नगठन किया जाता रहा है और वर्तमान में भी धर्म के आधार पर राज्यों की स्थापना की मांग उठाई जाती है। धर्म के आधार पर समाज को बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक में वर्गीकृत किया जा सकता है। इतिहास साक्षी है कि विश्व में अतीतकाल से धर्म के आधार पर बहुसंख्यकों के द्वारा अल्पसंख्यको के विरूद्ध उत्पीड़न, अमानवीय व्यवहार, अत्याचार, शोषण, क्रूरता, शारीरिक यातनाएँ, घृणित कृत्य एवं उन्हें समाप्त करने के प्रयास किये जाते रहे हैं।

इतिहास बताता है कि हमने अपने-अपने धर्म को ही ईश्वरीय व सर्वोत्तम मानकर विधर्मियों के प्रति मन माने अमानवीय अत्याचार किए हैं। सैकड़ो-सहसों नहीं, लाखों करोड़ों लोगों को धार्मिक मतभेद के कारण अकथनीय कष्ट ही नहीं दिए, प्रिय प्राणों से भी वंचित कर दिया और यह खेद की बात है कि यह निंदनीय कार्य आज भी सर्वथा समाप्त नहीं हुआ परन्तु यदि विभिन्न धर्मो के कारण अतीत में इनका रक्त पात हुआ है तो धर्म प्रचार के स्थान पर धर्म-तिरस्कार ही क्यों न कर

दिया जाए। न रहेगा बांस न बजेगी वांसुरी। यदि धर्मो द्वारा अपकारों की अपेक्षा उपकार अधिक न हुए होते तो संसार से धर्म का नामोनिशान ही मिट गया होता। नहीं मिटा इससे सिद्ध होता है कि धर्मो द्वारा आज भी लोगो को शांति, सदाचार, प्रेम दया करूणा भक्ति आदि की खुशिया मिलती है जिससे मनुष्य अपेक्षाकृत सुखी व शांत रहते है।

उपर्युक्त विवेचना भारत के हिन्दु बहुसंख्यक समुदाय से संबंधित होने के साथ-साथ अन्य अल्पसंख्यक समुदायों (मुस्लिम, ईसाई, पारसी, सिक्ख, जैन, एवं बौद्ध) पर भी समान रूप से प्रभाव डालती है। हिन्दु धर्म के धार्मिक ग्रंथों की भाँति ही इन अल्पसंख्यक समुदायों के धर्मग्रंथों में भी इन अन्पसंख्यक समुदाय के लोगों के आचार-व्यवहार के नियमों का समावेश है और यह ग्रंथ ईश्वर की देन है। इन्हीं धार्मिक ग्रंथों में उस विधि जिसे व्यक्तिगत विधि (Personal Law) के नाम से जाना जाता है, उल्लिखित है। चाहे बहुसंख्यक समुदाय हो अथवा अल्पसंख्यक समुदाय यह चाहता है कि राज्य द्वारा उसकी इस व्यक्तिगत विधि में हस्तक्षेप न किया जाये। समाज में उसके आचार-व्यवहारों का विनियमन उसकी व्यक्तिगतविधि के अनुसार ही हों।

वर्तमान में जिस समुदाय के लोगों में अपने धर्म के प्रति जितनी अधिक निष्ठा होती है उतना ही धर्मान्ध अथवा साम्प्रदायिक कहा जाता है। इसी कारण से बहुसंख्यक समुदाय और अल्पसंख्यक समुदाय के लोग परस्पर एक दूसरे से घृणा करते हैं एवम् वैमनस्यता रखते हैं। धर्म के कारण बहुसंख्यक समुदाय और अल्पसंख्यक समुदायों में तनाव बना रहता है और उनके मध्य दूरियाँ निरंतर बढ़ रही हैं। जबकि कोई भी धर्म बैर, भेदभाव, संघर्ष एवम् घृणा का पाठ नहीं पढ़ाता है बल्कि सभी धर्मों में भाईचारे सहिष्णुता, मेलमिलाप, करूणा, एवम् दया की शिक्षाा मिलती है।

"मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना"

धर्म के आधार पर दूसरे पर अत्याचार करना न केवल अनैतिक, अनुचित एवं धर्म के विपरीत है बल्कि यह बर्बरता की निशानी है। अत: किसी भी राष्ट्र में सभी धर्मों के अनुयायीयों को समान संरक्षण मिलना चाहिये।

मानवाधिकार:-

मानवाधिकार मानव मात्र को प्रकृति द्वारा प्रदत्त वे अधिकार हैं जिनका प्रयोग वह सृष्टि की रचना के साथ ही करने लगा था जो मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ निरन्तर गतिशील तथा विकसित होती रही है। प्रारम्भिक चरण में जीवन, स्वतंत्रता तथा रोटी-कपड़ा और मकान तक सीमित मानवाधिकार आज शिक्षा-स्वास्थ्य, सम्मान, मानव गरिमा और जीवनापयोगी आवश्यक दशाओं के साथ विधिशासन तक विस्तारित होकर विश्व के प्राय: सभी देशों के विधि संहिता

का आवश्यक अंग बन चुका है इन मानव अधिकारों को संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणा, 1948 के चार्टर में भी समाहित कर लिया गया है किन्तु इस घोषणा स्वर्ण जयन्ती वर्ष 1998 तक तथा आज भी विश्व स्तर पर मानवाधिकारों का उल्लंघन एक अन्तर्राष्ट्रीय बहस का विषय बना हुआ है।

इस संदर्भ में सम्पूर्ण मानव समाज को मानवता और मानवाधिकार का पाठ कण्ठस्थ कराने वाला भारत संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार घोषणा के संस्थापक सदस्य होने के साथ ही वर्ष 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम पारित करके न केवल मानवाधिकार को विधिक स्थान प्रदान कया है अपितु राष्ट्रीय मानवाधिकार तथा राज्य मानवाधिकार आयोग की स्थापना भी की गयी है। भारत ने मानवाधिकार के अन्तर्गत न केवल संवैधानिक अधिकारों अपितु अन्तर्राष्ट्रीय प्रावधानों को भी शामिल किया है किन्तु भारत भी मानवाधिकार उल्लंघन का अपवाद नहीं रहा है। यह बात भिन्न है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार अपनी पंगु बैशाखी और न्यायपालिका अपनी सीमित शस्त्र से मानवाधिकार की रक्षा में प्रयत्नशील रहीं।

इतिहास एवं विकासः- मानवाधिकारों का सृजन उतना ही प्राचीन है जितना कि स्वयं मानव का इतिहास। पृथ्वी पर मानव ने स्वतंत्र अवतरण के साथ ही स्वच्छंद रूप से जीवन यापन प्रारम्भ किया। तब न शासक थे, न ही शासित व्यक्ति उन सभी अधिकारों का प्रयोग निर्वाध करता रहा जिसे प्रकृति ने उसे प्रदत्त किया। जिसमें शामिल था- प्राण, स्वतंत्रता, भोजन, वस्त्र और शरण। इन अधिकारों में मानव सम्यता एवं संस्कृति के साथ विस्तार हुआ जो वर्तमान मानवाधिकार का आवश्यक अंग बन चुका है।

वर्तमान विश्व मंच पर मानवाधिकार की मांग सर्वप्रथम ब्रिटेन से प्रारम्भ हुई जब वहाँ की जनता अपने शासक से वर्ष 1215 में मैग्नाकार्टा (महाधिकार पत्र) प्राप्त करने में सफल हुई। 15 जून 1215 को पारित मैग्नाकार्टा में यह प्रावधान किया गया कि प्रत्येक नागरिक के स्वाधीनता का सरंक्षण किया जायेगा और विधिपूर्ण नियम के अतिरिक्त उसके स्वतंत्रता का हनन नहीं किया जायेगा तथा किसी अभियुक्त को विचारण के बिना दण्ड नहीं दिया जायेगा। इसके बाद मानवाधिकार की यात्रा इस गति से प्रारम्भ हुयी कि उसने कभी पीछे मुड़ कर नहीं देखा। हैबियस कार्पस 1679, अमेरिका का बिल आफ राइट्स 1689, फ्रांस का मानवाधिकार घोषणा पत्र, 1789 के प्रकाश में विश्व के अधिकांश देशों ने मानवाधिकार (नैसर्गिक एवं अप्रतिदेय अधिकार) को अपने विधिक संहिता या संविधानों में स्थान दिया।[28]

मानव सृष्टि के लिए कलंक प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध (1914 से 1918 तथा 1938-1945) ने जब मानवाधिकार को झकझोर कर रख दिया तब विश्व समुदाय का ध्यान एक ऐसी संहिता

की ओर गया जो सम्पूर्ण मानव-समाज के मानव अधिकारों को न केवल सूचीबद्ध करे अपितु उसके संरक्षण के लिए भी कृत संकल्प रहे। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना (1945) के बाद मानवाधिकार को न केवल इसके चार्टर में शामिल किया गया अपितु अलग से वर्ष 1948 मानवाधिकार घोषणा पत्र भी जारी किया गया। 10 दिसम्बर, 1948 को जारी इस घोषणा पत्र में कुल 30 अनुच्छेद हैं जिसमें उन मानवाधिकारों को शामिल किया गया है जो प्रत्येक मानव के जीवन के लिए न केवल आवश्यक अपितु अपरिहार्य है। तत्कालीन संयुक्त राष्ट्र संघ के 48 देशों ने इस घोषणा पत्र के उपबंधों को अपनी राष्ट्रीय विधि या संविधान में शामिल कर चुके हैं।[29]

अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार घोषणा पत्र के 30 अनुच्छेदों में प्राकृतिक अधिकार (अनुच्छेद 1) जीवन स्वतंत्रता और समानता (अनच्छेद 3-15) वयस्क विवाह (अनुच्छेद 16) धार्मिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 18-19) आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार, व्यवसाय और समान कार्य के लिए समान वेतन (अनुच्छेद 22-26), सामाजिक कर्त्तव्य (अनुच्छेद 29) इत्यादि को शामिल किया गया है।

यद्यपि संयुक्त राष्ट्र चार्टर की प्रस्तावना में मूल मानवाधिकारों एवं मानव गरिमा को शामिल करके अनुच्छेद 1(3) में मूलवंश लिंग, भाषा या धर्म के आधार पर विभेद का प्रतिषेध किया गया है मानवाधिकार से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय बिल पारित किया गया जिसमें नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966 तथा आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा 1966 पारित की गयी। इन दोनों बिलों के लिए ऐच्छिक प्रोटोकाल के अन्तर्गत भारत ने इन बिलों का अनुसमर्थन 27 मार्च, 1979 को किया वर्तमान में 100 से अधिक राष्ट्रों ने इनका अनुसमर्थन कर दिया है।

वर्ष 1993 के वियना सम्मेलन में यह तथ्य सामने आया कि वर्ष 1948 के घोषणा पत्र का अनुपालन ठीक से नहीं हो पा रहा है। अतः इसके पुनः निर्धारण की आवश्यकता है सम्मेलन में जहाँ मानवीय अधिकारों को सार्वभौमिक तथा अविभाज्य माना गया और समानता विकास, लिंग भेद समापन और अल्पसंख्यकों को भी व्यापक अधिकार दिए जाने की मांग की गयी वहीं दूसरी तरफ अन्तर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय की स्थापना पर बल दिया गया।

मानवाधिकार के स्वर्ण जयन्ती वर्ष (1948-1998) के समापन पर भी विश्व स्तर पर मानवाधिकार का को यह स्थान और सम्मान नहीं मिल पाया था जिसकी कल्पना विश्व समुदाय ने की थी इस अवसर पर एमनेस्टी इण्ठरनेशन की जारी रिपोर्ट में बताया गया कि आज भी मानवाधिकार का हनन जारी है।[30]

मानवाधिकार और भारत

''बसुधैव कुटुम्बकम्'' की अवधारणा पर विकसित भारतीय दृष्टिकोण सदैव से ही 'मानव मात्र' से प्रेम करने पर आधारित रहा है। भारत अपनी परतंत्रता काल में ही न केवल संयुक्त राष्ट्र संघ का संस्थापक सदस्य बना अपितु 1948 में मानवाधिकार घोषणा पत्र पर भी हस्ताक्षर किया और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अपने संविधान के अनुच्छेद 51 में यह प्रावधान भी किया कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा में अभिवृद्धि के लिए प्रयास करेगा। इतना ही नहीं 1971 में पड़ोसी राज्य पूर्वी पाकिस्तान में जब मानवाधिकार का खुला उल्लंघन हो रहा था तो भारत ने इस केवल बग्लादेश के लाखों शरणार्थियों को शरण दी अपितु से मानवीय कृत्य के लिए पाकिस्तान से युद्ध का खतरा भी मोल लिया।[31]

भारत ने मानवाधिकार के प्रति अपनी पूर्ण सदिच्छा से कृतसंकल्प को प्रस्तुत करने के लिए भारतीय संविधान के भाग 3 में उन सभी अधिकारों को शामिल कर लिया है जो मूल मानवाधिकारों के स्रोत माने जाते हैं। इन अधिकारों में समानता (अनुच्छेद 14,15,16) अस्पृश्यता का अन्त (अनुच्छेद 17) स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19) प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 21) अवैध गिरफ्तारी के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 22) शोषण के विरूद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23,24) धार्मिक स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25-28), अल्पसंख्यकों के हितो का संरक्षण (अनुच्छेद 29, 30) तथा मूलअधिकारों के प्रवर्तन का अधिकार (अनुच्छेद 32 एवं 226) इतना ही नहीं संविधान के भाग 4 में इन अधिकारों के क्रियान्वयन के लिए राज्यों पर कर्त्तव्य अधिरोपित कर दिए गए हैं। वस्तुत: ये सभी मूल अधिकार मानवाधिकार के ही पर्याय हैं सच कहा जाय तो भारत ने मानवाधिकार को एक ''संवैधानिक अधिकार'' के रूप में आज से 52 वर्ष पूर्व ही स्थापित कर दिया था इसके पश्चात भी भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन(UNO) का सदस्य होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय बिल पर भी हस्ताक्षर कर दिया था। अत: उसके अनुसमर्थन में वर्ष 1993 मानवाधिकार संरक्षण संरक्षण अधिनियम पारित करके मानवाधिकार को एक नया आयाम दिया है।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 2 (द) के अन्तर्गत मानवाधिकार को अतिविस्तारित कर दिया गया है जिसके द्वारा मानवाधिकार जीवन, स्वतंत्रता समानता एवं गरिसा से सम्बन्धित वे अधिकार हैं जो भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्रत्याभूत हैं या जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में उल्लिखित हैं तथा जो भारतीय न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं। यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय बिल से है।

मानवाधिकारों की रक्षा, संरक्षण एवं उसके विविध पहलुओं की अध्ययन के लिए एक राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन का प्रस्ताव इस अधिनियम की धारा 3 में किया गया है। केन्द्र

सरकार द्वारा प्रथम मानवाधिकार आयोग का गठन 29 दिसम्बर, 1993 को कर दिया गया। कुल आठ सदस्यीय आयोग का अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालय का पूर्व न्यायाधीश हो सकेगा। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय का एक भूतपूर्व न्यायाधीश, उच्च न्यायालय का एक भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश और दो अन्य व्यक्ति जो मानवाधिकार के ज्ञाता हों, आयोग के सदस्य नियुक्त किए जायेंगे।

आयोग के कार्यों के सम्पादन के लिए (धारा 12 (ब)से (ज) में उल्लिखित विषयों) अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग तथा राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष भी इसके मनोनीत सदस्य माने जायेंगे। आयोग का मुख्य कार्यकारी अधिकारी इसका महासचिव होगा तथा इसका मुख्यालय दिल्ली में होगा। केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति से देश के अन्य भागों में सह-कार्यालयों की स्थापना भी की जा सकती है।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व शांति की स्थापना हेतु 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गयी। संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की गयी। इस घोषणा में उल्लिखित मानवाधिकार मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतनिर्हित गरिमा और सम्मान तथा विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति के आधार है। मानवधिकारों की घोषणा के पीछे यह कारण था कि मानवाधिकारों की उपेक्षा और अवमानना के परिणामस्वरूप विश्व में ऐसे बर्बर कार्य हुए जिनके कारण मनुष्य की अंर्तआत्मा घायल हुई और यदि भविष्य में मनुष्य को अत्याचार और उत्पीडन के विरूद्ध विद्रोह से रोकना है तो यह आवश्यक है कि विधि सम्मत शासन द्वारा मानवाधिकारों को संरक्षण प्रदान करके ऐसे विश्व का निर्माण किया जाये जिसमें सभी मानव वाक स्वतंत्रय और विश्वास की स्वतंत्रता का तथा भय और अभाव से मुक्ति का उपभोग कर सके। मानवाधिकारों के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र के लोगों ने चार्टर में मूल मानवाधिकार में मानव देह की गरिमा और महत्व तथा पुरूषों और स्त्रियों के समान अधिकारों में अपने विश्वास की पुनः पुष्टि की है और सामाजिक प्रगति करने तथा अधिकाधिक स्वतंत्रता के साथ उष्कृष्ट जीवन स्तर की प्राप्ति का निर्णय किया है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों में यह प्रतिज्ञा की है कि वे संयुक्त राष्ट्र ने सहयोग से मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सार्वभौम सम्मान जागृत करेंगे और उनका पालन करायेगें।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में यह घोषित किया गया है कि सब मनुष्य जन्म से स्वतंत्र हैं तथा वे आदर और अधिकारों में बराबर हैं। अतः बिनाकिसी जाति, नस्ल या धार्मिक भेदभाव के, उनको सब मानव अधिकार एवं स्वतंत्रताएं प्राप्त करने का मौलिक अधिकार प्राप्त है।

इसी घोषणा में कहा गया है कि जाति, रंग या सांस्कृतिक आधार पर पारस्परिक मानवों में ये भेदभाव मानव महत्वता पर होने वाले अपराध हैं और इन्हें राष्ट्रसंघ के घोषित सिद्धांतों और ठहराव में उल्लिखित नियमों के विरूद्ध माना जाना चाहिए ये भेदभाव जनता की शांति एवं सुरक्षा के लिए न केवल खतरनाक हैं अपितु उनके मित्रता और शांतिपूर्ण संबंधों में भी भारी घातक हैं।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 18 के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति को विचार और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार है । इस अधिकार के अंतर्गत अपने धर्म या विश्वास को परिवर्तित करने की स्वतंत्रता और अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप से या अकेले शिक्षा व्यवहार, पूजा और पालन में अपने धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतंत्रता है।" मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में व्यक्तियों के विचार, अत:करण एवं धर्म की स्वतंत्रता को मानव अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। इस अधिकार के अंतर्गत अपने धर्म या विश्वास को परिवर्तित करने, अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप से या अकेले शिक्षा, व्यवहार, पूजा और पालन में अपने धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतंत्रता को भी मानवअधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है।

उपर्युक्त अधिकार के उपयोग हेतु प्रत्येक व्यक्ति को अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी प्राप्त होनी चाहिए । अत: मानवाधिकारों की सर्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति कोअभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिकार के अंतर्गत हस्तक्षेप के बिना अभिमत रखने और किसी भी संचार माध्यम से और सीमाओं का विचार किये बिना जानकारी मांगने, प्राप्त करने और देने की स्वतंत्रता को भी सम्मिलित किया गया है।

इसके अतिरिक्त सिविल और राजनैतिक अधिकारों संबंधी अंतराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 18 के अनुसार -

(1) "प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अंतकरण और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार होगा। इस अधिकार के अंतर्गत अपनी रूचि का धर्म या विश्वास मानने या अपनाने की स्वतंत्रता और अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप से या एकांत में उपासना, परिपालन, व्यवहार और उपदेश से अपने धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतंत्रता भी है।

(2) किसी व्यक्ति को इस प्रकार प्रपीड़ित नहीं दिया जायगा जिससे उसकी अपनी रूचि का धर्म या विश्वास मानने या अपनाने की स्वतंत्रता कम होती हो।

(3) अपने धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतंत्रता पर केवल ऐसी मर्यादाएँ लगाई जा सकेगी जो विधि द्वारा निहित है और लोक सुरक्षा, व्यवस्था, स्वास्थ नैतिकता अथवा अन्य व्यक्तियों के

मूल अधिकारों और स्वतंत्रताओं के सरंक्षण के लिए आवश्यक है।

(4) इस प्रसंविदा के पक्षकार राज्य, माता-पिता की ओर जब लागू होता हो, तब विधिक संरक्षको की, उनकी अपनी निष्ठा के अनुरूप अपने बच्चों की धार्मिक और नैतिक शिक्षा सुनिश्चित करने की स्वतंत्रता का सम्मान करने का वचन देते हैं।''

इस अनुच्छेद द्वारा व्यक्तियों के विचार अंत:करण और धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार को मान्यता प्रदान की गयी है ओर इस अधिकार के अंतर्गत व्यक्ति को अपनी रूचि का धर्म या विश्वास मानते या अपनाने की स्वतंत्रता का भी अधिकार है व्यक्ति अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप से या एकांत में उपासना परिपालन, व्यवहार और उपदेश से अपने धर्म या विश्वास की अभिव्यक्ति कर सकता है। किसी व्यक्ति को इस प्रकार से प्रपीड़ित नहीं किया जा सकता है जिससे उसकी अपनी रूचि का धर्म या विश्वास मानने या अपनाने की स्वतंत्रता कम होती हो। माता-पिता को एवं विधिक संरक्षकों को अपनी निष्ठा के अनुसार अपने बच्चों की धार्मिक और नैतिक शिक्षा को सुनिश्चित करने की स्वतंत्रता को मान्यता दी गयी है। राज्य द्वारा किसी व्यक्ति के धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतंत्रता पर केवल ऐसे प्रतिबंध आरोपित किये जा सकते है जो विधि द्वारा विहित है और लोक सुरक्षा, व्यवस्था, स्वास्थ या नैतिकता अथवा अन्य व्यक्तियों के मूल अधिकारों और स्वतंत्रताओं के संरक्षण के लिए आवश्यक है।

व्यक्तियों के धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतंत्रता के अधिकार को सार्थक बनाने के लिए प्रसंविदा के अनुच्छेद 19 के अनुसार -

''(1) प्रत्येक व्यक्ति को किसी हस्तक्षेप के बिना अभिमत रखने का अधिकार होगा।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति कीस्वतंत्रता का अधिकार होगा। इस अधिकार के अंतर्गत सीमाओं का ध्यान दिए बिना मौखिक लिखित या मुद्रित रूप में, कला के रूप या अपनी रूचि के किसी अन्य संचार माध्यम से सभी प्रकार की सूचनाओं विचारों की खोज करने, प्राप्त करने और प्रदान करने की स्वतंत्रता भी है।

(3) इस अनु. के पैरा 2 में उपबंधित अधिकारों के प्रयोग के साथ विशेष कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व जुड़े हुए हैं अतएव यह कुछ निर्बधनों के अधीन हो सकेगा और ये निर्बधन ऐसे ही होंगे जो विधि द्वारा उपबंधित है और (क)अन्य व्यक्तियों के अधिकारों और व्यक्तियों के प्रति सम्मान के लिए, (ख) राष्ट्रीय सुरक्षा या लोक व्यवस्था या लोक स्वास्थ या नैतिकता के संरक्षण के लिए आवश्यक है।''

धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार के लिए वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार अति आवश्यक है परन्तु वाक एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर राज्य द्वारा निर्बन्धन लगाये

जा सकते है और राज्य अन्य व्यक्तियों के अधिकारों और व्यक्तियों के प्रति सम्मान के लिए एवं राष्ट्रीय सुरक्षा या लोक व्यवस्था या लोक स्वास्थ या नैतिकता के सरंक्षण के लिए विधि द्वारा वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को निर्बन्धित कर सकता है।

सिविल और राजनैतिक अधिकार अंतराष्ट्रीय प्रंसविदा का उद्देश्य मानवधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुसार निंभीक और स्वतंत्र मानव के आदर्श के लक्ष्य की प्राप्ति है । यह आदर्श तभी प्राप्त किया जा सकता है जब ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जायें जिनमें प्रत्येक व्यक्ति अपने सिविल और राजनैतिक अधिकारों तथा अपने आर्थिक एवं सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का उपभोग कर सके।

सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 27 के अंतर्गत अल्पसंख्यकों के धर्म विश्वास एवं संस्कृति के अधिकार एवं संरक्षण प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 27 के अनुसार उन राज्यों में जिनमें जातीय, धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक हैं, ऐसे अल्पसंख्यक व्यक्तियों को अपने समूह के अल्पसंख्यकों के साथ सम्मिलित होकर अपनी स्वयं की संस्कृति का आनंद लेने, अपने धर्म को मानने और उस पर आचरण करने या अपनी भाषा का प्रयोग करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।

संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राष्ट्रों का यह कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व है कि वह मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा एवं सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अंतर्गत मान्यता प्राप्त एवं संरक्षित व्यक्तियों जिसमें कि अल्पसंख्यक भी सम्मिलित हैं ,के धार्मिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों को संरक्षण प्रदान करें । धर्म, भाषा, लिपि एवं विश्वास के आधार पर अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न न होने दें । चूंकि भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य राष्ट्र है अत: भारत का भी यह कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व है कि वह व्यक्तियों के धर्म एवं विश्वास की स्वतंत्रता के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करे। अत: इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु भारतीय संविधान में निम्नलिखित व्यवस्था की गई है -

1. अनुच्छेद 25 के अंतर्गत अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार सभी व्यक्तियों को प्रदान किया गया है।

2. अनुच्छेद 26 के अंतर्गत प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या किसी अनुभाग को धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता का मौलिकअधिकार प्रदान किया गया है जिसके अंतर्गत प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी भाग को-

क- धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का,

ख-अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का,

ग- जंगमऔर स्थावर संपत्ति के अर्जन और स्वामित्व का, और

घ- ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का, अधिकार होगा।

3. अनुच्छेद 27 के अंतर्गत किसी विशिष्ट धर्म की अभिव्यक्ति के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता प्रदान की गई है। अनुच्छेद 27 केअनुसार किसी भी व्यक्ति को ऐसे करों का संदाय करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिसके आगम किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक संप्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से विनियोजित किये जाते हैं।

4. अनुच्छेद 28 के अंतर्गत यदि कोई संस्था किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है भले ही उसका प्रशासन राज्य करता है ऐसी शिक्षा संस्था में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है।

5. अनुच्छेद 29 के अंतर्गत अल्पसंख्य वर्ग के हितों को संरक्षण प्रदान किया गया है अनुच्छेद 29 के अंतर्गत भारत के राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है उसे बनाए रखने का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है।

6. अनुच्छेद 30 के अंतर्गत अल्पसंख्यक वर्गों को शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है अनुच्छेद 30 के अनुसार धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा ।

अनुच्छेद 30 के उपखंड -1. क खण्ड एक में निर्दिष्ट किसी अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की संपत्ति के के अनिवार्य अर्जन के लिए अपबंध करने वाली विधि बनाते समय राज्य यह सुनिश्चित करेगा किऐसी संपत्ति के अर्जन के निए ऐसी विधि द्वारा नियत या उसके अधीन अवधारित रकम इतनी हो कि उस खण्ड केअधीन प्रत्याभूत अधिकार निर्बंधित या निराकृत न हो ज़ाये

अनुच्छेद 30 के उपखंड -2. शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरूद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबंध में है ।

भारतीय संस्कृति में धर्म सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है दूसरे शब्दों में इसे भारतीय संस्कृति का प्राण कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी। प्राचीन काल से ही धर्म को एक प्रेरक एवं नियामक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। समाज धर्म में विशाल आयाम में क्रियाशील रहा है। धर्म का व्यवहारिक महत्व कर्त्तव्य का समुचित पालन था। जिसके माध्यम से व्यक्ति का लौकिक उत्कर्ष के साथ साथ

अध्यात्मिक उत्कर्ष हुआ। जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्येक भारतीय का जीवन ज्ञान गर्भित, सदाचरित, एवं धर्म श्रवण था। इसके समस्त कर्त्तव्य एवं कार्य ज्ञान समन्वित और श्रृद्धासिक्त होकर धर्म से ही उत्प्रेरित एवं गतिमान होते थे। जो उसके परिवार एवं समाज को गठित करने में अभूतपूर्व योग प्रदान करते थे।[32]

भारत ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में धर्म के नाम पर हमेशा से ही अत्याचार तथा अन्याय होते रहे हैं और आज भी भेदभाव, मतभेद, हिंसा, आतंकवाद, उत्पीड़न तथा दुर्वव्यवहार के माध्यम से मानवाधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। इसे रोकने के लिये मानवाधिकारों की सार्वजनिक घोषणा संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा की गयी। भारत में भी 1993 में मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया है यह राष्ट्र तथा राज्य स्तर पर गठित है। परंतु मानवअधिकार आयोग भी धर्म से संबंधित अत्याचारों को रोकने में पूर्णतः सफल नहीं हो पाया है फिर भी रोकने के प्रयास जारी है और कुछ हद तक इन सब पर नियंत्रण पा लिया गया है।

संदर्भ सूची

1. महाभारत : शांतिपर्व 110/11
2. किरण काम्पीटीशन टाइम्स, द्वितीय संस्करण 2000, पृ. 60
3. एडवर्ड टेलर, हावर्ट स्पेन्सर, ग्रुप थिस्टीज ऑफ रिलीजन एंड द इन्टीविजुअल लंदन 1916
4. मेक्समूलर, ''स्टडीज इन द फिलासॉफी आफ रिलीजन'' पृ. 68-70
5. ई. डब्ल्यू. हाफकिन्स रूपान्तरकार डॉ.तुलसीराम शर्मा, धर्म का इतिहास,प्रथम संस्करण पृ. 7
6. इमैनुएल कान्ट, ''क्रिटीक ऑफ प्योर रीजन'' नार्मन केम्प-स्मिथ द्वारा अनुवादित, पृ. 511
7. पूर्वाक्त
8. सी.के. दुबे, ''साक्षी समय है'' प्रथम संस्करण 2001 पृ. 124
9. डॉ. मीनाक्षी स्वामी, भारत में संवैधानिक समन्यवय और व्यवहारिक विघटन संस्करण 2000 पृ. 61
10. रतीलाल वनाम बम्बई राज्य, ए.आई. आर. 1954, सु.को. 388
11. एस.पी. मित्तल बनाम भारत संघ ,ए.आई. आर. 1983, सु.को. 1
12. ए.आई. आर. 1954, सु.को. 282
13. हनीफ कुरेशी बनाम बिहार राज्य, ए.आई. आर. 1958, सु.को. 731
14. ए.आई. आर. 1954, सु.को. 282
15. एडवर्ड एम.डी.,द फिलासफी आफ रिलीजन पृ. 9
16. डॉ. राधाकृष्णन, जीवन के आध्यात्मिक दृष्टि, पृ. 205
17. डॉ. हृदयनाथ मिश्र, धर्म दर्शन परिचय , नवम संस्करण पृ. 10-35
18. चाणक्य, नीति शास्त्र अध्याय 17 श्लोक 17
19. मनुस्मृति, अध्याय 4 श्लोक 239
20. डॉ. एस.डी. शर्मा, एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस इन एनसिएन्ट इंडिया, 1988
21. मुरलीधर चतुर्वेदी, प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था, 1995 पृ. 5
22. डा. पारस दीवान, आधुनिक हिन्दु विधि, 1992 पृ. 12
23. न.च. पुरूस्य बुद्धिप्रयत्न पूर्वक : वृहदारूयकोपनिषद पर टीका 2: 4, 10
24. मुरलीधर चतुर्वेदी, प्राचीन भारतीय विधि व्यवस्था 1995, पृ. 45
25. मनुस्मृति अध्याय 7 श्लोक 14-32
26. डा. पी.वी. काणे, हिन्दी आफ धर्मशास्त्र, 1968 प्रथम खण्ड पृ. 1

27. ई. आर्शीवाथम, पॉलिटिकल थ्यौरी संस्करण , अष्ठम 1963 पृ. 51
28. पॉलिटिकल एंड लॉ टाइम्स 2000 मई. पृ. 5-8
29. डा. जय-जय राम उपाध्याय, मानवाधिकार, संस्करण प्रथम पृ. 20
30. डॉ. एस. के. कपूर, मानवाधिकार, संस्करण प्रथम, पृ. 14
31. डा. बसन्तीलाल बावेल, मानवाधिकार संस्करण प्रथम पृ. 16
32. डा. मनोज कुमार सिंह, भारत में सामाजिक परिवर्तन, प्रथम संस्करण 2000 पृ. 68

अध्याय -2

धर्म की स्वतंत्रता और भारतीय संविधान

जहाँ तक धर्म का संबंध है निम्नलिखित तीन प्रकार के राज्य हो सकते हैं :-

1. वे राज्य जो किसी विशेष धर्म का समर्थन करते हों। इन्हें धार्मिक राज्य भी कहते हैं जैसे पाकिस्तान, बांग्लादेश, साऊदीअरब , अफगानिस्तान आदि। इस प्रकार के राज्यों में दूसरे धर्म के मानने वाले पर प्राय: अत्याचार होते रहते हैं। इंग्लैंड में जब कैथोलिक शासन थो तो प्रोटेस्टेन्ट्स की हत्यायें की गई और जब प्रोटेस्टेण्ट शासन हुआ तो कैथोलिक समुदाय के लोगों पर अत्याचार किए गये।

पाकिस्तान में सुन्नी शासन है इसलिये शिया सम्प्रदाय के लोगों व क्रिश्चियन एवं हिन्दु लोगों पर अत्याचार होते रहते हैं। हाल ही में अफगानिस्तान में बुद्ध भगवान् की प्रतिमाओं को तोड़ा गया।

2. नास्तिक राज्य जिसमें धर्म को बिल्कुल मान्यता नहीं दी जाती हो एवम् राज्य धर्म के विरूद्ध हो। और,

3. तीसरे प्रकार का राज्य धर्म निरपेक्ष राज्य है जो किसी विशेष धर्म का समर्थन नहीं करता है अपितु सभी धर्मों के प्रति समभाव रखता है। संयुक्त राज्य अमेरिका धर्म निरपेक्ष राज्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के अनुसार कांग्रेस किसी धर्म को स्थापित करने या अबाध रूप से मानने पर निर्बन्धन लगाने वाली विधि नहीं बन सकती है। भारतीय संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता अर्निबंधित नहीं है बल्कि धार्मिक स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्वन्धन लगाये जा सकते हैं।[1]

धर्मनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा :-

भारत प्राचीन काल से ही धर्म-निरपेक्ष रहा है यहां सभी धर्मबिलंबियों के साथ समान व्यवहार किया जाता रहा है। राज्य के धर्म-निरपेक्ष होने का तात्पर्य राज्य का धर्म के मामले में पूर्णत: तटस्थ होने से है। धर्म निरपेक्ष राज्य प्रत्येक धर्म को समान रूप से संरक्षण प्रदान करता है, किन्तु किसी धर्म में हस्तक्षेप नहीं करता है। धर्म निरपेक्षता न ईश्वर विरोधी है ओर न ईश्वर-समर्थक है। यह भक्त, संशयवादी और नास्तिक सभी को समान मानती है।[2]

धर्मनिरपेक्ष राज्य में धर्म के आधार पर किसी के विरूद्ध विभेद नहीं किया जाता है। पंथ-निरपेक्ष राज्य में राज्य का संबंध मानवों के आपसी संबंधों से रहता है। मनुष्य और ईश्वर के बीच के संबंध राज्य के दायरे से बाहर है। धर्म व्यक्ति के अंत:करण से संबंधित विषय है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने विश्वास के अनुसार किसी भी धर्म को मानने तथा किसी भी ढंग से ईश्वर की पूजा करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिये।[3] मनुष्य अपने धार्मिक विश्वासों के लिए राज्य के प्रति उत्तरदायी नहीं है। ईश्वर की पूजा कोई जैसे भी चाहे कर सकता है। कानून द्वारा किसी व्यक्ति को किसी विशेष पूजा-पद्धति को अपनाने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।[4] भारतीय संविधान द्वारा सभी

व्यक्तियों को अंत:करण की स्वतंत्रता और अपने धर्म को अबाध रूप में मानने, आचरण करने या प्रचार करने का मौलिक अधिकार दिया गया है ।

भारत के संविधान के निर्माण से पूर्व ही संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948 में कर दी गयी थी जिसमें धार्मिक स्वतंत्रता को मानवाधिकारों के रूप में मान्यता प्रदान की गयी। भारत का संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने के कारण भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारत के संविधान में व्यक्तियों के धर्म संबंधी मानवाधिकारों को मौलिक अधिकारों के रूप में सम्मिलित किया था जिससे किसी भी व्यक्ति को अपने धर्म का प्रचार-प्रसार एवं धर्म के अनुसार आचरण करने में किसी प्रकार की बाधा या अवरोध महसूस न हो।

संविधान निर्माता चाहते थे कि भारत एक पंथ निरपेक्ष राज्य हो। इसलिए संविधान की उद्देशिका में भारत के लोगों ने देश के समस्त नागरिकों के लिए ''विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता'' सुनिश्चित करने के लिये दृढ़ संकल्प किया जो कि पंथ निरपेक्ष राज्य की अभिव्यक्ति करता है। संविधान में अनुच्छेद 25 से 28 के अंतर्गत धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में इसी संकल्प की पूर्ति हेतु समाविष्ट किया गया है। 42 वे संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा संविधान की उद्देशिका में अभिव्यक्त रूप से ''पंथ निरपेक्ष'' शब्दों को जोड़ा गया है। भारतीय संविधान की उद्देशिका इस प्रकार है:-

''हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :''

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म
और उपासना की स्वतंत्रता
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और

अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता, बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नबंम्बर 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छ: विक्रमी) को एतत् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मपित करते हैं।''

डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा के मतानुसार ''धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत, जो हमारे

संविधान के आधार में हैं, और हाल-हाल तक सहज रूप से स्वीकृत था, अचानक संशय के दायरे में आ गया है। इधर कुछ दिनों से लेखों, व्याख्यानों आदि के द्वारा एक शक्तिशाली मुहिम उसके विरोध में चलायी जा रही है। कुछ लोग सिर्फ 'धर्म निरपेक्षता' शब्द पर एतराज करते हैं और उसकी जगह ''पंथनिरपेक्षता'' शब्द रखना चाहते हैं, जो उनकी दृष्टि में अंग्रेजी शब्द 'सेक्यूलर' का सही अर्थ हुआ। धर्म उनकी दृष्टि में मनुष्य के कर्त्तव्य का आधार होता है। इसलिए कोई भी राजनीति इससे निरपेक्ष नहीं हो सकती। जो धर्मनिरपेक्षता का विरोध कर रहे हैं, वे राजनीति के 'सेक्यूलर' होने के ही विरोधी हैं। हिन्दी में हम इसे चाहे जो नाम दें जहां तक अर्थ का सबाल है, चूँकि फिलहाल धर्मनिरपेक्षता 'सेक्यूलर' होने के ही विरोधी हैं। हिन्दीं में हम इसे चाहे जो नाम दें जहाँ तक अर्थ में आमतौर इसे व्यवहार में लाया जाता है, इसलिए यहाँ हम 'धर्मनिरपेक्षता' का प्रयोग अंग्रेजी शब्द सेक्यूलर के ही अर्थ में करेंगे।[5]

'सेक्यूलर' शब्द का अर्थ है इंद्रियगम्य, इहलौकिक ज्ञान और कर्म से संबंद्व उन चीजों का क्षेत्र, जिनका संबंध आम लोगों की देनन्दिन जिदंगी से है यह उस दुनिया से भिन्न होता है जो ईश्वर, इतरलोक या अन्य धार्मिक विश्वासों से संबंद्ध है। सेक्यूलरिज्म का अर्थ है इन्द्रियगम्य साक्ष्यों पर आधारित संसार की अवधारणा को कबूल कर विभिन्न सांसारिक अर्थकलाप में पारलौकिक या दूसरी ऐसी भावनाओं का हस्तक्षेप रोकना, जिसके आधार में कोई ऐच्छिक साक्ष्यता तर्कविहिन नहीं है।[6]

भारतीय धर्मनिरपेक्षता के विषय में जस्टि्स कृष्णा अय्यर ने लिखा है कि अतीत में सुधारकों, राजनायिकों, साधुत्वपूर्ण नेताओं तथा सहिष्णु शासकों ने एक ऐसी संस्कृति का सृजन किया जो व्यापक तौर पर धर्मनिरपेक्ष थी, यद्यपि उसमें ईश्वरवाद को समुचित स्थान दिया गया था। वर्तमान संविधान उसके उपकरणों तथा प्रक्रियाओं द्वारा ऐसी ही मिश्रित परम्परा को सशवत बनाया गया है। व्यस्क मताधिकार, समय-समय पर निर्वाचन अल्पसंख्यकों के अधिकार, संसदीय संस्थाएँ, मूलभूत स्वतंत्रताएँ तथा सबसे बढ़कर धर्म, जाति तथा कट्टरता की निष्ठाओं से ऊपर उठी हुई, परम्पराओं तथा मानववादी जीवन शैलियों पर आधारित धर्मनिरपेक्ष न्याय शास्त्र ही भारतीय धर्म-निरपेक्षता के मूल आधार है।[7]

धर्म निरपेक्षता की आवश्यकता इसलिए है, कि धर्मप्रधान राज्य धार्मिक अल्पसंख्यों के अधिकारों की सुरक्षा नहीं कर सकता। धर्मनिरपेक्षता अथवा लौकिकता भारत को एक राष्ट्रीय एवं राजनीतिक समुदाय बनाने की एक युक्ति है। यह बहुल धर्मावलम्बी नागरिकों को समान सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सहयोग दिलवाने वाला साधन है।[8]

विभाजन के परिणामस्वरूप तथा अन्य कारणों से भारत में साम्प्रदायिकता इतनी गहरी जड़े जमा चुकी

है कि समान नागरिक संहिता {Comman civil code} की मांग भी "धर्म पर आक्रमण" माना जाता है। शाहवानों का मामला तथा सर्वोच्च न्यायलय का निर्णय जिसमें मुस्लिम परिव्यक्ता औरतों को निर्वाह भत्ता स्वीकार किया गया था, मुस्लिम व्यक्तिगत कानून में हस्तक्षेप माना गया। भारत की धर्मनिरपेक्ष सरकार को कट्टर मुसलमानों के आन्दोलन (अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के अध्यक्ष इब्राहिम सुलेमान सेठ आदि) के समक्ष झुकना पड़ा और कानून में ही संशोधन करना पड़ा।[9]

संविधान द्वारा मान्य तथा सरकार द्वारा अपनाई गयी आरक्षण की नीतियों को भी साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखा जा रहा है ऐसी ही आरक्षण व्यवस्था की मांक गैर-हिन्दू सम्प्रदायों के द्वारा की जा रही है। धर्म निरपेक्ष राज्य का आधारभूत सिद्धांत है जो कि आधुनिक प्रजातांत्रिक व्यवहार के अंतर्गत आता है नेहरू के शब्दों में, "धर्म निरपेक्ष राज्य का अर्थ है धर्म और आत्मा की स्वतंत्रता जिसका कोई धर्म नहीं उनके लिये स्वतंत्रता।"[10]

एस. आर. बोम्बई बनाम भारत संघ [11] के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि 'पंथनिरपेक्षता' संविधान का आधारभूत ढांचा है। राज्य सभी धर्मों और धार्मिक समुदायों के साथ समान व्यवहार करता है। धर्म व्यक्तिगत विश्वास की बात है। उसे लौकिक क्रियाओं में नहीं मिलाया जा सकता है। लौकिक क्रियाओं का राज्य विधि बनाकर विनियिमित कर सकता है। न्यायमूर्ति रामास्वामी के दृष्टिकोण में पंथनिरपेक्षता ईश्वर विरोधी नहीं है। भारतीय परिपेक्ष्य में पंथ निरपेक्षता का सकारात्मक रूप है। सकारात्मक पंथनिरपेक्षता वैयक्तिक विश्वास को आध्यात्मिक पथ से पृथक करती है। राज्य न तो किसी धर्म का पक्ष लेता है न ही किसी धर्म का विरोध करता है। राज्य धर्म के मामले में तटस्थ है और सभी धर्मो के साथ समान व्यवहार करता है।

भारत में राज्य का कोई विशेष धर्म या राजकीय धर्म नहीं है लेकिन इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं लगाया जा सकता कि भारत में राज्य द्वारा किसी धर्म का सम्मान या आदर नहीं किया जाता है। भारत में राज्य सभी धर्मों के प्रति सद्भाव और समानता रखते हुए सभी को समान रूप से संरक्षण व सुरक्षा प्रदान करता है। यदि धर्म के नाम पर राज्य द्वारा कोई भेद-भाव किया जाता है तो यह संविधान के अनुच्छेद 14, 15 एवम् 16 का उल्लंघन होने के कारण असंवैधानिक होगा।

संतोष कुमार बनाम सचिव मानव संसाधन विकास मंत्रालय[12] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पंथनिरपेक्ष राज्य धर्म के विरूद्ध नहीं है, यह न तो ईश्वर का विरोध करता है और न ही उसका समर्थन। इसकी दृष्टि में धर्मभीरू, पाखण्डी और नास्तिक समान हैं। पंथनिरपेक्षता धर्मपरायणता के विरूद्ध नहीं है।

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य और अन्य[13] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा

कि व्यक्तियों की एकता जो कि संविधान का एक सूत्र वाक्य है उसको देश के किसी शक्तिशाली वर्ग के धार्मिक उन्माद या कट्टरवादी प्रवृत्ति से नष्ट नहीं किया जाना चाहिए। भारत का संविधान संपूर्ण धार्मिक तटस्थता बनाये रखने की कोशिश करता है। वह जीवन के सभी पहलूओं में समानता, सहनशीलता तथा सामाजिक न्याय स्थापित करने की कोशिश करता है तथा जातिवाद, संप्रदायवाद को दूर हटाने की कोशिश करता है क्योंकि भारत में धर्म निरपेक्षता एक विशेष जाति के लिए नहीं है परंतु यह शब्द समानता तथा सद्भावना परिलक्षित करता है।

चार्ल्स वाडलाफ[14] ने सत्रहवीं शताब्दी में पहली बार धर्म निरपेक्ष शब्द का प्रयोग किया था जिसको समय के साथ मानवीय समर्थन मिलता गया।

आक्सफोर्ट डिक्सनरी के अनुसार- ''धर्म निरपेक्ष शब्द का अर्थ है कि नैतिकता को पूरी तरह वर्तमान मानव जीवन की रक्षा में लगे रहना चाहिए तथा इस कार्य में दूसरी बातें जैसे ईश्वर में विश्वास या भविष्य का अध्ययन को छोड़ देना चाहिए।''[15]

एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका के अनुसार- ''धर्म निरपेक्षता को संपूर्णतावादी व्यवहार की शाखा के रूप में परिभाषित किया गया है जो कि मानव जाति के भौतिक, नैतिक तथा सामाजिक सुधार के लिये है तथा जो न तो धर्म की आस्था संबंधी समस्याओं को स्वीकार करता है और न ही अस्वीकार।''[16]

एनसाइक्लोपिडिया ऑफ सोशल साइंसेस में 'धर्म निरपेक्षता' को प्रोफेसर गायथिनसम ने इस प्रकार परिभाषित किया है ''यह एक स्वशासी ज्ञान की धुरी को स्थापित करने का प्रयास है जिसमें एक अलौकिक तथा पुराने तथ्यों के प्रति निष्ठा सम्मिलित है उन्होने इसके दार्शनिक पक्ष के रूप में बताते हुए कहा है कि यह एक अध्यात्मिक शिक्षा तथा अध्यात्मवाद के विरूद्ध क्रांति है।''[17]

इन्होंने जीवन के तथा विचारों की धर्म निरपेक्षता की प्रक्रिया के बारे में बताया है। जिसके द्वारा धार्मिक वर्गवाद दैनिक सामाजिक तथा जीवन के आर्थिक पहलुओं के संपर्क में आता है। व्यक्ति के सामाजिक तथा समाज के सुख को धर्मनिरपेक्षता से जोड़ता है। तथा इसके द्वारा सामाजिक न्याय और विश्व के कल्याण की स्थापना की कोशिश की गई है।

केशवानंद भारती[18] तथा **इंदिरा गांधी**[19] के वादों में यह अभिनिर्धारित किया कि ''धर्मनिरपेक्षता भारतीय संविधान का आधारभूत ढांचा है यह सत्य है कि संविधान की दूसरी अनुसूचि भी संवैधानिक प्राधिकारियों के शपथ लेने का प्रारूप को ईश्वर के नाम पर लेने का प्रावधान करती है। लेकिन यह इस बात को मान्यता नहीं देता कि उस व्यक्ति को किसी धार्मिक आस्था या किसी विशेष धर्म के ईश्वर में विश्वास होना चाहिये अपितु वह अपनी शपथ से बाध्य होगा तथा संविधान एवं अन्य

विधियों की रक्षा करेगा।'' यह बात महत्वपूर्ण है कि शपथ अधिनियम 1873 को, शपथ अधिनियम 1867 द्वारा इसलिये निश्चित कर दिया था कि इसे संविधान की धर्मनिरपेक्षता की भावना से संगत बना दिया गया है।

अरूणा राय और अन्य बनाम भारत संघ 20 के वाद में न्यायमूर्ति धर्माधिकारी ने कहा है कि पंथ निरपेक्षता सकारात्मक अर्थो में पारस्परिक समझदारी और विभिन्न धर्मो के प्रति सम्मान बनाये रखती है। पंथ निरपेक्षता की आवश्यकता राज्य के लोगों की भेदभाव रहित धार्मिक स्थिति का नाम है। किसी भी धर्म के प्रति एक पूर्ण उदासीन दृष्किोण अथवा एक समुदाय के लोगों के धर्म और विश्वास को दूसरे धर्म के लोगों के द्वारा समझने तथा सम्मान करने की स्थिति उत्पन्न करके एवं अपनाकर पंथनिरपेक्षता हमेशा आचरित की जा सकती है। इस प्रकार की पारस्परिक सहभागीदारी तथा एक दूसरे के धार्मिक विश्वास के प्रति सम्मान को बनाए रखते हुए परस्पर असहिष्णुता और अविश्वासों को हटाया जा सकता है।

धर्म की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन :-

भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्ष राज्य की अवधारणा के अनुरूप राज्य का स्वयं का कोई धर्म न होते हुए भी सभी व्यक्तियों को धर्म की स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है परन्तु धर्म की स्वतंत्रता संबंधी यह मौलिक अधिकार अत्यान्तिक नहीं है अपितु राज्य द्वारा व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं।

यथा अनुच्छेद 25 (1) के अनुसार सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के दूसरे उपबंधों के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अंत:करण की स्वतंत्रता तथा धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार है। किन्तु धर्म-स्वातंत्रय का यह अधिकार भी अन्य अधिकारों की भांति अत्यन्तिक अधिकार नही है। अनुच्छेद 25 के खण्ड (2) के उपखंड क और ख के अधीन राज्य उस अधिकार पर विधि बना कर निम्नलिखित आधारों पर निवंर्धन लगा सकती है :-

(क) धार्मिक आचरण से संबंद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाओं को विनियमित या निबंन्धित करने के लिए।

(ख) सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए अथवा हिन्दुओं की सार्वजनिक कार्य-संस्थाओं के सभी वर्गों और विभागों के लिए।

किसी भी व्यवस्थित समाज में निर्वाध स्वतंत्रता संभव नहीं हो सकती। धर्म की स्वतंत्रता पर निम्नलिखित निबंर्धन लगाये जा सकते हैं :-

1. अनुच्छेद 25 (1) के अनुसार लगाये जा सकने वाले निर्बन्धन :- अनुच्छेद 25 (1) के अन्तर्गत किसी व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता पर निम्न प्रतिबन्ध आरोपित किये जा सकते हैं -

सार्वजनिक व्यवस्था -

धर्म के नाम पर ऐसा कार्य नहीं कियाजा सकता जो सार्वजनिक व्यवस्था सदाचार एवं जनता के स्वास्थ्य के विरूद्ध हो। लोक व्यवस्था शब्द की परिभाषा संविधान में नहीं दी गई है परन्तु **रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य**[21] में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि लोक व्यवस्था, शांति और प्रशांति (Peace and tranquillity) की स्थिति है जो किसी राजनीतिक समाज में शासन द्वारा आंतरिक विनियमों के प्रवर्तन के परिणाम स्वरूप अभिभावी होती है। यदि कोई बात समाज की मुख्य धारा में गड़बड़ी पैदा करती है और केवल कुछ व्यक्तियों को ही नहीं प्रभावित करती तो वह लोक व्यवस्था भंग करती है। **रामजी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[22] के वाद में में उच्चतम न्यायालय ने दण्ड संहिता की धारा 295 क को इस आधार पर संवैधानिक घोषित किया कि इस धारा के अनुसार नागरिकों के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को जानबूझकर विद्धेष पूर्ण ढंग से आघात पहुँचाना एक दण्डनीय अपराधा है। लोक व्यवस्था के हित में निर्बन्धन है। इसी प्रकार से बलपूर्वक धर्म परिवर्तन कराने का प्रयत्न या दूसरे के धार्मिक कार्य-कलापों में हस्तक्षेप करके धार्मिक भावनाओं को भड़काना लोक व्यवस्था का भंग है । जानवरों को काटना और सार्वजनिक स्थान पर शरीर के अभद्र प्रदर्शन को धर्म के नाम पर औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। इसी प्रकार से धर्म के नाम पर अस्पृश्यता या मानव क्रय-विक्रय (जैसे दक्षिण भारत में देवदासी की प्रथा) आदि कृत्यों को धर्म के नाम पर अनुमति नहीं दी जा सकती है, इस प्रकार के कृत्य विधि द्वारा निषिद्ध हैं।

यदि धर्म के 'प्रचार' के नाम पर यदि किसी व्यक्ति को बलपूर्वक या दबाव डालकर धर्म-परिवर्तन के लिए विवश किया जाता है तो उससे लोक-व्यवस्था भंग होने की आशंका हो सकती है जिसे कानून द्वारा रोका जा सकता है।

रमेश बनाम भारत संघ[23] के मामले मे याचिकाकर्त्ता लोकहित याचिका के माध्यम से न्यायालय से निवेदन किया कि वह समुचित आदेश जारी करके भीष्म साहनी के उपन्यास पर आधारित 'तमस' धारावाहिक को दूरदर्शन पर दिखाये जाने पर रोक लगा दे, क्योंकि इसे देखकर उसकी धार्मिक भावना को ठेस पहुँचती है। इस धारावाहिक में भारत और पाकिस्तान के बँटवारे के पूर्व हिन्दु और मुस्लिम दोनों समुदायों में हुई धार्मिक हिंसा एवं मारकाट के दृश्यो को चित्रित कियागया है। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि इस मामले में याचिकाकर्त्ता के अनुच्छेद 25 में प्रदत्त अधिकार का उल्लंघन नहीं होता है किन्तु उसे धार्मिक सहिष्णुता कायम रखने के लिए न्यायालय

का ध्यान आकर्षित करने का अधिकार है। इस मामले में ऐसा कोई संकट नहीं प्रतीत होता है तथा प्रत्यर्थियों ने सीरियल दिखाने में दुर्भावनापूर्वक कार्य नहीं किया है। इसके विपरीत लोगों को इससे शिक्षा ही मिलती है ताकि ऐसे कार्यों को भविष्य में दुहराया न जाये।

इस्माइल फारूकी बनाम भारत संघ[24], (अयोध्या का मामला) के मामले में न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि राज्य संप्रभु शक्ति के प्रयोग में मस्जिद का अधिग्रहण कर सकती है। बाबरी मस्जिद के ढहाये जाने के कारण देश के कई भागों में हिंसा फैल गई थी इसलिये देश में साम्प्रदायिक सौहार्द्र तथा लोक व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने एक अध्यादेश जारी करके विवादित ढाँचे के पास की समस्त भूमि का अधिग्रहण कर लिया और मामले को अनुच्छेद 143 के अधीन उच्चतम न्यायालय की राय के लिए सौंप दिया। यह अध्यादेश बाद में अधिनियम बन गया। याचिकाकर्त्ता द्वारा इस अधिनियम की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गयी कि यह अधिनियम पंथ निरपेक्षता के विरूद्ध है और हिन्दू समुदाय का मुस्लिम समुदाय की अपेक्षा अधिक पक्ष लेता है क्योंकि यह अधिनियम उन्हें विवादित ढाँचे में नमाज पढ़ने से वंचित करता है जबकि हिन्दुओं को वहाँ पूजा करने का अधिकार है।

उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि राज्य को अपनी सम्प्रभु शक्ति के प्रयोग में पूजा के स्थान जैसे मस्जिद, मन्दिर और गिरिजाघर को अधिग्रहण करने का अधिकार है। पूजा करने के अधिकार के अन्तर्गत किसी या हर स्थान पर पूजा करने का अधिकार शामिल नहीं है। अनुच्छेद 25 और 26 केवल उन धार्मिक प्रथाओं को सुरक्षा प्रदान करते हैं जो धर्म के आवश्यक तत्व हैं। मस्जिद में नमाज पढ़ना इस्लाम धर्म का आवश्यक तत्व नहीं है। एक मुसलमान किसी भी स्थान पर नमाज पढ़ सकता है। अत: सरकार लोकव्यवस्था बनाए रखने के लिए मस्जिद का अधिग्रहण कर सकती है। पूजा करना एक धार्मिक कार्य है किन्तु एक विशेष स्थान पर पूजा करना जब तक कि उसका विशिष्ट महत्व न हो धर्म का आवश्यक भाग नहीं है।

गुलाम कादिर अहमद भाई मेनन बनाम सूरत नगर निगम [25] के वाद में गुजरात उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 25 और 26 में प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार राज्य को लोक प्रयोजन के लिए किसी पूजा के स्थान को अधिग्रहण करने से वर्जित नहीं करता है। प्रस्तुत मामले में मुम्बई प्रान्तीय नगर निगम अधिनियम, 1949, की धारा 212 के तहत जारी उस आदेश की विधिमान्याता को चुनौती दी गई थी जिसके द्वारा राज्य ने सड़क चौड़ी करने के प्रयोजन के लिए गुजरात राज्य के सूरत जिले में एक प्रमुख सड़क पर स्थित दो मस्जिदों के कुछ भाग को गिराने का आदेश दिया था। उच्च न्यायालय ने **इस्माइल फारूकी बनाम भारत संघ** [26] के मामले में उच्चतम

न्यायालय के दिए निर्णय का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 उस में प्रदत्त धार्मिक स्वाधीनता का अधिकार राज्य को किसी धार्मिक स्थल या उसके किसी भाग को लोक प्रयोजन हेतु अधिग्रहण करने से वर्जित नहीं करता है और अतः सड़क को चौड़ी करने के उद्देश्य से उक्त मस्जिदों के कुछ भागों को गिराए जाने का आदेश विधिमान्य है। अनुच्छेद 25 और 26 धार्मिक प्रथा को संरक्षण प्रदान करते हैं जो धर्म का आवश्यक तत्व है। एक प्रथा धार्मिक प्रथा हो सकती है किन्तु वह उस धर्म का आवश्यक तत्व नहीं हो सकती है। प्रार्थना या पूजा करना एक धार्मिक प्रथा है किन्तु प्रत्येक स्थान पर पूजा करना धर्म का आवश्यक तत्व नहीं है जब तक कि उस स्थान का उस धर्म में कोई विशेष महत्व न हो जो उसे उसका आवश्यक तत्व बना देता हो।

न्यायालय ने कहा कि यद्यपि राज्य को किसी सड़क को चौड़ी करने के लिए पूजा स्थल के अधिग्रहण की शक्ति प्राप्त है किन्तु उसे ऐसा करते समय यह देखना चाहिए कि क्या किसी पूजा के स्थान का अधिग्रहण लोक प्रयोजन के लिए अपरिहार्य है ? क्या साधारण जनता को इतनी अधिक असुविधा है कि किसी पूजा के स्थान को गिराना आवश्यक है ? यदि ऐसा है तो पूजा स्थल को गिराया जा सकता है। उक्त मामले में सड़क को चौड़ी करने के लिए दोनों मस्जिदों के कुछ भाग को गिराये जाने का नगर निगम का आदेश संवैधानिक है तथा विधिमान्य है। धर्म निरपेक्षता राज्य को किसी पूजा स्थल के प्रति आदरभाव दिखाने से नहीं रोकता है और विशेष रूप में जब वह अधिग्रहण की शक्ति का प्रयोग करता है। धर्म निरपेक्षता की यही धारणा भारतीय संविधान में निहित है। धर्म के मामले में राज्य की केवल नकारात्मक भूमिका नहीं है बल्कि सकारात्मक भूमिका है।

मौलाना मुफ्ती सईद मोहम्मद नूरूर रहमान वरकती बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य[27] के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मुसलमानों द्वारा अजान के समय माइक्रोफोन या लाऊडस्पीकरों के प्रयोग पर राज्य द्वारा रोक लगाने से अनुच्छेद 25 के अधीन प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन नहीं होता है। अजान निसंदेह रूप से इस्लाम धर्म का आवश्यक और अभिन्न तत्व है किन्तु इस अवसर पर माइक्रोफोन या लाउडस्पीकर का प्रयोग इसका आवश्यक तत्व नहीं है। इनके प्रयोग से ध्वनि प्रदूषण के कारण से सर्वसाधारण के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

धर्म के नाम पर ध्वनि प्रदूषण की अनुमति नहीं दी जा सकती है। **चर्च ऑफ गाड (फुल गस्पेल) इण्डिया बनाम के .के. आर. एम. वेलफेयर एसोशिएशन**[28] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धानित किया कि अनु. 25 और 26 के अन्तर्गत धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग करते समय किसी व्यक्ति को ध्वनि प्रदूषण फैलाने का या अन्य व्यक्तियों की शान्ति को भंग

करने अधिकार नहीं है ।नगाड़ा बजाकर प्रार्थना करने की प्रथा किसी धर्म के मानने के लिए आवश्यक तत्व नहीं है । प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी चैन्नई के एकचर्च ऑफ गाड के सदस्य थे, चर्च में एक संगीत सभागार था जिसमें नगाड़ा, गिटार तथा अन्य कई प्रकार के वाद्य यन्त्र लगे थे । **के.के. आर. मैजेस्टिक कालोनी कल्याण संघ**[29] ने तमिलनाडू प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड में एक परिवाद दायर किया जिसमें यह कहा गया कि कि चर्च में प्रार्थना के समय नगाड़ा, लाउडस्पीकर और अन्य वाद्य यन्त्रों के बजने से ध्वनि प्रदूषण होने के कारण कालोनी के निवासियों का सामान्य जीवन दूभर हो गया था । प्रदूषण बोर्ड ने पुलिस को उक्त परिवाद पर कार्यवाही करने का निर्देश दिया । इसके पश्चात् कल्याण संघ ने मद्रास उच्च न्यायालय में आपराधिक परिवाद दायर किया जिसमें न्यायालय से पुलिस अधिकारियो को प्रदूषण रोकने के लिए निर्देश देने को कहा । चर्च की ओर से यह अभिकथन किया गया कि यह परिवाद केवल अल्पसंख्यक समुदाय की संस्था के धार्मिक क्रियाकलापों को रोकने के लिए दायर किया गया है और न्यायालय धार्मिक क्रियाकलापों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है । उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि ध्वनि का स्तर कम किया जाए और यदि एक सीमा से अधिक ध्वनि प्रदूषण बढ़ जाता है तो उसे रोका जाए । अपीलार्थी चर्च के पदाधिकारियों ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील दायर की । उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन किसी व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता " सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य" के अधीन है । यदि कोई धार्मिक प्रथा है भी तो भी उसका प्रयोग अन्य व्यक्तियों के अधिकारों के उल्लंघन करने के लिए और उनकी शान्ति भंग करने के लिए नहीं किया जा सकता है ।एक संसंगठित समाज में कोई भी अधिकार निरपेक्ष नहीं है । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि संबंधित अधिनियमों (मद्रास हाऊस न्यूसेन्स एक्ट 1889 और ध्वनि प्रदूषण, विनियमन और नियंत्रण नियम 2000) को लागू करने ध्वनि प्रदूषण को रोकना या कम करना विधिमान्य है ।

उच्चतम न्यायालय ने **रवि स्टैनीस्लाव बनाम मध्यप्रदेश** राज्य [30] के मामले में म.प्र. और उड़ीसा राज्य द्वारा धर्म परिवर्तन को रोकने के लिए पारित अधिनियमों की संवैधानिक ठहराते हुए (इस वाद में मध्यप्रदेश धर्म- स्वातंत्रय अधिनियम 1968तथा उड़ीसा फ्रीडम आफ रिलीजन एक्ट 1967 की संवैधानिकता की चुनौती दी गई थी ।) यह अभिनिर्धारित किया कि इन अधिनियमों का उद्देश्य बलपूर्वक धर्म परिवर्तन के कारण समाज में लोकव्यवसथा को भंग होने से बचाना है अत: राज्य को इन्हे पारित करने की शक्ति प्राप्त है । धर्म प्रचार में धर्म परिवर्तन कराना शामिल नहीं है । धर्म प्रचार का तात्पर्य केवल अपने धर्म के सिद्धांत अन्यों तक पहुँचाना आता है यदि धर्म परिवर्तन कराना धर्म प्रचार के अन्तर्गत माना जाता है तो इससे अन्य व्यक्तियों के अपनी धार्मिक मान्यताएँ रखने के अधिकार

पर प्रभाव पड़ेगा। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ये अधिनियम ''धर्म'' से संबंधित नहीं है बल्कि सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित है क्योंकि बलात्, धोखे या लालच से किये गये धर्म परिवर्तन से समाज में तनातनी हो सकती है।

सदाचार-

कुछ ऐसी धार्मिक क्रियाएँ है जिनको समाज उचित नहीं समझता जैसे देवदासी प्रथा। नव युवतियों को धार्मिक संस्थाओं को, ईश्वर या देवता के नाम पर सौपना सामाजिक सदाचार के विरूद्ध है। **आचार्य जगदीश्वरानंद अवधूत बनाम पुलिस कमिश्नर कलकत्ता** [31] के वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आनंद मार्गियों द्वारा सार्वजनिक स्थानों में खतरनाक शस्त्रों और कपालों के साथ ताण्डव नृत्य करना उनके सम्प्रदाय के अनुयायियों के धर्म का आवश्यक धार्मिक कर्मकाण्ड नहीं है। अत: दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अधीन ''लोक व्यवस्था'' और ''सदाचार'' के हित में इसे प्रतिबन्धित किया जा सकता है। आनन्दमार्ग कोई पृथक धर्म नहीं है यह हिन्दू धर्म के मूलदर्शन का अनुसरण करता है किन्तु यह एक धार्मिक सम्प्रदाय है। ताण्डव नृत्य की शुरूआत हाल में ही की गई है यदि यह मान भी लिया जाय कि ताण्डव नृत्य आंनद मार्गियों का एक धार्मिक कर्मकाण्ड है तो भी उन्हें सार्वजनिक स्थलों पर इसे उक्त रूप में मनाने का कोई अधिकार नहीं है धारा 144 के अधीन पारित आदेश आंनद मार्गियों के जुलूस निकालने के अधिकार पर रोक नहीं लगाता है यह केवल तलवार, माला, परही और मानव कपालों को लेकर जुलूस निकालन के कारण लोक व्यवस्था और सदाचार को खतरा उत्पन्न होने पर रोक लगाने के कारण विधिमान्य है।

गुलाम अब्बास बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [32] के वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय द्वारा दो धार्मिक समुदायों के बीच विवाद को निपटाने के उद्देश्य से कब्रगाह को एक स्थान से दूसरे स्थान को हटाने के लिए दिया गया निर्देश लोक-व्यवस्था के हित में किया गया है इसलिये यह धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं है। इस प्रकरण में वाराणसी सुन्नियों की दो कब्रें शियाओं की भूमि पर स्थित थी जिनको लेकर दोनों समुदायों के बीच काफी तनाव था। न्यायालय ने इस समस्या के हल के लिए दोनों सम्प्रदायों के सदस्यों की एक समिति गठित की। समिति ने सिफारिश की कि सुन्नियों की दो कब्रगाहों को शिया लोगों के पूजा स्थल से हटाया जाना चाहिए। सुन्नी सम्प्रदाय के लोगों ने इस सिफारिश को इस आधार पर चुनौती दी कि इससे अनुच्छेद 25 व 26 के अधीन उनको प्राप्त धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन होता है किन्तु न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि समिति की सिफारिशों को लागू करने से अपीलार्थी की धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंध नहीं होता है। अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता आत्यन्तिक नहीं बल्कि सापेक्ष है और सार्वजनिक व्यवस्था बनाये

रखने के लिए उस पर निर्वन्धन लगाये जा सकते हैं। कब्रगाह को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाने का आदेश लोक-व्यवस्था के हित में है और दोनों सम्प्रदायों के बीच शांति एवं सोहार्द्र बनाये रखने में सहायक हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 176 (3) के अधीन भी शव के दफनाने के स्थान में हस्तक्षेप न करने का अधिकार भी पूर्ण नहीं है और इस धारा के अधीन किसी अपराध का पता लगाने के लिए शव को कब्र से निकाला जा सकता है। सुन्नी समुदाय की धर्म की स्वातंत्रा के अधिकार पर कोई आधात नहीं हुआ है क्योंकि कुरान में कब्र को हटाने के लिये कहीं भी मना नहीं किया गया है।

(iii) स्वास्थ्य -

जनता के स्वास्थ्य के हित को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा अथोचित कार्यवाही की जा सकती है अथवा आदेश दिये जा सकते है जैसे मेले में जाने वालों को हैजे, टाइफाइड का टीका आवश्यक रूप से लगाये जाने का आदेश दिया जा सकता है।

(2) अनुच्छेद 25 (2) के अन्तर्गत लगाये जा सकने वाले निर्बन्धन :-

(i) लौकिक क्रियाएँ जो धार्मिक क्रियाओं से संबंधित है या धर्म से संबंध आर्थिक वित्तीय, राजनीतिक क्रियाओं का विनियमन (अनु. 25 (2)(क))- धार्मिक आचरण में वे क्रियाएँ सम्मिलित हैं जिनमें धर्म का तत्व प्रधान होता है इसमें लौकिक क्रियाएँ सम्मिलित नहीं है क्योंकि इनमें धार्मिक तत्व कम और सांसारिक तत्व अधिक होते हैं। यह पता लगाना कठिन है कि कौन सी क्रियाएँ आर्थिक, वित्तीय राजनीतिक अथवा लौकिक है अथवा धर्म से संबद्ध हैं। प्रत्येक मामले में इसका निर्धारण तथ्यों और परिस्थितयों के आधार पर ही किया जा सकता है। कौन-सी क्रियाएँ धर्म या धार्मिक परिवार के आवश्यक अंग है, इसका अवधारण न्यायालयों द्वारा विशेष धर्म के प्रति निर्देश से किया जाता है और उसके अन्तर्गत ऐसी परिपतियाँ आती है जिन्हें समुदाय द्वारा धर्म का भाग समझा जाता है।[33] उच्चतम न्यायालय के दृष्टिकोण में धर्म के मामलों व धार्मिक क्रियाओं एवम् लौकिक प्रशासन में अंतर कभी-कभी बहुत कम होता है इसलिये संदेहास्पद मामलों में को सामान्य बुद्धि से और व्यवहारिक अनिवार्यता से प्रेरित होकर निर्णय करना चाहिए।

तिलकायमत जी महराज बनाम राजस्थान राज्य[34] में लौकिक व धार्मिक क्रियाओं में अंतर स्थापित करने का यह मानदंड निर्धारित किया गया है कि क्या उस धर्म के मानने वाले उस क्रिया को धर्म का आवश्यक अंग मानते है ? यद्यपि इसमें कुछ कठिनाई हो सकती है फिर भी न्यायालय का यह कर्तव्य है उस साक्ष्य के आधार पर जो उसके समक्ष उस समाज के विचार व उसके सिद्धांतो के बारे में पेश की गई है, के द्वारा निर्धारित करे।

व्यापारिक क्रियाओं के बारे में यह परस्पर विरोधी दृष्टिकोण है यथा:-

(क) धार्मिक साहित्य या किसी भी साहित्य के बेचने के लिए लाइसेंस का प्रावधान धार्मिक स्वतंत्रता का हनन नहीं करता ।[35]

(ख) बकरीद के त्यौहार पर गाय काटना मुस्लिम-धर्म का आवश्यक अंग नहीं है अतः राज्य इनको रोक सकता है ।[36]

स्टेट आफ वेस्ट बंगाल बनाम आशुतोश लाहिड़ी[37] के मामले में एक हिन्दू संगठन ने पश्चिमी बंगाल सरकार के उस आदेश की विधिमान्यता की चुनौती दी थी जिसके अंतर्गत मुसलमानों को प. बंगाल पशु हत्या नियंत्रण आदेश 1950 के लागू होने से छूट दी गई थी कि वे बकरीद के अवसर पर गाय काट सकते हैं। उनका अभिकथन था कि ऐसी छूट मुसलमानों को केवल धार्मिक प्रयोजना के लिए ही प्रदान की जा सकती है। परन्तु उच्चतम न्याय. ने कहा कि यह मुसलमान समुदाय के धर्म का आवश्यक तत्व नहीं है अतः उन्हें ऐसी छूट देना अवैध है।

(ii) समाज कल्याण और समाज- सुधार विषयक विधियाँ- (अनु.25 (2) ख)-

समाज कल्याण या समाज सुधार संबधी विधियों धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंधन नहीं है। व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता राज्य द्वारा समाज-कल्याण एवं सुधार के लिए व्यवस्था करने में बाधा नहीं उत्पन्न कर सकती है उक्त खण्ड के अंतर्गतराज्य कानून बनाकर उन सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों का उन्मूलन कर सकता है जो राज्य की प्रगति में बाधा उत्पन्न करते हैं। ऐसी क्रियाएँ किसी भी धर्म का आवश्यक तत्व नहीं होती है और इसका उन्मूलन धर्म पर आधात नहीं पहुँचाता है ऐसी दशा में धर्म के ऊपर समाज-कल्याण एवं सुधार की व्यवस्था प्रभावी होती है ।[38] के मामले में बहुविवाह निषिद्ध करने वाले अधिनियम को न्यायालय ने इस आधार पर संवैधानिक घोषित किया कि बहुविवाह हिन्दु धर्म का आवश्यक तत्व नहीं है, इसीलिए राज्य विधि द्वारा इसका विनियमन कर सकता है।

इस उपखण्ड के अंतर्गत राज्य को हिन्दुओं की सार्वजनिक धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सब वर्गो के लिए खोलने का अधिकार है यह उपखण्ड व्यक्ति के मंदिरों में प्रवेश करने के विधिक अधिकार को प्रत्याभूति प्रदान करता है। जाति, अस्पृश्यता, सामाजिक असमानता या विशेषाधिकार वर्गो के आधार पर सार्वजनिक धार्मिक संस्थाओं और मंदिरों में प्रवेश हेतु कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है। हिन्दू मंदिर सिक्ख-गुरुद्वारा या बुद्ध विहार इत्यादि में हिन्दुओं के सभी वर्गो के प्रवेश का अधिकार है।

उच्चतम न्यायालय के अभिमत में अनुच्छेद 25 (2) (ख) की कोई बात ऐसी विधि पर प्रभाव नहीं डालेगी जिसमें सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए उपबंध हो।

अनुच्छेद 25 द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता ऐसी है जो उसी प्रकार की दूसरे व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अतिक्रमण न करती हो। भारतीय संविधान के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपने मूल अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए कि उससे दूसरों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण न हो।[39]

संवैधानिक उपबंध:-

संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 में व्यक्तियों को धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित निम्नलिखित अधिकार दिए गए है:-

(1) अन्त: करण तथा किसी धर्म के मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25)

(2) धार्मिक मामलों के प्रबंध की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 26)

(3) किसी विशेष धर्म की प्रोन्नति के लिए कर से स्वतंत्रता (अनुच्छेद 27)

(4) अनिवार्य धार्मिक पूजा तथा प्रशिक्षण से स्वतंत्रता (अनुच्छेद 28)

धर्म की स्वतंत्रता:-

अनुच्छेद 25 के अनुसार- व्यक्तियों को अन्त: करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता मौलिक अधिकार के रूप में प्रदान की गयी है परन्तु अनुच्छेद 25(1) के अनुसार - लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अन्त: करण की स्वतंत्रता का और धर्म के असाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक है।

अनुच्छेद 25 (2) के अनुसार- इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो-

(क) धार्मिक आचरण से सबंद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलापों का विनियमन या निर्बन्धन करती हैं।

यह स्वतंत्रता केवल नागरिकों को ही नहीं बल्कि गैर नागरिकों को भी, यदि वे भारत में निवास कर रहे हो, को उपलब्ध है। अनुच्छेद 25 के अधीन व्यक्ति को निम्नलिखित दो प्रकार के मौलिक अधिकार प्राप्त है- (1) अन्त: करण की स्वतंत्रता का अधिकार; (2) धर्म को अबाध रूप से मानने एवम् आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता का अधिकार। अन्त:करण की स्वतंत्रता का तात्पर्य आत्यान्तिक आंतरिक स्वतंत्रता से है जिसके माध्यम से व्यक्ति ईश्वर के साथ अपनी इच्छानुसार संबंधों को स्थापित करता है यह स्वतंत्रता जब बाह्य रूपों में व्यक्त की जाती है तो उसे धर्म का मानना और प्रचार करना कहते है।

धर्म को मानने से तात्पर्य है व्यक्ति द्वारा अपने धर्म के प्रति श्रद्धा एवं विश्वासों का स्वतंत्रतापूर्वक और खुलेआम घोषित कर सकना। प्रत्येक व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वासों को किसी भी रीति से व्यावहारिक रूप दे सकता है।

धर्म के आचरण की स्वतंत्रता का तात्पर्य धर्म द्वारा विहित कर्तव्यों, कर्मकाण्डों और धार्मिक कृत्यों को प्रदर्शित करने की स्वतंत्रता से है जो उसके धर्म द्वारा विहित किये गये हो। अर्थात् धर्म को केवल मानसिक धारणाओं तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है। इसका कार्यो के द्वारा बाहरी रूप भी है। धर्म के संबंध में अपनी मान्यताओं के अनुसार क्रियाएँ करना धर्म पर आचरण करना कहा जाता है। किसी भी धर्म के संबंध में क्या धार्मिक क्रियाएँ है। यह उसी धर्म के मानने वालों को तय करना होता है अन्यों को नहीं। जब उन क्रियाओं की वास्तविकता के संबंध में विवाद हो, तब न्यायालय द्वारा उस धर्म के मानने वालों के कार्य-कलापों व उनके साहित्य को देखकर ही उस विवाद का निर्धारीण करना चाहिये।[40]

धर्म का प्रचार करने का अर्थ है विचारों को दूसरों तक संप्रेषित करना और इसके लिए उनका प्रकाशन आवश्यक है। प्रचार के अन्तर्गत अपने विचारों को संप्रेषित करने के साथ ही उसको मनवानें के लिए समझाने-बुझाने का भी अधिकार शामिल है, बशर्ते इसमें कोई दबाव, भय, हिंसा जबरदस्ती के तत्व न हो। प्रचार के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को धर्म परिवर्तन करने के लिए वाध्य करना सम्मिलित नहीं है।

अनुच्छेद 25 (1) द्वारा प्रत्येक नागरिक को अन्त:करण की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति प्रदान करता है। यह व्यक्ति को केवल अपने विशेष धर्म को अनुसरण करने का अधिकार ही नहीं प्रदान करता है इसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति को दूसरें व्यक्ति को उसका धर्म परिवर्तित कराने का अधिकार सम्मिलित नहीं है।

यदि कोई व्यक्ति अपने धार्मिक विचारों को दूसरे तक संप्रेषित करने के बजाय उसे धर्म परिवर्तन करने के लिए विवश करता है तो वह उसके अन्त: करण की स्वतंत्रता पर सीधा आघात करता है जो अनुच्छेद 25 द्वारा वर्जित है। यदि विधानमण्डल द्वारा कोई ऐसी विधि बनायी जाती है जो धर्म-परिवर्तन का प्रतिषेध करती है तो ऐसी विधि संवैधानिक होगी।[41]

धर्म प्रचार धार्मिक स्वतंत्रता का एक भाग है। इसके अन्तर्गत दूसरों को अपने धर्म की बाते बताने और दूसरे धर्मो की कमियां भी बता सकने का अधिकार है ताकि जनता यह समझ सके कि कौन सा धर्म अच्छा है, जिससे वे यह निश्चित कर सके कि उसे कौन सा धर्म मानना चाहिये।

ब्रिजो इमैनुएल बनाम केरल राज्य[42] के वाद में उच्चतम न्यायलय की दो न्यायाधीशों

की खण्डपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी व्यक्ति को, जिसका धार्मिक विश्वास इसकी अनुमति नहीं देता, राष्ट्रगान गाने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में केरल के एक स्कूल के ईसाइयों के जेहोवा सम्प्रदाय के तीन विद्यार्थियों को राष्ट्रगान गाने से इन्कार करने पर स्कूल से निकाल दिया गया या उनका यह तर्क था कि राष्ट्रगान गाने के लिए बाध्य किया जाना संविधान के अनुच्छेद 25 में प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लंघन है। शिक्षा-विभाग के एक नियम के अनुसार स्कूलों में सभी बच्चों द्वारा राष्ट्रगान में भाग लेना आवश्यक था। उनका कहना था कि उनका धर्म जेहावा (उनका ईश्वर) के अलावा किसी अन्य धार्मिक समारोह में भाग लेने की अनुमति नहीं देता है। उनका कहना था कि उन्होंने राष्ट्रगान का अनादर नहीं किया था; क्योंकि जब राष्ट्रगान गाया जा रहा था तब वे आदरपूर्वक खड़े थे किन्तु उन्होंने राष्ट्र गान के गायन में भाग नहीं लिया था। उनके निष्कासन के विरुद्ध संस्थित की गई याचिका केरल उच्च न्यायालय ने इस आधार पर खारिज कर दी कि संविधान के अधीन राष्ट्रगान गाना उनका मूल कर्त्तव्य था और कोई भी नागरिक अपने धार्मिक विश्वासों के आधार पर राष्ट्रगान गाने से इन्कार नहीं कर सकता है। बच्चों द्वारा राष्ट्रगान के प्रति आदर न दिखाने से राष्ट्र को खतरा होने की आशंका उत्पन्न हो जायेगी; क्योंकि यह लोगों में संविधान के आदर्शों की उपेक्षा करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देगा। अगर कोई धार्मिक विश्वास, लोक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य और राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता के विपरीत है तो ऐसे धार्मिक विश्वास का लोकहित एवं राष्ट्रहित में त्याग करना होगा।

उच्चतम न्यायलय ने केरल उच्च न्यायालय के निर्णय को उलट दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि भारत में राष्ट्रगान गाने के लिये कोई विधिक बाध्यता नहीं है। अनुच्छेद 25 (1) द्वारा प्रदत्त धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार को कार्यपालिका के निदेश द्वारा विनियमित नहीं किया जा सकता है। छात्रों द्वारा अनुच्छेद 51 (अ) के अधीन किसी भी मूल अधिकार का उल्लंघन नहीं किया था ; क्योंकि वे राष्ट्रगान गाये जाते समय आदर दिखाने के लिए खड़े हुए थे। प्रिवेन्शन आफ इनसल्ट टु नेशनल आनर ऐक्ट, 1971 के अधीन भी उनका कार्य अपराध नहीं था; क्योंकि राष्ट्रगान गाने में उनके द्वारा कोई बाधा नहीं पहुँचायी गयी थी। उच्चतम न्यायालय ने उनके निष्कासन को रद्द कर दिया।

एस. पी. मित्तल बनाम भारत संघ [43] (अरोविले आश्रम का मामला) के वाद में याचिकाकर्त्ताओं द्वारा अरविन्द (आपात प्रावधान) अधिनियम, 1980 की विधिमान्यता को अनुच्छेद 25 और 26 में दिये गये धार्मिक स्वाधीनता के अधिकारों का उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी गयी थी। श्री अरविन्द ने योग की एक नयी प्रणाली प्रतिपादित की और अपने नये दर्शन के प्रसार-प्रचार के लिए एक सोसाइटी बनायी जिसने पांडिचेरी में अरोविले-आश्रम स्थापित किया जिससे श्री अरविन्द के नये दर्शन एवं शिक्षा का प्रचार किया जा सके। सोसाइटी को सरकार और अन्य स्त्रोतो से अरोविले- आश्रम

में निर्माण एवं विकास के लिए दान से पर्याप्त धन प्राप्त हुआ। माँ की मृत्यु के पश्चात् सोसाइटी के कुप्रबन्ध के सबन्ध में सरकार को अनेक शिकायतें मिलीं; अत: केन्द्र सरकार ने उक्त अधिनियम पारित करके कुछ समय के लिये सोसाइटी का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। उच्चतम न्यायलय ने 4:1 के बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि सोसाइटी के संविधान, श्री अरविन्द और माँ के बार-बार के कथनों कि अरोविले एक धार्मिक संस्था नहीं है एवम् सोसाइटी का बंगाल अधिनियम के अधीन पंजीकरण आदि से स्पष्ट है कि न तो सोसाइटी और न ही अरोविले-आश्रम धार्मिक संस्थाएँ है और अरविन्द की शिक्षा धार्मिक शिक्षा नहीं है।

अत: सरकार द्वारा सोसाइटी और आश्रम का अधिग्रहण अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा प्रदत्त धर्म की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करता है और संवैधानिक है। अरविन्द की शिक्षा उनका स्वयं का दर्शन है, धार्मिक शिक्षा नहीं। धर्मगुरुओं, आचार्यों, उद्धरण-ग्रंथों और समाचार-एजेन्सियों का मत कि श्री अरविन्द की शिक्षा एक धार्मिक शिक्षा है, इसका निर्णायक प्रमाण नहीं है। सोसाइटी की सदस्यता सभी के लिए खुली हुई है और वह भी अपने धर्म के अस्तित्व को समाप्त किये बिना। इससे स्पष्ट है कि उनके द्वारा प्रतिपादित दर्शन एक विशिष्ट धर्म नहीं है। न्यायालय ने यह सम्प्रेषित किया कि यदि यह मान भी लिया जाय कि सोसाइटी और अरविन्द- आश्रम धार्मिक संस्थाएँ हैं तो भी अधिनियम उनके धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करता है और अधिनियम द्वारा सम्पत्ति के प्रबन्ध को ही अपने हाथ में लिया गया जिसके लिये सरकार को अनुच्छेद 26 (ब) में शक्ति प्राप्त है।

ए. एस. नारायनन बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य [44] के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता के क्षेत्र का बहुत विस्तार से परीक्षण किया है। इस वाद में याचिकाकर्त्ता ने आन्ध्र प्रदेश धर्मादा और हिन्दू धार्मिक संस्था और धर्मादा अधिनियम, 1987 की धारा 34, 35,37 और 144 की विधिमान्यता को संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के उल्लंघन के आधार पर चुनौती थी। इस अधिनियम द्वारा आनुवंशिक अर्चकों के पदो को समाप्त कर दिया गया। याचिकाकर्त्ता जो उत्तर भारत के सुप्रसिद्ध "बाला जी" मन्दिर का एक पुजारी/अर्चक था, ने इस अधिनियम की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी उसकी धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लंघन होने के कारण अधिनियम अविधिमान्य है। उसका अभिकथन था कि मन्दिर में पूजा करनेका अधिकार जो उसे रूढ़िके आधार पर प्राप्त था वह धर्म का आवश्यक भाग है और उससे उसको वंचित करना अनुच्छेद 25 और 26 का उल्लंघन है। अधिनियम के अधीन पुजारियों और अर्चकों आदि की नियुक्ति, वेतन उनकी सेवा शर्तों के विनियमन की शक्ति एक प्रबन्ध समिति को दे दी गई थी। जिसका अध्यक्ष आयुक्त था। उच्चतम न्यायलय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 25 और 26 में प्रयुक्त 'धर्म' शब्द से

तात्पर्य धर्म में व्यक्तिगत विश्वास है। 'धर्म' वह है जो व्यक्ति का ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित कराता है। वस्तुत: धर्म एक वैयक्तिक विश्वास या आस्था है जिसे व्यक्ति अपने आध्यात्मिक कल्याण के लिए आवश्यक मानता है। किन्तु अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा प्रदत्त धर्म की स्वतंत्रता एक आत्यन्तिक अधिकार नहीं है बल्कि राज्य को उस पर विधि बनाकर उसे विनियमित करने की शक्ति प्राप्त है। धर्म का आवश्यक तत्व क्या है, यह वस्तुत: एक तथ्य का विषय है जिसे उस धर्म के सन्दर्भ में जिसके बारे में उक्त प्रश्न उठाया जाता है न्यायालय निर्धारित करेगा। धर्म से सम्बन्द्ध सभी लौकिक क्रियाएँ धर्म की आवश्यक तत्व नहीं होती हैं और उनका विनियम किया जा सकता है। धार्मिक सेवा विश्वास और आस्था की बात है किन्तु पुजारी लौकिक है अत: विधि द्वारा उसकी नियुक्ति आदि के लिए प्रावधान बनाए जा सकते हैं। आनुवंशिकता के आधार पर पुजारी की नियुक्ति का कार्य धर्म का आवश्यक तत्व नहीं है। वह एक पद धारण करता है। इस रूप में वह विधि के नियमों का पालनकरने के लिए बाध्य है। नियुक्ति के पश्चात् वह प्रतिदिन कुछ धार्मिक कार्य करता है, शास्त्रों के अनुसार पूजा करता है किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी नियुक्ति धर्म का आवश्यक तत्व है अत: आनुवंशिक नियुक्ति को समाप्त किए जाने से अनुच्छेद 25 और 26 का उल्लंघन नहीं होता है तथा अधिनियम विधिमान्य है।

वैष्णव देवी मन्दिर [45]के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पुजारी की सेवा एक लौकिक कार्य है और राज्य विधि बनाकर उसको विनियमित कर सकता है। धार्मिक सेवा और जो ऐसी सेवा करता है दोनों में अन्तर है। न्यायालय ने कहा कि किसी पूजा के स्थल पर प्रचलित प्रथा, रूढ़ि के अनुसार धार्मिक सेवा करना धार्मिक विश्वास और आस्था का आवश्यक तत्व हैजिसका विनियमनराज्य नहीं कर सकता है। किन्तु राज्य को पुजारी की नियुक्ति करने और उसके वेतन नियत करने की शक्ति प्राप्त है क्योंकि यह लौकिक क्रियाएँ हैं।सरकार मूर्ति पर चढ़ावा में से पुजारी को प्राप्त होने वाले रूढ़िगत भाग को भी समाप्त कर सकती है। इस मामले में याचिकाकर्त्ताओं द्वारा जम्मू कश्मीर श्री वैष्णव देवी मन्दिर अधिनियम, 1988 की विधिमान्यता को चुनौती दी गयी। उक्त अधिनियम मन्दिर और उसकी धर्मादा सम्पत्ति के अच्छे प्रबन्ध एवं प्रशासन के लिए बनाया गया था।

ए. एस. नारायनन बनाम आन्ध्र प्रदेश [46] के मामले में दिए अपने निर्णय का अनुसरण करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि पुजारी धार्मिक कार्य करता है किन्तु वह मन्दिर के पुजारी के रूप में एक पद भी धारण करता है और इस रूप में वह मन्दिर के अन्य पदाधिकारियों की भाँति अनुशासन के अधीन है। उसके पद के साथ जुड़ी परिलब्धियों का समाप्त किया जाना अवैध नहीं है। इस सम्बन्ध में रूढ़ि या प्रथा धर्म का आवश्यक तत्व नहीं है। राज्य का

राज्यपाल मन्दिर प्रबन्धक बोर्ड का अध्यक्ष है परन्तु राज्यपाल इस मामले में मंत्रिमण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं है। उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त दोनों निर्णय धर्म के मामले में राज्य को सकारात्मक भूमिका को स्पष्ट करते हैं। धर्म के मामले में राज्य एक मूक दर्शक नहीं है। आवश्यकता पड़ने धर्म में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिये राज्य द्वारा सकारात्मक कदम उठाये जाने चाहिये।

अनुच्छेद 25 के स्पष्टीकरण 1 के अनुसार सिक्खों के कृपाण धारण करने का संवैधानिक अधिकार प्रदान किया गया है।सिक्ख धर्म के अनुयाइयों के लिए कृपाण का रखना सिक्ख धर्म का प्रतीक है।

संविधान के 'अंग्रेजी पाठ' में बहुवचन में कृपाण का प्रयोग हुआ है परन्तु हिन्दी पाठ में इसका प्रयोग एक वचन में है, इसाक यह है , इसका यह अर्थ नहीं है कि एक से अधिक कृपाणों को धारण करने का अधिकार है। कोई सिक्ख केवल एक ही कृपाण धारण कर सकता है। कृपाण का कोई आकार सिक्ख धर्म में नियत नहीं है और न ही इस स्पष्टीकरण में उल्लिखित है अतः किसी प्रकार की यह कृपाल हो सकती है।

सिक्खो द्वारा कृपाण धारण करने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 25 के खण्ड (1) के प्राविधानों के अधीन है। अतः सार्वजनिक शांति के मामलों में इसका प्रयोग भी निर्बंधित किया जा सकता है। बापू पुरूसाद जी बनाम मूलदास (ए. आई. एस. 1962 एस. सी. 1119) के वाद में यह अभिनिर्धारित कियागया था कि सिक्खों का कृपाण धारण करने का अधिकार धर्म के आवश्यक तत्व के रूप से स्वीकार किया गया है। किन्तु कोई सिक्ख एक कृपाण से अधिक कृपाण नहीं रख सकता है।

अनुच्छेद 25 के खण्ड (2) (ख) के प्रयोजन के लिए "हिन्दू" शब्द के अन्तर्गत सिक्ख, जैन या बौद्ध धर्म के मानने वाले व्यक्ति भी सम्मिलित हैं।

अनुच्छेद 25 के स्पष्टीकरण 2 में "हिन्दू" की व्याख्या की गयी है जिसमें हिन्दुओं के प्रति निर्देश का अर्थ सिक्ख, जैन एवं बौद्ध से है तथा हिन्दु धार्मिक संस्थाओं का अर्थ इसी निर्देश के अनुसार लगाया जायेगा अर्थात् इस परिभाषा के अनुसार बौद्ध व जैनियों के मंदिर भी हिन्दुओं के सब वर्गों के लिए खोले जा सकते हैं। परन्तु यह परिभाषा केवल इसी खण्ड 2 (ख) के लिए ही है,अन्य प्रावधानों के लिए नहीं।[47]

शरियत के अनुसार तस्वीर लेने पर कठोर धार्मिक रोक है इसे इस्लाम में (हराम) बताया है।

आंध्रप्रदेश म्यूनिसिपलटी एक्ट 1965 को 1986 में संशोधन किया गया तथा धारा 12 के अंतर्गत यह प्रावधान था कि मतदाताओं के लिए नगर निगम से फोटो पहचान पत्र प्राप्त करने होंगे इस प्रावधान को एम.पी. पीरव्य साहेब बनाम विशेषाधिकारी [48] के वाद में चुनौती दी गयी इसमें यह

निर्धारित किया गया कि मुस्लिम विधि के अतंर्गत फोटो हराम है और यह धर्म का एक अभिन्न भाग गठित करता और इसे धर्म से अलग नहीं किया जा सकता है इस्लाम को मानने वाले नागरिकों को इस बात में से एक बात का चुनाव करने को बाध्य नहीं किया जा सकता कि या तो वे अपने धार्मिक निषेध के विरूद्ध कार्य करें या फिर वोट दें। इस प्रकार या तो धार्मिक क्रियाकलापों जो यह उपबंध करता है कि या तो फोटो खीचें जाये या वोट देने के अधिकार को छोड़ दिया जाये यह इस चुनाव के लिए वाध्य करता है जो इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 25 का उल्लंघन है।

मोहम्मद वाशी बनाम वच्चन साहब[49] यदि कोई मस्जिद इस प्रयोजन से बनाई जाये कि उसको किसी विशेष को, किसी विशेष प्रयोजन से समर्पित कर दी जाये कि किसी विशेष वर्ग के मुस्लिम ही वहाँ जा सकते हो तथा प्रार्थना कर सकते हो तो उसे मुसलमानों के किसी वर्ग या सम्प्रदाय के लिए आरक्षित नहीं किया जा सकता इस प्रकार दूसरे संप्रदाय का मुस्लिम भी जा सकता है जब तक कि वह विद्धेषपूर्ण आशय से दूसरे मुसलमान को परेशान नहीं करता है।

विश्वास की स्वतंत्रता तथा 'गदर' फिल्म के प्रदर्शन से क्या सिक्खों के धार्मिक विश्वास का उल्लंघन किया है ?

संविधान के अनुच्छेद 19,25,26 तथा 29 में समन्वय स्थापित किया गया है ताकि साम्प्रदायिक सद्भाव के उद्देश्य की पूर्ति की जा सके। एक कलाकार के कलाकृति बनाने का अधिकार, एक चित्रकार का चित्र बनाने का अधिकार तथाएका फिल्म निर्माता के अधिकार कि वह किसी घटना को पर्दा पर दिखाये यह अधिकार भी संधिधान के द्वारा मान्यता प्राप्त है। यह अधिकार उसी सीमा तक जहाँ तक कि उसके विश्वास का अधिकार है तथा विश्वास की स्वतंत्रता स्थापित करते हुए सृजनशीलता को नहीं खोया जा सकता है।

संत ईश्वर बनाम पंजाब और हरियाणा राज्य[50] के वाद में 'गदर' फिल्म के प्रदर्शन को इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि वह सिक्खों के धार्मिक अधिकारों का उल्लंघन करता है तथा आघात पहुँचाता है। न्यायालय ने इस तर्क को नकारते हुए कहा कि याचिकाकर्त्ता यह शिकायत नहीं कर सकता कि हल्की सी लहर भी उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाती है।

लावारिस सड़क पर पड़े शव को दफनाने या दाह का अधिकार :-

हर व्यक्ति का यह अधिकार है कि उसे उसकील धार्मिक आस्था के साथ सम्मान पूर्वक दफनाया जाये या दाह संस्कार किया जाये। निगम का यह कर्त्तव्य है कि वह शव को पहुँचाने तथा मृत्यु के कारणों को जानने का प्रयास करें लावारिस लाश को दफनाने या (जलाने) दाह का निःशुल्क प्रबंध करे।[51] उच्चतम न्यायालय ने सम्मानजनक रूप से दफनाने के अधिकार की मूलभूत आवश्यकता को

मान्यता प्रदान की।

सरदार सैयदाना बनाम बंबई राज्य मुख्य न्यायधीश सिन्हा ने अपने पृथक सहवर्ती निर्णय में कहा कि यह प्रश्न सुलझाना आसान नहीं है कि कौन से मामले धार्मिक है और कौन से नहीं। वे हर मामले में धार्मिक मत या सम्प्रदाय के अनुसार भिन्न होते हैं। संविधान के अनुच्छेद 26 (1) में दिये गये "धार्मिक मामले "तथा "धार्मिक गतिविधियों से संबंधित क्रियाकलाप का आधार एक नहीं है" धार्मिक मामले लोक व्यवस्था नैतिकता के अधीन रहते हुए पूरी तरह से राज्य के हस्तक्षेप से बाहर परन्तु धार्मिक क्रिया कलापों से संबंधित में कई प्रकार की गतिविधियां आती हैं जैसे आर्थिक, राजनीतिक तथा दूसरी गतिविधियां जिनका विस्तार अनुच्छेद 25(1) तथा 26 (2) से अधिक है तथा यह कहना आसान नहीं होता है कि कौन सी धार्मिक चरित्र की है प्रथा कौन सी इस प्रकार की नहीं है इसलिए इस प्रकार का निर्धारण करते हुए कि धार्मिक क्रियाकलाप का एक भाग है तथा यह अनुच्छेद 25 के विपरीत है तथा उसे असंवैधानिक घोषित कर दिया गया।

धार्मिक मामलों के प्रबंध की स्वतंत्रता :- अनुच्छेद 26 के अनुसार लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी विभाग को-

(क) धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का,

(ख) अपने धर्म विषयक मामलों का प्रबंध करने का

(ग) जंगम और स्थावर सम्पत्ति के अर्जन और स्वामित्व का; और

(घ) ऐसी सम्पत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का अधिकार होगा

इस अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता अनुच्छेद 25 का पूरक है जहाँ अनुच्छेद 25 से व्यक्तिगत स्वतंत्रता मिलती है, वही इस अनुच्छेद से धार्मिक सम्प्रदायों को धार्मिक स्वतंत्रता के कुछ अधिकार दिये गये हैं।

भारतीय संविधान में सम्प्रदाय की परिभाषा नहीं दी गई है परन्तु आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार-"सम्प्रदाय व्यक्तियों का समूह है जो एक ही नाम से वर्गीकृत किए जाते हैं : एक धार्मिक पंथ या निकाय जिसका एक ही धर्म और संगठन हो और जिन्हें एक ही नाम दिया गया हो।"

धार्मिक सम्प्रदाय का तात्पर्य व्यक्तियों के ऐसे समूह से है जो एक विशिष्ट नाम के अंतर्गत संगठित होते हैं और जो सामान्यतया एक धार्मिक सम्प्रदाय या संस्था होती है, जिसका किसी विशेष धर्म में विश्वास होता है। कोई विशेष धार्मिक या धर्मादा संस्था अनु. 26 के अन्तर्गत धार्मिक समुदाय है या नहीं यह एक तथ्य संबंधी विषय है और जिसका निर्धारण सिविल न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। किसी समूह के धार्मिक सम्प्रदाय के रूप में मान्यता हेतु आवश्यक है कि वह सम्प्रदाय :-

(1) ऐसे व्यक्तियों का समूह हो जो एक सामान्य जीवन-पद्धति में विश्वास रखते हों जो उनकी आध्यात्मिक आभिवृद्धि के लिए उपयुक्त हो

(2) एक सामान्य संगठन हो और

(3) उसका अलग नाम हो ।[53]

शास्त्री यज्ञपुरूषदास जी बनाम मूलदास भूधरदास वैश्य [54] के वाद में प्रश्न यह था कि क्या स्वामी नारायण सम्प्रदाय हिन्दू धर्म से अलग सम्प्रदाय है ? और क्या हिन्दू पूजास्थलों में प्रवेश का प्राधिकार देने वाला अधिनियम उनके पूजास्थलों पर नहीं लागू होगा ?उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि स्वामी नारायण सम्प्रदाय हिन्दू धर्म से भिन्न सम्प्रदाय नहीं है और उनके मंदिरों पर भी यह अधिनियम लागू होगा ।

अनुच्छेद 26 द्वारा धार्मिक सम्प्रदायों को विधि के अनुसार सम्पत्ति का प्रबंध करने का अधिकार प्रदान किया गया है । विधि के अनुसार ही इस अधिकार पर पंथ निरपेक्ष प्राधिकारियों द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है । परन्तु सम्पत्ति का कुप्रशासन रोकने के लिए ये आवश्यक है कि जहांतक संस्था या सम्पत्ति का समुचित तरीके से प्रशासन किया जा रहा हो पथ निरपेक्ष प्राधिकारी का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए । इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि धार्मिक संस्थाओं में साम्प्रदायिक संस्थाओं को अनु 26 के अधीन विशेष संरक्षण प्राप्त हैं ।

श्रीधर राव बनाम आंध्र प्रदेश सरकार वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया था कहा गया है कि नियंत्रण शक्ति का प्रयोग सुसंगत आकड़ों और आवश्यक तथ्यों पर आधारित होना चाहिए । इसे बिना आवश्यकता के यों ही नहीं प्रयोग करना चाहिए ।[55]

राजस्थान राज्य बनाम सज्जन लाल [56] ऋषभदेव मंदिर और उसकी सम्पत्ति उदयपुर के शासक में निहित थी संविधान लागू होने के बाद अनुच्छेद 26 के अंतर्गत सभी संप्रदायों को धार्मिक सम्पत्ति के स्वामित्व और प्रशासन का अधिकार मिल गया है । इसमें तर्क दिया गया है कि यह जैन सम्प्रदाय के शासन में रहा था इसलिए इसका और इ सकी सम्पत्ति का प्रंबन्ध जैन सम्प्रदाय को मिलना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संविधान लागू होने से पहले ही मंदिर की सम्पत्ति और प्रबंध उदयपुर रियासत के शासक के पक्ष में विधिपूर्ण ढंग से निहित हो चुका था क्योंकि शासकों को विधायी, कार्यपालक और न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त थीं ।उनके आदेश को चुनौती नहीं दी जा सकती थी स्वतंत्रता के बाद संविधान लागू होने से पहले ही प्रबंध संबंधित राज्य में निहित हो चुका था इसलिए वह अनुच्छेद 26 के कारण जैन सम्प्रदाय को वापस नहीं हो सकता अनुच्छेद 372 संविधान के लागू होने के समय वर्तमान विधि को सरक्षित करता है

ब्रह्मचारी सिद्धेश्वर सहाय बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य[57] के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि रामकृष्ण परमहंस के अनुयायी जो व्यक्तियों का समूह है, जो अपने आध्यात्मिक कल्याण के लिए एक जीवन पद्धति में विश्वास रखते हैं, जिसका एक सामान्य संगठन है, एक निश्चित नाम है, हिन्दू धर्म के अन्तर्गत एक धार्मिक सम्प्रदाय है। रामकृष्ण मिशन में धार्मिक संप्रदाय के उपरोक्त सभी आवश्यक तत्व निहित हैं अतः वह अनु 26के अन्तर्गत प्राप्त अपने मूल अधिकारों (संस्थाओं की स्थापना और पोषण) का दावा कर सकता है।

धार्मिक संस्थाओं की स्थापना और पोषण का अधिकार-अनुच्छेद 26 के खण्ड (क) के अधीन प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय के लोगों को धार्मिक और पूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का अधिकार प्राप्त है। **अजीज पाशा बनाम भारत संघ** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 'स्थापना'और'पोषण' दोनों शब्दों को साथ- साथ पढ़ा जाना चाहिये और इस अर्थ में किसी धार्मिक सम्प्रदाय को केवल उन्हीं संस्थाओं के पोषण का अधिकार होगा जिसकी वह स्थापना करता है। प्रस्तुत मामले में यह निर्णय दिया गया कि अलीगढ़ विश्वविद्यालय की स्थापना एक अधिनियम द्वारा की गई थी न कि मुसलमानों द्वारा; अतः वे उसके पोषण का दावा नहीं कर सकते हैं।

धार्मिक कार्यों के प्रबन्ध की स्वतंत्रता- अनुच्छेद 26 (ख) के अधीन किसी धार्मिक सम्प्रदाय या संस्था के प्रदत्त धार्मिक मामलों में प्रबन्ध की स्वतन्त्रता केवल धार्मिक विषयों तक ही सीमित है। राज्य इस अधिकार में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता है जब तक कि इसका प्रयोग सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और जनता के स्वास्थ्य के हित के विरुद्ध न किया गया हो। किसी धर्म से सम्बन्धित आवश्यक तत्व क्या है, इसका निर्धारण न्यायालय द्वारा मामले के तथ्यों और परिस्थितयों के आधार पर किया जायगा। अनुच्छेद 26 के खण्ड (ख) के अधीन प्रदत्त अधिकार केवल धार्मिक विषयों तक ही सीमित है। धार्मिक विषयों के अन्तर्गत किसी विशेष धर्म के मामले के लिए आवश्यक धार्मिक अनुष्ठान, कर्मकाण्ड-समारोह भी सम्मिलित है। किन्तु यदि धार्मिक कार्यों से लौकिक क्रियाये भी सम्बद्ध हैं तो राज्य उनको विनियमित कर सकता है। धर्म के नाम पर मन्दिर, मस्जिद या गुरुद्वारे का प्रयोग उग्रवादियों को प्रश्रय देने या राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को चलाने के लिए नहीं किया जा सकता है।[58]

सैफुउद्दीन साहेब बनाम बम्बई राज्य[59] के मामले में बम्बई विधानमण्डल द्वारा पारित जाति बहिष्कार प्रतिषेध अधिनियम की विधिमान्यता को चुनौती दी गयी थी। यह अधिनियम किसी व्यक्ति को उसके समाज से बहिष्कृत करने का प्रतिषेध करता था। याचिकाकर्त्ता दाउदी बोहरा

समुदाय का मुखिया था। उसने यह दावा किया कि समुदाय के मुखिया की हैसियत से उसे समुदाय के ऐसे किसी भी सदस्य को समुदाय से बहिष्कृत करने का अधिकार प्राप्त है जो समुदाय के परम्परागत नियमों का पालन न करता हो। उच्चतम न्यायालय ने बहुमत से यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त अधिनियम याचिकाकर्त्ता के धार्मिक मामलों में प्रबन्ध के अधिकार का अतिक्रमण करता है;अत: असंवैधानिक है। धार्मिक समुदाय के प्रमुख का पद अपने समुदाय में धर्म का आवश्यक भाग है। समाज- बहिष्कार की शक्ति उसे इसलिए दी गयी है ताकि वह समाज के सदस्यों में अनुशासन बना सके और उसका धार्मिक समुदाय के रूप में अस्तित्व कायम रख सके। उक्त अधिनियम अनु. 25 (ख) के अन्तर्गत समाज-कल्याण या समाज-सुधार के लिए पारित विधि नहीं माना जा सकता है। किन्तु मुख्य न्यायाधीश श्री बी. पी. सिन्हा ने बहुमत के निर्णय के विरुद्ध अपनी विसम्मति प्रकट की। उन्होंने कहा कि उक्त अधिनियम अनु. 25(ख) के अन्तर्गत समाज-सुधार विधि है।

बीरा किशोर देव बनाम उड़ीसा राज्य [60] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने उस अधिनियम को वैध घोषित किया जिसके अनुसार पुरी के राजा से मन्दिर के लौकिक कार्यों का प्रबन्ध लेकर एक समिति को सौंप दिया गया था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इससे धार्मिक कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं हुआ।

सेशाम्मल बनाम तमिलनाडु [61] के मामले में तमिलनाडु हिन्दु रेलिजस ऐण्ड चेरिटेबुल एण्डाउमेंट्स (अमेन्डमेंट) ऐक्ट, 1972 की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दीय गयी कि यह संशोधन संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 के अधीन प्रत्याभूत अधिकारों का अतिक्रमण करता है। इस संशोधन अधिनियम की धारा 55, 56 और 116 में समाज-सुधार की दृष्टि से संशोधन किये गये। इसके द्वारा हिन्दू-मन्दिरों में सभी पदाधिकारियों की नियुक्ति का आनुवंशिक सिद्धांत समाप्त कर दिया गया तथा उसके लिए कतिपय शैक्षिक अर्हताएँ निहित की गयीं। संशोधन के अन्तर्गत न्यासी अर्चक के रूप में आनुवंशिक नियुक्तियाँ करने के लिए बाध्य नहीं हैं। वह ऐसे व्यक्तियों को अर्चक के पद पर नियुक्त कर सकता है जो संशोधनअधिनियम द्वारा निहित अशैक्षणिक अर्हताओं को रखते हों, भले ही वे शैव या वैष्णव न हों। पिटिशनरों ने यह तर्क दिया कि इस प्रकार किसी भी व्यक्ति को अर्चक और पुजारी नियुक्त करके शैव और वैष्णव मन्दिरों की धार्मिक परिपाटियों में हस्तक्षेप किया गया है और सामाजिक सुधार लाने के बजाय ऐसे कदम उठाये गये हैं जिनसे अपरिहार्य रूप से मन्दिर अपवित्र और दूषित हो जायँगे। उच्चतम न्यायालय ने पिटिशनरों के तर्क को अस्वीकार कर दिया और अधिनियम को विधिमान्य घोषित किया। न्यायालय ने कहा कि न्यासी द्वारा अर्चक की नियुक्ति का कार्य धर्म-निरपेक्ष है। अर्चक को किसी भी संस्था के आध्यात्मिक अध्यक्ष के रूप में नहीं माना गया है। न्यासी या सेवायत नियुक्यिाँ

करता है और उसे अवचार के लिए पदच्युत कर सकता है।

धार्मिक सम्प्रदाय का सम्पत्ति के अर्जन और प्रशासन का अधिकार- अनुच्छेद 26 का खण्ड (ग) और (घ) प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को सम्पत्ति विधि के अनुसार अर्जन और उसके प्रशासन करने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है।इस प्रकार यह अधिकार एक सीमित अधिकार है और इस पर अनुच्छेद 25 (2)(क) के अधीन इस अधिकार पर जनहित, नैतिकता एवं जन-स्वास्थ्य के आधार पर आवश्यक निर्बन्धन लगाये जा सकते हैं। यह अधिकार सामान्य संपत्ति विधियों के अधीन भी है। उक्त खण्ड किसी नये अधिकार का सृजन नहीं करते हैं ये किसी धार्मिक सम्प्रदाय में पहले से निहित अधिकार को सुरक्षित करते हैं। इन अधिकारों को नष्ट नहीं किया जा सकता है। इन्हें केवल विधि बनाकर विनियमित किया जा सकता है ताकि सम्पत्ति का धर्मादा प्रयोजनों के लिए अधिक उपयोगी ढंग से प्रयोग किया जा सके। इस प्रकार वह कानून, जो धार्मिक सम्प्रदायों सेउनकी सम्पत्ति के प्रशासन का अधिकार लेकर किसी लौकिक प्राधिकारी में निहित कर देता है, अनुच्छेद 26 (घ) का उल्लंघन करता है [62]

किन्तु यदि सम्पत्ति केप्रशासन का अधिकार धार्मिक सम्प्रदायों में कभी निहित नहीं था या कानून रूप से त्याग दिया गया था या नष्ट हो गया था तो अनुच्छेद 26का संरक्षण प्राप्त नहीं होगा[63] इस प्रकार धार्मिक सम्प्रदायो का अपनी सम्पत्ति-प्रशासन की अपेक्षा धार्मिक मामलों के प्रबन्ध का अधिकार अधिक सुदृढ़ है। पहले अधिकार को राज्य विधि बनाकर विनियमित कर सकता है जब कि दूसरा अधिकार मूल अधिकार है जिसमें विधायिका कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।

संविधान के उपबन्धों से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि धर्म के मामले में राज्य की एक सकारात्मक भूमिका है। यद्यपि वह धर्म के मामले में हस्तक्षेप नहीं करेगा किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार का दुरूपयोग किये जाने पर वह एक मूकदर्शक बना रहेगा। अनु. 25 (1) के आधीन राज्य लोक-व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के हित में तथा खण्ड (2) के अधीन धर्म से सम्बद्ध आर्थिक राजनैतिक और अन्य लौकिक क्रिया-कलापों को विधि बनाकर विनियमित या निर्बन्धित कर सकती है इस प्रकार धार्मिक स्थानों, मन्दिर, गुरूद्वारा, मस्जिद का प्रयोग अपराधियों को प्रश्रय देने या राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को चलाने के लिये नहीं किया जा सकता है। धर्म को राजनीतिक क्रिया-कलापों से अलग रखा जाना चाहिये। धर्म- निरपेक्ष राज्य में धर्मगत राजनीति का कोई स्थान नहीं है। धर्म के नाम पर पृथकतावादी और उग्रवादी गतिविधियों को बढ़ावा नहीं दिया जा सकता है। भारतीय संविधान इन राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को रोकने के लिए राज्य को पर्याप्त शक्ति प्रदान करता है। राज्य की इस सकारात्मक भूमिका के अभाव के कारण ही धर्म राजनीति में प्रवेश कर गया और धर्म-निरपेक्षता

को एक खतरा उत्पन्न हो गया। पंजाब में अकाली दल ने हमारी इस कमजोरी का लाभ उठाकर उलगाववादी और उग्रवादी गतिविधियों को बढावा दिया। धर्म को राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग किया गया। धार्मिक स्थल को राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों को चलाने के लिए प्रयोग किया गया। सरकार को अन्त में स्वर्ण मन्दिर के दुरुपयोग को रोकने के लिए कार्यवाही करनी पड़ी। धर्म- निरपेक्षता को बनाये रखने और सशक्त बनाने में राज्य को इस सकारात्मक भूमिका को निभाने में पर्याप्त इच्छा-शक्ति जुटानी पड़ेगी। देश के नागरिकों को भी इसमें रचनात्मक भूमिका निभानी पड़ेगी। पंथनिरपेक्ष राज्य अधार्मिक राज्य नहीं होता है। यदि राज्य राष्ट्र के महान नेताओं के दाह संस्कार का प्रबन्ध करता है तो वह एक लौकिक कार्य है और राज्य कर सकता है।

एथीस्ट सोसाइटी आफ इण्डिया बनाम गवर्नमेन्ट आफ आंध्रप्रदेश राज्य [64] के मामले के एक महत्वपूर्ण प्रश्न न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया। पिटिशनर जो भारत की नास्तिक सोसाइटी का सदस्य था, ने न्यायलय से परमादेश रिट जारी करके सरकार को सरकारी भवनों के शिलान्यास और उद्घाटन के अवसरों पर धार्मिक अनुष्ठानों को करने और धार्मिक प्रतीकों को प्रदर्शित करने पर रोक लगाने का आदेश जारी करने को कहा। उसका तर्क था कि इससे सरकार के पंथनिरपेक्ष स्वरूप पर आघात पहुँचता है। किन्तु न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि उपर्युक्त कृत्यों से धर्म निरपेक्षता पर प्रभाव नहीं प ड़ता है।संविधान की प्रस्तावना और अनुच्छेंद 25 से 30 में निहित धर्म निरपेक्षता का अर्थ अधार्मिक राज्य नहीं है। धर्म निरपेक्षता एक आदर्श और एक प्रक्रिया है। इसमें अलगाव की अपेक्षा मिलाने की, पृथक्करण की अपेक्षा संयोजन की, प्रभुत्व की अपेक्षा बहुत्ववाद की भावना निहित है, धर्म निरपेक्षता न केवल धर्म और अन्तरात्मा और सांस्कृतिक , शैक्षिक अधिकार की गारन्टी है, बल्कि सभी नागरिकों में भ्रातृत्व , भाईचारा और एकता की मूल भावना है। धर्म निरपेक्षता एक लक्ष्य है और एक प्रक्रिया भी है। यह राष्ट्रीयता और भाषा की राष्ट्रीय अखण्डता और साम्प्रदायित्व सामंजस्य का एक मिश्रण है। भारत की सांस्कृतिक विरासत मानवतावाद और नि:स्वार्थ सेवा का सन्देश है। न्यायालय ने निर्णय दिया कि एक नास्तिक के कहने से राजकीय समारोहों के धार्मिक कार्यों को रोका नहीं जा सकता है। ऐसे अवसरों पर नारियल का तोड़ा जाना, पूजा करना और मन्त्रोच्चारण करना भारतीय परम्परा का एक भाग है। ये अनुष्ठान धार्मिक आचरण का एक भाग है। इनका उद्देश्य योजना की सफलता के लिए सर्वशक्तिमान ईश्वर की आर्शीवाद लेना है। ऐसे उदात्त कार्य से किसी को कोई कष्ट नहीं पहुँचता है। ऐसा हो सकता है कि पिटिशनर को ये कार्य अच्छे न लगते हो क्योंकि वह एक नास्तिक है।संविधान नास्तिक के विश्वास की गारण्टी नहीं देता है। यदि पिटिशनर की प्रार्थना स्वीकार कर ली जाती है तो करोड़ों भारतवासियों के अधिकारों का अतिक्रमण होगा जो उन्हें अनुच्छेद 25 के अधीन

प्राप्त है और प्रस्तावना के धर्मनिरपेक्ष आदर्श के सीधे विरोध में होगा जो संविधान का एक आधारभूत ढाँचा है। यह उनको विचार अभिव्यक्ति विश्वास और पूजा के अधिकार से वंचित करेगा।

हिन्दु धर्मादा आयुक्त मद्रास बनाम एल वी. स्वामियार[65] के वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि महाधिपति निगमित निकाय नहीं है वह आध्यात्मिक भाईचारे का मुखिया है और अपने पद के कारण उसे आध्यात्मिक शिक्षण का कार्य करना पड़ता है यह उसका कर्त्तव्य है कि वह जिस धर्म के अन्तर्गत आता है उसका प्रचार प्रसार करे और यदि विधि का कोई प्रावधान उसे अपने धर्म के प्रसार से रोकता है तो इससे निश्चित रूप से ही अनुच्छेद 25 द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता प्रभावित होगी। धर्म का प्रसार तथा अभ्यास केवल व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है चाहे वे व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विचारों का प्रसार करे या अपने सम्प्रदाय का, परन्तु यह बात अनुच्छेद 25 के महत्व की नहीं है अनुच्छेद 25 के अन्तर्गत जिस चीज का संरक्षण प्रदान किया गया है वह है विश्वास का प्रसार चाहे वह चर्च का हो या मंदिर का या बैठक का हो।

शब्द 'संप्रदाय' को आक्सफोर्ट डिक्शनरी में निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है ''व्यक्तियों का ऐसा समूह जिसे एक ही नाम के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है।'' मठों की स्थापना का कार्य जो कि आध्यात्मिक शिक्षा का केन्द्र होते है, श्री शंकराचार्य द्वारा शुरु किया गया और विभिन्न शिक्षकों द्वारा इसका अनुपालन किया गया उनके बाद भिन्न शिक्षक तथा दार्शनिक आये जिन्होंने भिन्न सम्प्रदाय तथा मठ की सस्थापना की। प्रत्येक ऐसे मठ को धार्मिक संप्रदाय कहा जा सकता है जैसा कि उन्हें उनके संस्थापकों द्वारा भिन्न नाम दिए गए और कई मामलों में उनका नाम उनके संस्थापकों के नाम पर होता है और उनका सामान्य विश्वास तथा आध्यात्मिक संस्था होती है। रामानुज के अनुपालक श्री वैष्णव के नाम के जाने जाते हैं तथा एक धार्मिक संप्रदाय का निर्माण करते हैं ओर इसी प्रकार माधवाचार्य तथा अन्य धार्मिक शिक्षक हैं।

अनुच्छेद 26 न केवल धार्मिक संप्रदाय से संबंधित है परन्तु एक वर्ग से भी,मठ या आध्यात्मिक भाईचारा जिसका ये प्रतिनिधित्व करते हैं इस अनुच्छेद के अंतर्गत वैध रूप से आते हैं। धर्म व्यक्ति या संप्रदाय के विश्वास का मामला है और यह आवश्यक नहीं है कि वह आस्था से जुड़ा हो। भारत में कई प्रचलित धर्म है जैसे बौद्ध धर्म, जैन धर्म जो ईश्वर में विश्वास नहीं करते निश्चित रूप से एक धर्म का आधार विश्वास होता है जो उनके द्वारा किया जाता है जो उस धर्म को अपने आध्यात्मिक जीवन के लिए आवश्यक मानते है परन्तु यह कहना सही नहीं होगा कि धर्म सिर्फ विश्वास के कुछ भी नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि एक धर्म अपने अनुपालकों के पालन के लिए नैतिक संहिता बनाये और वह धार्मिक क्रियाकलाप संस्कार पूजा के तरीके बना सकता है जो धर्म के अभिन्न अंग माने जाते

हैं और इसका क्षेत्र भोजन तथा वस्त्रों तक विस्तृत हो सकता है।

वह वस्तु जो धर्म का आवश्यक अंग बनाती है उसे उस धर्म की नीतियों से ही निश्चत करना चाहिए यदि किसी धार्मिक संप्रदाय या हिन्दुओं का वर्ग भोजन का अंश दिन के कुछ निश्चित घंटों में मूर्ति को चढ़ाना चाहिए तो वह क्रमिक क्रियाकलाप उसी निश्चित तरीके से उसी दिन के निश्चित घंटों में पूरे होने चाहिए और धार्मिक पुस्तकों का नियमित पाठ होना चाहिए अग्नि के समक्ष हवन होना चाहिए इन सभी को धर्म का भाग माना जायेगा केवल यह तथ्य कि उनमें धन का खर्च सम्मिलित है या पादरियों का रोजगार सम्मिलित है या क्रय या सेवकों योग्य वस्तुए उपयोग की जाती हैं इससे क्रियाकलाप धर्म निरपेक्ष या वाणिज्यक या अर्थशास्त्रीय चरित्र के नहीं हो जाते हैं ये अनुच्छेद 26 के तहत धार्मिक मामला है।

भारतीय संविधान के अंतर्गत धार्मिक स्वतंत्रता केवल धार्मिक आस्था तक ही सीमित नहीं है किन्तु यह धार्मिक क्रियाकलापों तक संविधान में दिए गए निर्बन्धनों तक विस्तृत है इस प्रकार अनुच्छेद 26 (2) के अर्न्तगत एक धार्मिक सम्प्रदाय या संस्था पूर्ण स्वयंत्रता अपनी क्रियाकलापों को तय करने में उपयोग कर सकती है किसी भी बाहरी प्राधिकारी को यह अधिकार नहीं है कि इन मामलों में उनके निर्णय में हस्तक्षेप करे। धार्मिक क्रियाकलापों में कितना खर्च किया जा सकता है यह धर्मनिरपेक्ष प्राधिकारियों द्वारा सक्षम विधायिका द्वारा बनाई गयी विधि के अनुसार नियन्त्रित किया जा सकता है परन्तु यह किसी धर्म को अपनी संस्था को नष्ट करने के लिए या व्यादेश के समान कार्य नहीं कर सकता।

लेकिन अनुच्छेद 26 (4) के अंतर्गत धार्मिक सम्प्रदाय या इसके प्रतिनिधि का यह मौलिक अधिकार है कि वह विधि के अनुसार अपनी सम्पत्तियों को प्रशासित करे। सम्पत्ति को प्रशासित करने का अधिकार धार्मिक सम्प्रदाय पर ऐसे निर्बन्धनों तथा कानूनों के अंतर्गत रहते हुए उसी धार्मिक सम्प्रदाय पर छोड़ देना चाहिए यदि कोई विधि धार्मिक संप्रदाय से सम्पत्ति प्रशासित करने का अधिकार पूरी तरह से छीन लेती है तथा दूसरे प्राधिकारों में निहित करती है तो इसे अनुच्छेद 26 के अंतर्गत प्रदत्त अधिकार का अतिक्रमण माना जायेगा मन्दिर या धार्मिक संस्था में प्रवेश का व्यक्तियों को कोई अनिर्बनधित तथा अनियंत्रित अधिकार नहीं है। किसी बाहरी व्यक्ति को मन्दिर के किसी पवित्र स्थल में प्रवेश की अनुमति देने से मना किया जा सकता है मूर्ति की पूजा का समय निश्चित होता है तथा विश्राम का भी समय निश्चित रहता है जब मूर्ति के विश्राम का समय होता है तब किसी भी व्यक्ति को प्रवेश करने से रोका जा सकता है।

क्या वक्फ बोर्ड धार्मिक सम्प्रदाय है ?

सईद फजल बनाम भारत संघ [66] ने केरल में कहा कि वक्फ बोर्ड व्यक्तियों का एकीकरण नहीं यह एक कम्पनी के समान नहीं है जहां कई व्यक्ति उसे मिलकर बनाते हैं या पूरी तरह से एक विधिक निकाय है ना कि मस्लिम समुदाय का एक प्रतिनिधिक निकाय इसकी कोई आत्मा या विश्वास नहीं है सिवाय उस विश्वास के कि वह अधिनियम के अतंर्गत अपने कर्त्तव्यों का पालन करे अनुच्छेद 26 के प्रयोजन के लिए वक्फ बोर्ड धार्मिक सम्प्रदाय नहीं है।

वक्फ बोर्ड द्वारा मुस्लिम स्त्री द्वारा भरण पोषण दिया जाना असंवैधानिक नहीं है - मुस्लिम स्त्री (संरक्षण एवं तलाक पर अधिकार) अधिनियम 1986 की धारा 9 वक्फ अधिनियम 1954 के अधीन गठित वक्फ बोर्ड पर यह दायित्व डालता है कि वह ऐसी मुस्लिम स्त्री का भरण पोषण करे जो कि स्वयं के पोषण में सक्षम नहीं है तथा उसके ऐसे रिश्तेदार नहीं हैं जो उसका भरण पोषण करें उस मामले को सईद फजल के मामले में इसको चुनौती दी गई है तथा न्यायालय ने निर्धारित किया कि वक्फ बोर्ड धार्मिक सम्प्रदाय नहीं है और इस प्रकार उक्त अधिनियम की धारा 4 (2) को असंवैधानिक नहीं कहा जा सकता।

किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता- अनुच्छेद 27 के अनुसार "किसी भी व्यक्ति के ऐसे करों का संदाय करने के लिए बाध्य नहीं किया जायगा जिनके आगम किसी विशिष्ट धर्म पर धार्मिक संप्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय करने के लिए विनिदिष्ट रूप से विनियोजित किए जाते हैं।"

यह उपबंध धर्म-निरपेक्षता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अनुच्छेद 27 राज्य सरकार को किसी विशेष धर्म की उन्नति या पोषण के लिए कर लगाने का निषेध है यह इस बात की ओर संकेत करता है कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं है। उसके लिए सब धर्म बराबर है। लेकिन इस प्रावधान का यह तात्पर्य नहीं कि कोई भी धर्म वाले किसी विशेष प्रयोजन के लिए अपनी सामान्य आय से अधिक अनुदान नहीं कर सकते [67]।

अनुच्छेद 27 के लागू होने के लिए दो शर्तें पूरी होना चाहिए -

(1) पहली शर्त है संविधान के अंतर्गत कर और फीस में अंतर किया गया है प्रत्येक विधायी सूची में करों के लिए भी उपबंध है और फीस के विषय में भी प्रविष्टियाँ है यह स्वतंत्रता कर से है फीस से नहीं। कर एवं फीस में अंतर यह है कि कर एक अनिवार्य धन की वसूली है जो जनता के हित के लिए की जाती है इसमें करदाता को कोई विशेष लाभ नहीं होता है। वे उतना ही लाभ पाते है जितना अन्य जनता परन्तु 'फीस' किसी विशेष कार्य के लिए ली जाती है इससे होने वाली आय उस काम की

देखभाल के लिए स्थापित सरकारी मशीनरी के खर्चे में लगाई जाती है। यद्यपि 'कर' व फीस दोनों राज्य की जनता से रूपया वसूल करने के तरीके हैं।

श्री जगन्नाथ रामानुज बनाम उड़ीसा राज्य [68] के मामले में उड़ीसा हिन्दू धार्मिक धर्मादा अधिनियम 1939के अंतर्गत लगाये गये कर को न्यायालय ने शुल्क बताया है वसूल की गई धनराशि कमिश्नर के आफिस के खर्चे के लिए ली गई थी जो धार्मिक संस्था के प्रशासन के लिए स्थापित की गयी थी जिससे धार्मिक संस्थाओं का सुचारु रूप से प्रशासन हो सके। उक्त कसौटी में अब बहुत परिवर्तन हो गया है कि अधिशोषण शुल्क है क्योंकि उसे देने वाले को बदले में कुछ लाभ मिलता है। शुल्क देने वाले उसे मिले लाभ का तत्व उसका एकमात्र तत्व नहीं है शुल्क की रकम और प्रदान की गयी सेवा में एक सामान्य प्रकृति का संबंध है गणितीय सूक्ष्मता का नहीं

सिकंन्दराबाद हैदरावाद होटल ओनर्स एसोसियेशन बनाम एच. एम. सी. [69] में उच्चतम न्यायालय ने कि लाइसेंस फीस विनियमनकारी या प्रतिकरात्मक हो सकती है। जब फीस किसी विशिष्ट सेवा के लिए ली जाती है तो उसमें तत्प्रतित का (quid proquo) कुछ तत्व होता है जिससे लाइसेंस की सेवा के व्यय के अनुपात में होती है जब कोई क्रिया-कलाप ऐसे होते हैं जिनका विनियमन या नियंत्रण आवश्यक है। इसमें फीस के बदले कोई विशिष्ट सेवा नहीं होती है फिर भी इसे फीस ही कहा जाएगा, कर नहीं। परन्तु ऐसी फीस अत्याधिक नहीं हो सकती।

(2) दूसरी शर्त यह है कि एकत्र की गई रकम किसी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय पर खर्चकी गई हो। (हिन्दू धार्मिक विन्यास आयुक्त बनाम एल. टी. स्वामियार)[70] में यह निर्णय किया गया कि अनुदान कर था फीस नहीं। फिर भी अनुच्छेद 27 के अतिक्रमण के आधार पर असंवैधानिक घोषित नहीं किया गया, क्योंकि एकत्र की गई धनराशि किसी विशेष धर्म या धार्मिक संस्था पर खर्च नहीं की जाती थी।

अनुच्छेद 27 केवल धर्म की उन्नति या पोषक का निषेध करता है। इसका अर्थ यह है कि यदि राज्य बिना किसी भेदभाव के सभी लौकिक और धार्मिक संस्थाओं को समान रूप से सहायता प्रदान करता है तो अनुच्छेद 27 लागू नहीं होगा।

अनुच्छेद 27 किसी एक धर्म को दूसरे धर्म से अधिक बढ़ावा देने को वर्जित करता है। धर्म में लौकिक या सांस्कृतिक क्रिया-कलाप नहीं आते हैं। **सुरेशचंद्र बनाम भारत संघ** [71] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि भगवान महावीर के 2500 में निर्वाण दिवस को मनाने के लिए किए गए सांस्कृतिक कार्यक्रम को सरकार द्वारा सहायता देना अनुच्छेद 27 का उल्लंघन नहीं करता है क्योंकि इससे जैनधर्म को बढ़ावा नहीं मिलता है। इसी प्रकार के **रघुनाथ बनाम केरल राज्य** [72] के

मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि दंगों में गिरायी गयी मस्जिदों का सरकार द्वारा पुनर्निर्माण कराना अनुच्छेद 27 का उल्लंघन नहीं है।

राज्य पोषित शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या उपासना का प्रतिषेध- अनुच्छेद 28 के अनुसार-(1) पूर्णतः राज्य निधि से पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायगी।

(2) खण्ड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था को लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है किन्तु जो किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है जिसके अनुसार एक संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।

(3) राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जायगा जब तक कि उस व्यक्ति ने या यदि वह आवश्यक है तो उसके संरक्षक में, इसके लिए अपनी सहमति नहीं दे दी है।

इस अनुच्छेद के अनुसार किसी धर्म की शिक्षा राज्य की या राज्य द्वारा पूरी सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं में देने का निषेध किया है परन्तु इसका अपवाद है उन संस्थाओं में जो राज्य द्वारा स्थापित नहीं थी परन्तु राज्य ने उनका प्रबंध अपने हाथ में ले रखा है, उनमें धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है, यदि वे संस्थाएं किसी ट्रस्ट या एण्डाउन्मेन्ट के अधीन स्थापित हुई है और उनके अनुसार धार्मिक शिक्षा देना अनिवार्य है।

इसके अतिरिक्त उन शिक्षा संस्थाओं में भी धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है जो राज्य सरकार द्वारा सहायता पाती है परन्तु इसमें किसी विद्यार्थी को उसकी सहमति बिना शिक्षा लेने को बाध्य नहीं किया जावेगा।

अनुच्छेद 28 ने चार प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का उल्लेख करता है-

(1) राज्य द्वारा पूरी तरह से पोषित संस्थाएँ,

(2) राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाएँ,

(3) राज्यनिधि से सहायता पाने वाली संस्थाएँ,

(4) राज्य-प्रशासित किन्तु किसी धर्मस्व या न्याय के अधीन स्थापित संस्थाएँ।

इस प्रकार पहली प्रकार की संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती है दूसरे एवं तीसरे प्रकार की संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है परन्तु शर्त यह है कि इसके लिए लोगों ने अपनी सम्मति दे दी हो। और अंतिम में आने वाली संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने के बारे में कोई

प्रतिबंध नहीं है।

धर्म का यहां वही तात्पर्य है जो अनुच्छेद 25 -26 में बताया गया है इसलिए इसमें किसी सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक मान्यताएँ व उसके लिए की जाने वाली- धर्म क्रियाएँ के बारे में बताना धार्मिक शिक्षा में आता है। लेकिन किसी सम्प्रदाय के संस्थापक के जीवन व उनके सिद्धांतों का अध्ययन करना या अध्ययन के लिए प्रावधान करना धार्मिक शिक्षा देना नहीं है।[73] इसके अंतर्गत ''नैतिक शिक्षा'' नहीं है आती इसलिए नैतिकता के सर्वमान्य सिद्धांतों की शिक्षा दी जा सकती है। जो संस्था में सरकार से सहायता प्राप्त करती है या सरकार से मान्यता मिली है वे अपने यहाँ अनुच्छेद 29 (2) के अनुसार किसी विद्यार्थी का धर्म के आधार पर दाखिला करने से मना नहीं कर सकती और जब अन्य धर्मों के विद्यार्थी उस संस्था में होगें तब उन्हें कैसे अपने धर्म की शिक्षा दी जा सकतीहै अत: यह खंड अनुच्छेद 29 (2) का पूरक है।

अरूणा राय और अन्य बनाम भारत संघ[74] अनुच्छेद 28(1) राज्य की शैक्षणिक संस्थाओं के अध्ययन के परिणाम का निषेध नहीं करता। वास्तव में धर्मों का अध्ययन भारत की एकता और अखण्डता को मजबूत करता है भारतीय समाज अलग-अलग धर्म और विश्वासों से मिलकर बना है उनसे अपेक्षा की जाती है कि न केवल वे साथ-साथ रहे और एक दूसरे को सहन करे बल्कि शान्ति और प्रेममय सहिष्णु जीवन जिये। भारत के विभाजन के पहले और बाद में धार्मिक रिवाज और समुदाय अवरोध होने राष्ट्र की उन्नति तथा उसकी प्रगति की ओर प्रयासों को क्षति पहुँचाई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2002 तक स्कूली बच्चों को सभी धर्मों के उभयनिष्ठ तथ्यों को समझाने तथा उन्हें शिक्षित बनाने का कदम एक अधार्मिक कदम नहीं हैं धर्मों को अध्ययन प्रारम्भिक अवस्था से शुरु होकर उच्च शिक्षा स्तर तक चलना चाहिए इस बात पर जोर दिया जाता है कि शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को केवल शिक्षित एवं होशियार बनाना नहीं बल्कि सच्ची शिक्षा वह है जिससे एक बच्चा धीरे-धीरे समझता है कि वह ना केवल शरीर और मस्तिष्क से बना है बल्कि कुछ तात्विक योग्यताओं से बना हैं।

धर्मनिरपेक्षता संविधान की मौलिक संरचना है अनुच्छेद 28 (1) धार्मिक संस्थाओं का शैक्षणिक संस्था में रूपान्तरण राज्य निधि से होने का विरोध करता है डी.ए. वी.कालेज बनाम पंजाब राज्य के वाद में कहा गया है कि 'धार्मिक निर्देश' के शब्द धर्म की प्रतिबंध शिक्षा तथा रुप माने गये हैं किसी महान संत जैसे कबीर, महावीर और गुरुनानक का दर्शन तथा शिक्षा का आकादनिक अध्ययन संविधान के अनुच्छेद 28 (1)के अंतर्गत प्रतिबन्धित नहीं माना गया था।

एक विशेषता जो कि धार्मिक निर्देशों के बीच में देखी गयी है दर्शन के शिक्षण पूजा के

प्रकारों परम्पराओं रीति रिवाजों का पालन करना है धर्मों का अध्ययन तथा धार्मिक निर्देशों के बीच इन्हें अलग करने वाली बहुत पतली लाइन खीचना हैं।

भारत में शिक्षा जो कि संविधान में शामिल धर्म निरपेक्ष व्यक्तियों और राज्य की संस्थाओं में धार्मिक अनुदेश अनुच्छेद 28 (1) के द्वारा मना किया जाता है। धार्मिक बहुलता पर आधारित शिक्षा होगी। यह प्रयोग कठिन अवश्य है लेकिन यदि समाज में शन्ति और सौहाद्रता लाने के अच्छे विश्वास के साथ इसे अपनाया जाय तो कुछ आशानुकूल होगा।

अनुच्छेद 28 (1) में प्रयुक्त धार्मिक अनुदेश एक प्रतिबन्धित अर्थ रखता है यह कहता है कि राज्य निधि से पूर्णत: संचालित शैक्षिणिक संस्थाओं में पूजा के तरीकों रीति रिवाजों के शिक्षण तथा धार्मिक नियमों के आचरण करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए परन्तु अनुच्छेद 28 (1) भारत में तथा भारत के बाहर के धर्मों के अध्ययन पर प्रतिबंध के रूप में नहीं समझा जा सकता।

अनुच्छेद 28 (1) कि कोई भी व्याख्या जो कि किसी बालक अथवा व्यक्ति के अपने अथवा किसी अन्य देश के धर्मों की शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार का हनन करती हैं, विध्वंसक होगी, भले ही यह ज्ञान जीवन के संचालन में जो कि दर्शन की अवधारणा पर आधारित है को व्युत्पन्न करती हो।

उच्चतम न्यायालय की खण्ड पीठ ने अरूणा राय व अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा दिए गए एक जनहित याचिका को खारिज करते हुए अपने फैसले में कहा ''शिक्षा को मूल आधारित बनाने की दृर्ष्टि से धार्मिक शिक्षा देने में भी कुछ गलत नहीं है लेकिन इसके साथ ही न्यायालय ने सरकार को अगाह भी किया कि धर्म की शिक्षा के नाम पर पाठ्यक्रम में धार्मिक रुढियों, व्यक्तिगत पूर्वाहों और अंधविश्वासों को नहीं भरा जा सकता संविधान धार्मिक शिक्षा का अध्ययन प्रतिबन्धित नहीं करता है और स्कूलों में इससे सम्बन्धित पाठ्क्रम लागू करने को सरकार का गैर धर्म निरपेक्ष कार्य नहीं कहा जा सकता।''

अनुच्छेद 25 से 28 धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित है परन्तु संविधान के निम्न अनुच्छेद भी सभी धर्मो के अनुयायियों को विभेद से संरक्षण प्राप्त करते है :-

(1) अनुच्छेद 15 (1) राज्य को किसी नागरिक के विरूद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग और जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर विभेद करने से मना करता है। अनुच्छेद 15 (2) के अनुसार कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश , जाति , लिंग , जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों , होटलों एवम् सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश अथवा पूर्ण या आंशिक रूप से राज्य द्वारा घोषित अथवा साधारण जनता के उपयोग के लिये समर्पित कुँओं ,

तालाबों, सड़कों तथा सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के बारे में किसी भी नियोग्यता, दायित्व, निर्बन्धन अथवा शर्त कें अधीन न होगा।

विभेद शब्द से तात्पर्य किसी व्यक्ति के साथ दूसरों की तुलना में प्रतिकूल व्यवहार करना है। यदि कोई कानून उपर्युक्त किसी भी आधार पर असमानता करता है तो वह शून्य होगा।[75] **नैनसुख बनाम स्टेट आफ यू. पी.**[76] के वाद जो विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के लिए पृथक् निर्वाचक मण्डल का प्रावधान करती थी। प्रताप सिंह बनाम राजस्थान राज्य के मामले में राजस्थान सरकार ने पुलिस अधिनियम 1861 के अधीन एक अधिसूचना जारी करके राज्य के कुछ क्षेत्रों को अशांत क्षेत्र घोषित कर दिया था। उस क्षेत्र में शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए अतिरिक्त पुलिस बल रखे गये थे। इस अतिरिक्त पुलिस बल के खर्चे पूरा करने के लिए इन क्षेत्रों मं रहने वाले निवासियों पर अतिरिक्त कर लगाया गया। किन्तु हरिजनों और मुसलमान निवासियों को इस कर से छूट प्रदान की गयी थी। इस छूट के केवल जाति और धर्म के आधार पर दिये जाने के कारण उच्चतम न्यायलय द्वारा इस अधिसूचना को संविधान के अनुच्छेद 15(1) के अतिक्रमण के आधार पर अवैध एवं असंवैधानिक घोषित कर दिया।

एम.बी. नाम जी बनाम डिप्टी कस्टोडियन ऑफ इवैकुई प्रापर्टी[77] के वाद में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा निक्रान्त सम्पत्ति के संबंध में बनायी गयी विधि को अनुच्छेद 15 का उल्लंघन नहीं माना यद्यपि इससे प्रभावित होने वाले लोगों में से अधिकतर मुसलमान ही थे, क्योकि गैर-मुस्लिम व्यक्ति भी निष्क्रान्त की परिभाषा के अंतर्गत होने के कारण यह विधि उस पर भी समान रूप से लागू होगी। यह विधि केवल धर्म के आधार पर हिन्दू-मुसलमान में विभेद नहीं करती है

अनुच्छेद15 (2), नागरिकों को भी उम्र आधारों पर विभेद करने से वर्जित करने से वर्णित करता है यह कहता है कि कोई भी नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, जाति लिंग, जन्म-स्थान के आधार पर दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या पूर्णत: या भागत: राज्य निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुँओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग करने के लिए निर्योग्य दायित्व, निर्बन्धन अथवा शर्त के अधीन न होगा

(2) अनुच्छेद 16 (2) धर्म, जाति, मूलवंश, लिंग, उद्‌भव, जन्म-स्थान तथा निवास आदि के आधार पर सरकारी सेवाओं में नियोजनों में विभेद मना करता है। अनुच्छेद 16 द्वारा धार्मिक स्वतंत्रता के पक्ष में यह उपबंध किया गया है कि कोई विधि, जिसके अनुसार किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के कार्य से संबंधित काई पदाधिकारी या उसके शासी निकाय का सदस्य किसी

विशिष्ट धर्म का मानने वाला हो या उस सम्प्रदाय का सदस्य ही हो, अनुच्छेद 16 के अन्य उपबन्धों के विरूद्ध नहीं समझा जायेगा ही हो। धार्मिक स्वतंत्रता के संरक्षण हेतु यह उपबंध बाँछनीय एवम् आवश्यक है।

अनुच्छेद16 (5), 16 (2) का अपवाद है यह खण्ड वास्तव में अनुच्छेद 26 में धार्मिक कार्यो के प्रबंध को स्वतंत्रता के अधिकार का आवश्यक परिणाम है। धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता केअधिकार में यह अधिकार भी निहित है कि कोई धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था यह निश्चित कर सके हि उसके कार्य से संबंधित कोई पदाधिकारी उसके शासी निकाय का सदस्य उसके धर्म का अनुयायी हो या उस सम्प्रदाय का सदस्य ही हो।

यदि कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट धर्म का होने के कारण किसी संस्था या निकाय में पद प्राप्त कर लेता है तो यह केवल इस आधार पर असंवैधानिक नहीं है कि अन्य व्यक्तियों की नियोजन की समानता के अधिकार का हनन हुआ है बल्कि यह अनुच्छेद16 (5) में दिये अपवाद के अंतर्गत यदि ऐसा न किया गया होता तो अन्य किसी धर्म का व्यक्ति दूसरे के धर्म के साथ या तो जानबूझकर या अनजाने में कई प्रकार के हस्तक्षेप कर सकता था। अतः यह कहा जा सकता है कि यह उपबंध भी धार्मिक स्वतंत्रता को संरक्षण प्रदान करता है।

(3) अनुच्छेद 23 (2) के अन्तर्गत अनिवार्य सेवा लागू करने का अधिकार है परन्तु राज्य को अनिवार्य सेवा लागू करने में राज्य ,धर्म, मूलवंश जाति या वर्ग के आधार पर कोई विभेद नहीं कर सकता।

विधायन द्वारा समाप्त करने के बजाय इस प्रतिबंध को संविधान में इसलिए रखा गया, क्योंकि यह प्रथा काफी पुरानी हो गयी थी और निहित स्वार्थो द्वारा इसको जारी रखने के प्रयास विफल करना आवश्यक था।

परन्तु अनिवार्य सेवा लागू करने में राज्य, धर्म, वंश, जाति या वर्ग के आधार पर विभेद नहीं करेगा। यह आवश्यक नहीं है कि राज्य अनिवार्य सेवा के लिए पैसा दे जिस समय संविधान सभा में इस पर विचार हो रहा था एक सदस्य, भूपिन्दर सिंह मन ने यह संशोधन पेश किया था कि जब भी राज्य अनिवार्य सेवा ले तो उसके लिए राज्य पैसा दे, यह उपबंध कर देना चाहिए। संविधान सभा ने यह संशोधन नामंजूर कर दिया। डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि इस खण्ड के अधीन जब भी राज्य अनिवार्य सेवा चाहेगा तो सभी से ली जायगी और यदि सभी को पैसा नहीं दिया जाता है इसमें धर्म, वंश जाति या किसी आधार पर विभेद नहीं किया जायेगा। तो इसमें कोई अन्याय नहीं होगा। यह वांछनीय है कि स्थिति इसी प्रकार रखी जाय।[78]

(4) अनुच्छेद 29 (2) यह उपबंध करता है कि राज्य द्वारा घोषित राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में किसी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति या भाषा के आधार पर प्रवेश से बंचित नहीं किया जायेगा।

परन्तु प्रश्न यह है कि क्या अनुच्छेद 29 (2) के होते हुए कालेज क्रिश्चियन अभ्यार्थियों को वरीयता दे सकता था, न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 29 (2) विभेद से मना करता है परन्तु अल्पसंख्यकों को अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रस्त संरक्षण के कारण उचित मात्रा में दिया गया आरक्षण समता के अधिकार का अतिक्रमण नहीं करता। परन्तु अल्पसंख्यकों के हित रक्षित करने के लिए विधि मनमानी नहीं हो सकती। वैयक्तिक अधिकारों और अल्पसंख्यकों के समुदाय के हितों का संतुलन आवश्यक होता है इसलिए राज्य प्रवेश को विनियमित कर सकता है यह विनियमन समुदाय की आवश्यकता को ध्यान में रखकर करना होगा। परन्तु किसी भी दशा में अल्पसंख्यक समुदाय के अभ्यार्थियों के लिए किसी वर्ष में 50 % से अधिक आरक्षण नहीं हो सकता। कम से कम 50% स्थान अन्य समुदायों के लिए खुले रहने चाहिए। अर्थात् धर्म के आधार पर केवल अल्पसंख्यकों की ही संख्यायें अपने समुदाय के सदस्यों या व्यक्तियों के लिए विशेष स्थानों का उपबंध कर सकती है परन्तु इसकी एक सीमा होगी जो 50% से अधिक नहीं होना चाहिए।[79]

(5) अनुच्छेद 30 (1) में धर्म व भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं को स्थापित और उनका प्रशासन करने का अधिकार दिया गया है।

(6) अनुच्छेद 51 (क) के अनुसार- भारत में प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह (क.) भारत के सभी लोगों में समरसता और समाज मातृत्व की भावना का निर्माण करें, जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हो।

भारत के संविधान जहाँ धमृ के संबंध में इतने अधिकार दिये गय है वहीं पर कर्तव्य की भी व्यवस्था संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के 42 वें संशोधन द्वारा भाग 4 क में मौलिक कर्तव्य के रूप में की है। क्योंकि प्रारंभ से भारत में कर्तव्यों के पालन पर विशेष बल दिया जाता रहा है। भारत के सभी धर्मग्रंथों में कर्तव्य पालन का भी उपदेश प्रमुख है गीता और रामायण जैसे महान ग्रंथ हमें अपने अधिकारों की परवाह किये बिना अपने कर्तव्यों के पालन करने का ही उपदेश देते है। कर्तव्यों का पालन करना व्यक्ति के हित में है और इससे समाज का भी हित होता है।

धर्म की स्वतंत्रता के लिए समान सिविल संहिता :-

भारतीय संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 44 में नागरिकों के लिए एक समान सिविल

संहिता की बात कही गयी है। अनुच्छेद 44 के अनुसार राज्य भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा। हमारे संविधान के राज्य के नीति निर्देशक तत्व में तो ये बाते उल्लिखित हैं, लेकिन भारत में समान सिविल संहिता लाने का प्रयास आज आजादी के 55 वे वर्ष तक नहीं किया जा सका है धर्म निरपेक्षता का ढोंग करने वाली केन्द्र में स्थापित कोई भी सरकार संविधान के अनुच्छेद 44 के निर्देशों का पालन करने में असफल रहीं है "हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आपस में भाई-भाई "का नारा साम्प्रदायिक पारिवारिक व सामाजिक जीवन संस्कृति में मात्र एक खोखला नारा बनकर रह गया है।

देश की एकता सारे अखंण्डता के परिपेक्ष्य में यह बड़ा ही महत्वपूर्ण निदेशक तत्व है। इस समय बहुत मामलों में प्रत्येक धर्म के अनुयाइयों के अलग- उपबंध है जैसे विवाह-तलाक, उत्तराधिकार, गोद लेना। इनमें भी अधिकत्तर राज्य में सब धर्मो के व्यक्तियों के लिए एक से ही प्रावधान है अत: यह उचित होगा कि अन्य मामलों में भी एक से प्रावधान हो।

अब प्रश्न यह है कि इस निर्देशक तत्व के अनुपालन से विभिन्न धर्मावलम्बियों के धर्म संबंधी मूल अधिकार जो अनुच्छेद 25 द्वारा सुरक्षित है, उल्लंघन होते हैं क्योंकि विवाह-तलाक उत्तराधिकार व गोद लेने की बातें उनके धर्म की आस्थाओं से संबंधित है परन्तु ऐसा नहीं है। अनुच्छेद 25 (2) में ही यह प्रावधान है कि राज्य धार्मिक आचरण से संबंधित किसी आर्थिक व लौकिक (Secular)क्रियाओं का क्रियान्वयन नियमित कर सकती है उपरोक्त बातें लौकिक क्रियाएँ हैं, चाहे ये धर्म से संबंधित हों। अत: सही मायने में देखा जाये तो इसने कोई विरोधाभास नहीं है अत: अनुच्छेद 44 और अनुच्छेद 25 में समन्वय करके समाज के व्यापक कल्याण अथवा सुधार करने में तथा संविधान की अपेक्षाओं तथा इसके हित में समान सिविल संहिता बनाने में कोई अड़चन आड़े नहीं आयेगी।

संविधान सभा का विचार -

संविधान निर्मात्री सभा में इस संबंध में प्रसिद्ध विधिवेत्ता श्री के एम. मुशीं ने इस आक्षेप को गलत बताया कि समान सिविल संहिता बनाना अल्पसंख्यक पर जुल्म करना होगा किसी विकसित मुस्लिम देश में भी सामान्य सिविल संहिता अल्पसंख्यक वर्ग के लिए अन्याय नहीं माना गया। यही स्थिति अन्य यूरोपीय देशों में हैं यह तो धर्म को व्यक्तिगत व सामाजिक क्रियाओं से अलग करने का प्रयत्न है। यह राष्ट्रीय एकता में सहायक होगा और यह तो ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की पृथक्कतावादी नीति का परिणाम ही था।

इसी प्रकार डा. भीमराव अम्बेडकर द्वारा दिये गये अनुच्छेद 44 की व्याख्या से संबंधित इस प्रकार है- हमारे देश में मानवीय व्यवहार के लगभग प्रत्येक पहलू का समावेश करने वाली

एक समान नागरिक संहिता विद्यमान हैं। मैं इस संबंध में एक ऐसे कानून को दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ जिसमें यह सिद्ध होता है कि इस देश में व्यवहारिक रूप से एक ऐसी नागरिक संहिता पहले से विद्यमान है जो अपने सारभूत स्वरूप में सम्पूर्ण देश में लागू होती है, केवल विवाह और उत्तराधिकार जैसे विषय ही इस संहिता में शामिल नहीं है। मात्र इसी कमी को पूरा करने के उद्देश्य से संविधान में अनुच्छेद 44 की यह व्यवस्था की गयी है ताकि भविष्य में इन दो महत्वपूर्ण बिन्दुओं का भी इस संहिता में समावेश किया जा सके।[80]

जब संविधन सभा में राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के प्रारुप पर बहस की जा रही थी तो संविधान सभा के मुस्लिम सदस्यों ने समान नागरिक संहिता की परिधि में विभिन्न धर्मावलम्बियों के पर्सनल लॉ को लाये जाने का जमकर विरोध किया था, किन्तु उनके विरोध को किनारे करते हुए संविधन सभा ने इस अनुच्छेद को पारित कर दिया था इसके साथ ही हमें यह भी ध्यान देना होगा कि संविधान का अनुच्छेद 44 राज्य के नीति -निर्देशक तत्वों का एक अंश होते हुए भी इसकी ध्वनि आदेशात्मक न होकर केवल निदेशात्मक ही है इसीलिये उसमें प्रयुक्त शब्द प्रयास करेगी में समान नागरिक संहिता को कानूनी रूप से लागू करने का स्पष्ट इरादा या संकल्प परिलक्षित नहीं होता है।[81]

तत्कालीन प्रंधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरु[82] द्वारा अनुच्छेद 44 के संबंध में यह अभिव्यक्त किया कि समान सिविल संहिता बनाने का अभी समय नहीं आया है हमारे राजनीतिक संविधान निर्माण के 52 वर्ष बाद तक भी यही बात चरितार्थ कर रहें हैं। वास्तव में कमजोर राजनैतिक इच्छा शक्ति, मतो की राजनीति तथा राजनीति के अपराधीकरण के कारण ही सरकार की जगह न्यायपालिका को सक्रिय होना पड़ा है और कई मामलों में न्यायालय इस संबंध में निर्देश दिये है भारत में समान सिविल संहिता की मांग वर्ष 1985 से अधिक होने लगी, जब **मोहम्मद अहमद खॉ बनाम शाहवानों बेगम**[83] के वाद में शाहवानों बेगम जो कि एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपने पति से भरण पोषण दिलाये जाने की मांग को लेकर याचिक दायर की। जिसमें उच्चतम न्यायालय ने कहा कि समान सिविल संहिता के बनाने से राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन मिलेगा। न्यायालय ने कहा कि समान सिविल संहिता बनाने की जिम्मेदारी राज्य की है और निंसन्देह यह इसके लिए उसको संविधान द्वारा विद्यायी शक्ति दी गई है। यदि कोई मुस्लिम महिला तलाक के बाद निर्वाह करने में असमर्थ है तो वह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन अपने पति से भरण पोषण प्राप्त कर सकती है और मुस्लिम व्यक्तिगत कानून एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 एवं 127 (3) में कोई अंर्तविरोध नहीं है किन्तु यदि अंतविरोध है भी तो दण्ड प्रक्रिया संहिता कुरान विधि पर वरीयता पायेगा कीजिए। क्योंकि कुरान विधि केवल मुस्लिम पर लागू होती है जबकि दण्ड

प्रक्रिया संहिता सभी पर लागू है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय को लेकर मुस्लिम समाज के कट्टर पंथी और प्रगतिवादी वर्ग द्वारा विरोध किया गया और सरकार द्वारा शरीयत की रक्षा के लिए मुस्लिम महिला (तलाक पर अधिकारों की रक्षा)अधिनियम 1986 पारित किया गया।

न्यायिक दृष्टिकोण :-

सरला मुद्गल बनाम भारत संघ [84] के बाद में कल्याणी नामक संस्था की अध्यक्ष श्रीमति सरला मुद्गल द्वारा केन्द्र सरकार के विरूद्ध लोकहित याचिका प्रस्तुत की थी। अन्य पिटीशनर मीना माथुर का अभिकथन था कि उसका विवाह 1978 में एक व्यक्ति जितेन्द्र माथुर से हुआ था और उनके 3 बच्चे थे 1988 में उनके पति ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और धर्म परिवर्तन के बाद सुनीता उर्फ फातिमा के साथ दूसरा विवाह कर लिया उससे उसे एक संतान भी पैदा हुई थी। दूसरा पिटीशन फातिमा द्वारा फाइल किया गया था जिसका यह अभिकथन था कि श्री जितेन्द्र माथुर ने पुन: हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया और अपनी पूर्व पत्नी के साथ रहने लगे। उसकी शिकायत थी कि वह अभी भी एक मुस्लिम है ओर उसका भरण-पोषण उसका पति नहीं कर रहा है और किसी भी वैयक्तिक विधि के अधीन उसे कोई संरक्षण प्राप्त नहीं है तीसरे पिटीशन में गीता रानी का कथन था कि 1988 में उसका विवाह हिन्दू रीति से प्रदीप कुमार से हुआ था। वह उसके साथ प्राय: दुर्व्यवहार किया करता था और 1951 में एक लड़की दीपा के साथ भाग गया और इस्लाम धर्म स्वीकार करने उससे विवाह कर लिया। चौथे पिटीशनर में सुष्मिता घोष के कहा कि उसका विवाह जी. जी. घोष.से हिन्दु संस्कारों के अनुसार सन् 1984 में हुआ था। किन्तु बाद में उसके पति ने कहा कि वह उसके साथ नही रहना चाहता अत: उन्हें आपसी सहमति से विवाह विच्छेद कर लेना चाहिए सन् 1992 में उसके पति ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया और विनीता गुप्ता नामक लड़की से विवाह कर लिया।

उपर्युक्त परिस्थितियों में न्यायामूर्ति श्री कुलदीप सिंह तथा श्री आर. एम. सहाय ने यह निर्णय निम्न बिन्दुओं पर दिया।

1. क्या हिन्दू विधि के अंतर्गत विवाहित कोई हिन्दु पति इस्लाम धर्म ग्रहण करके दूसरा विवाह कर सकता है ?

2. क्या पूर्व विवाह के विच्छेदन के वगैर इस प्रकार दिया गया मुस्लिम विवाह वैध होगा, जबकि उसकी पहली पत्नि हिन्दु ही रह रही हो?

3. क्या इस प्रकार मात्र वैवाहिक दायित्व से बचने के लिए और अपने हवस की पूर्ति के लिए दिये गए धर्म परिवर्तन द्वारा विवाह को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 494 में दोष सिद्ध किया जा

सकता है।

यद्यपि इन तीनों प्रश्नों का स्पष्ट तात्कालिक उत्तर न्यायालय ने विशिष्ट संदर्भ में दे तों दिया किन्तु इस प्रकार के घृणित कृत्यों के सामान्यीकरण की प्रवृत्ति रोकने के लिए न्यायालय ने कहा कि जब तक समरूप दीवानी संहिता का निर्माण नहीं होता तब तक इन अनचाही अवांछित व अनैतिक प्रवृत्तियों को लगाम दे पाना एक दुष्कर कार्य होगा।

न्यायालय ने उक्त प्रश्नों के उत्तर में कहा कि एक हिन्दू पति का अपना पहला विवाह विच्छेद किए बिना इस्लाम धर्म स्वीकार करके दूसरा विवाह हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के उपबंधों के अधीन अवैध है और पति बहु-विवाह के अपराध के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 494 के अधीन दण्डनीय भी है। हिन्दू वैयक्तिक विधि के अनुसार पति या पत्नी ने एक के इस्लाम धर्म स्वीकार करने के पश्चात् भी हिन्दू विवाह अस्तित्व में बना रहता है हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 द्वारा इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है हिन्दू विवाह स्वत: विच्छेद नहीं होता है एक हिन्दू के विवाह का विधान हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अंतर्गत निर्मित किन्हीं आधारों पर विवाह-विच्छेद की डिग्री नहीं हो जाता है।

उच्चतम न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक महत्व के निर्णय में प्रधानमंत्री से यह निवेदन किया कि वे संविधान के अनु. 44 पर नया दृष्टिकोण अपनाएं जिसमें सभी नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता के बनाने का निदेश दिया गया है और कहा कि ऐसा करना पीड़ित व्यक्ति की रक्षा तथा राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता की अभिवृद्धि दोनों दृष्टि से आवश्यक है। नयायालय ने भारत सरकार को विधि एवं न्याय मंत्रालय के सचिव के माध्यम से अगस्त 1995 तक एक शपथपत्र फाइल करने का निर्देश दिया जिसमें इस बात का उल्लेख किया जाए कि सभी नागरिकों के लिए समान सिविल संहिता बनाने के लिए क्या कदम उठाए गए हैं तथा क्या प्रयास किए गए हैं।

उक्त निर्णय में राजनीतिज्ञों को सकते में डाल दिया था और ग्रीष्म कालीन संसद की बैठक में संसदों की प्रतिक्रिया में दो प्रकार के विचार उभर कर आए-पहला तो यह कि ऐसी समान सिविल निर्मित करने से पूर्व अल्पसंख्यकों को इसके लिए मनाना होगा और दूसरा विरोधी था किन्तु सही दृष्टिकोण यह कि राष्ट्र के सामाजिक विखंडन रोकने के लिए राष्ट्रीय एकता को सशक्त करने तथा धर्म निरपेक्षता को वास्तविक रूप से क्रियान्वित करने के लिए समान सिविल संहिता का निर्माण कर ही देना चाहिए।

वास्तव में जो लोग समान सिविल संहिता को वैकल्पिक बनाने की बात करते हैं वे इसके प्रति गंभीर नहीं हैं और अल्पसंख्यकों के कुछ कटटर राजनीतिज्ञ एवं बड़बोले नेताओं को ही

अल्पसंख्यक समुदाय मानते हैं और उन्हीं के विचारों पर चलने की वकालत करते हैं , वास्तव में कोई भी विधिक बलयुक्त प्रभावी औचित्यपूर्ण संहिता वैकल्पिक हो ही नहीं सकती यदि इसे वैकल्पिक बनाया जाएगा तो जो कट्टरपंथी इसे बनाने का विरोध करते हैं वही इसे लागू करने का भी अपने समुदाय में विरोध करेंगें अतः हर दृष्टिकोण से समान सिविल संहिता केवल आदेशात्मक एवं अनुशासित होनी चाहिए।

एक तो उन तर्को का जिनके आधार पर कुछ राजनैतिज्ञ तथा कट्टरपंथी इसका विरोध करते हैं और हमारी सरकारें वोट बैंक निर्मित करने के चक्कर में उनकी मनोकामना पूर्ण करती रही हैं और यदि इस तर्क को स्वीकार किया जाता है कि समान सिविल संहिता वैकल्पिक होना चाहिए और इसे बाध्यकारी बनाने से पूर्व जनमत तैयार किया जाना चाहिए तो इसका तार्किक निष्कर्ष यह निकलता है [85] कि कोई सामाजिक सुधार विशेषकर जब किसी समुदाय विशेष के संदर्भ में करना हो तो उसमें कुछ कटटरपंथियों को ही इसका चयन करने का निषेधाधिकार होना चाहिए वास्तव में 1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1956 में हिन्दू ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम तथा 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम निर्मित ही न हो पाते यदि पंडित नेहरु ने तत्कालीन रुढ़ि व कट्टरपंथी हिन्दू जनमत को ध्यान में रखना होता । विधि को सामाजिक सुधार का एक प्रमुख यंत्र के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए विशेष कर भारत जैसे बहु भाषायी, क्षेत्रीय तथा साम्प्रदायिक तथ्य को ध्यान में रखते हुए। दूसरा मुख्यतः कौन कौन से पहलू हो सकते हैं जहाँ समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं और समान सिविल संहिता निर्मित करते समय जिन पर विशेष ध्यान की आवश्यकता हैं।

यह बड़े दुख की बात है कि 21 वीं सदी में विधिक शासन वाले, धर्म निरपेक्ष राज्य में कोई व्यक्ति बहु विवाह करते अथवा अपनी धार्मिक रूढ़ि का सहारा लेकर पत्नी के साथ क्रूरता या दुर्व्यवहार करते है और सरकार तथा न्यायालय मूकदर्शक बनी रहती है। समान सिविल संहिता का विरोध न तो संवैधानिक आधार पर न ही धार्मिक और न ही नैतिक आधार पर उचित है। आज 21 वीं सदी में ऐसा तर्क देने वाले निश्चित रूप से विज्ञान तकनीकि एवं आधुनिक सभ्यता को नकार रहे हैं स्वयं उनके समुदाय के लिए अहितकारी होने के साथ हभारतीय राष्ट्र की एकता व अखंडता पर कुठाराधात साबित होगा और हो भी रहा है। अतः समान सिविल संहिता के विरोधियों के द्वारा निम्न तर्क दिये जाते हैं -

(1) यह संविधान के अनुच्छेद 25 के अंतर्गत दिये गये उनके धार्मिक अधिकार का उल्लंघन करता है क्योंकि मुस्लिम व्यक्तिगत कानून कुरान का अभिन्न भाग है, यह पैगम्बर मुहम्मद साहब के धारित अनुदेशों का संकलन है ओर मुस्लिम विवाह, तलाक, भरण-पोषण तथा वसीयत संबंधी नियम

सभी उसी पर आधारित है।

(2) यह संविधान के अनुच्छेद 29 के अंतर्गत दिये गये अल्पसंख्यकों के अधिकारों का उल्लंघन करता है अनुच्छेद 29(1) के अंतर्गत यह व्यवस्था है कि भारत के राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के लिए अनुभाग को जिसकी अपनी विशेष भाषा लिपि या संस्कृति है उसे बनाये रखने का अधिकार होगा। अतः समान सिविल संहिता के विरोधी मुस्लिम बहुविवाह, पतियों के तलाक के निरंकुश एकाधिकार, तलाकशुदा पत्नी को भरण पोषण न देने का अधिकार तथा उत्तराधिकार में पुत्र से पुत्री को केवल आधा भाग देना अपना सांस्कृतिक अधिकार समझते हैं और इन रूढ़िवादी व्यवस्थाओं को बनाये रखना अपना आधारभूत अधिकार मानते हैं।

(3) धर्म राज्य से ऊपर हैं, अतः उनके इन धार्मिक मामलों में राज्य कानून बनकर हस्तक्षेप नहीं कर सकता ।

उपरोक्त तर्कों की युक्तियुक्तता सार्थकता एवं औपचारिकता के आधार पर यह निष्कर्ष निकलते हैं कि क्या यह सभी तर्क सारहीन एवं अनुचित हैं- जहां तक समान सिविल संहिता के अनुच्छेद 25 के अंतर्गत दिये गये मुस्लिम धार्मिकता का प्रश्न है इस संदर्भ में निम्न बाते ध्यान रखना आवश्यक हैं-

(1) धर्म एक व्यक्तिगत विषय है यद्यपि भारतीय संविधान के अंतर्गत कहीं भी धर्म को परिभाषित नहीं किया गया है किन्तु यह निर्वाध रूप से स्थापित है कि कोई धार्मिक क्रिया कलाप यदि सामाजिक एवं आर्थिक विकास में आड़े आता है तो वह धार्मिक गतिविधि मात्र धार्मिक न रहकर एक सामाजिक विषय बन जाता है।

(2) यदि मुस्लिम समाज में बहुविवाह के तलाक में पति के निरंकुश एकाधिकार तथा भरणपोषण दायित्व विहीनता को धार्मिक मान भी लिया जाये तो अनुच्छेद 25 (2) के अर्न्तगत राज्य (सरकार) उसे प्रतिबंधित कर सकती है:-

(i) भारतीय संविधान में अनुच्छेद 25 ही एक ऐसा जो लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए प्रांरभ होता है जबकि अन्य मूलभूत अधिकारों में ये शब्द प्रमुख प्रावधानों के बाद उल्लिखित किये गये हैं इससे स्पष्ट होता है कि धर्म का अबाध रूप से मानने का अधिकार केवल लोकव्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुये, सभी व्यक्तियों को अतःकरण की स्वतंत्रता का ओर धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार होगा।

(ii) अनुच्छेद 25 (2) के अन्तर्गत धर्म की अबाध स्वतंत्रता पर प्रतिबंध राज्य द्वारा लगाया जा सकता है इस प्रावधान के अनुसार इस अनुच्छेद की कोई बात किसी विद्यमान विधि के प्रवतन पर

प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य की कोई ऐसी विधि बनाने से निर्बन्धन नहीं करेगी जो-

(i) धार्मिक आचरण से संबद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनिमयन या निर्बन्धन करती है।

(ii) सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिये खोलने का उपबन्ध करती है स्पष्टत: विवाह, तलाक, भरण पोषण तथा उत्तराधिकारी इत्यादि विषय से संबद्ध आचरण इत्यादि धार्मिक हैं तो उनके प्रभाव लौकिक तो है ही साथ-ही-साथ उनके बीच आर्थिक वित्तीय तथा राजनैतिक सम्बद्धता उदाहरण के लिये बहुपत्नित्व व्यवस्था शादीशुदा महिलाओं का आर्थिक तथा वित्तीय शोषण करते हैं तथा उन्हें समाज में पुरूष वर्ग की तुलना में अत्यन्त हेय बनाती हैं यह पत्नियों को भरण पोषण से वंचित रखने तथा उत्तराधिकार में स्त्रियों को पुरूष की अपेक्षा कम भागीदारी देना उन पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कुप्रभाव डालती हैं।

इसके अतिरिक्त पुरूषों को तलाक देने के एकाधिकार का प्रभाव यह होता है कि स्त्रियाँ संरक्षण विहीन हो जाती है एवं आर्थिक रूप से वंचित होने के कारण वैश्यावृत्ति की ओर अग्रसर होने को मजबूर हो जाती हैं। मुस्लिम समाज में शिक्षितों की कमी एवं रूढ़िवादी मुस्लिमों के मतो पर राजनैतिक होने की प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दु समाज का एक प्रभावशाली वर्ग भी हिन्दू धर्म का राजनीतिकरण करके अपने को लाभान्वित कर रहा है चाहे वह विश्व हिन्दु परिषद हो या शिव सेना या बजरंग दल के उदय एवं उनकी गतिविधियाँ कहीं ना कहीं इनमें परम्परावादी मुसलमानों के मतों के राजनीतिकरण के विरूद्ध एवं प्रतिक्रिया परिलक्षित होती है।

(iii) अनुच्छेद 25 के स्पष्टीकरण 1 में दिया गया है कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिक्ख धर्म का आवश्यक अंग समझा जायेगा कहीं भी इस प्रकार का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि किसी भी समुदाय के विवाह, तलाक, अथवा अन्य सम्बद्ध विषय धर्म के भाग माने जायेगें इससे स्पष्ट होता है कि संविधान का आशय मुस्लिम बहुविवाह अथवा तलाक इत्यादि को धार्मिक विषय के रूप में स्वीकार करने का नहीं है अत: इसमें सुधार करके राज्य द्वारा इसे समाजानुरूप बनाया जा सकता है और एक समान दीवानी सहिंता के बनाने का प्रयास करने के लिए अन्य समुदायों की तरह मुस्लिम समुदाय को भी बाध्य किया जा सकता है।

(2) जहाँ तक अनुच्छेद 29 के उल्लंघन का प्रश्न है संस्कृति के तथ्य समयानुसार हर काल में एवं हर समाज में परिवर्तनशील होते हैं यद्यपि संस्कृति शब्द को न्यायिक रूप में परिभाषित नहीं किया गया परन्तु संस्कृति एक वृहत्तर शब्द हैं और इसकी परिसीमा में किसी समुदाय के लोगों का रहनसहन तथा

अचार -विचार के साथ जीवन की सम्पूर्ण गतिविधियाँ सम्मिलित हैं जिसमें नैतिकता एवं विधि भी सम्मिलित हैं। संस्कृति कभी स्थिर नहीं रहती यह सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के साथ परिवर्तनशील होती है स्वयं पैगम्बर मुहम्मद ने जिस समय इस्लाम धर्म का प्रतिपादन किया था उस समय साउदी अरेबिया एवं मध्य पूर्व में कोई विधि थी ही नहीं बल्कि वहाँ के निवासी को इस्लाम के माध्यम से सभ्य एवं सुसंस्कृत करना ही उनका लक्ष्य था और स्त्रियों के विरूद्ध हो रहे बर्बरता एवं क्रूरता को रोकने के लिए निकाय व्यवस्था प्रारंभ की । बहुविवाह प्रणाली को मान्यता देना के पीछे मजबूरी थी परन्तु जब आज मुस्लिम सम्प्रदाय एक ऐसे राष्ट्र का अभिन्न अंग है जो धर्म निरपेक्ष है तो मुस्लिम महिलाओं को उनके पतियों की रक्षा पर छोड़ना क्या संस्कृति का भाग माना जा सकता है। अत: जिस प्रकार भारत में एक समय में व्यापत बाल विवाह तथा सतीप्रथा जैसी कुरीति के विरूद्ध विधि बनाकर उसे हिन्दु संस्कृति से अलग कर दिया गया इसी प्रकार मुस्लिम समाज में भी कुरीतियाँ जिन्हें संस्कृति का भाग्य समझा जाता है दूर कर दिया जाना चाहिए।

अत: यह सुझाव होना चाहिए कि जिस प्रकार अनुच्छेद 25 में परन्तुक जोड़े गये उसी प्रकार से अनुच्छेद 29 (i) में यह परन्तुक जोड़ दिया जाना चाहिए कि ''अनुच्छेद 29 के उपबंध (1) की कोई बात किसी ऐसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगा यह राज्य को ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो सामाजिक सुधार या कल्याणकारी सुधार के लिए बनाया गया है।''

(3) मुस्लिम धर्म में राज्य का हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

किन्तु यह तर्क निम्न कारणों से औचित्यहीन हैं।

(1) लगभग सभी मुस्लिम देशों में विधि बनाकर मुस्लिम कानूनों से परिवर्तन एवं परिमार्जित करके उसे समायानुरूप एवं तर्कसंगत बनाया गया है। ट्यूनिशिया एवं तुर्की में बहुपत्नीत्व को दण्डनीय बनाया गया है। ईरान, जार्डन, पाकिस्तान से भी पति द्वारा दूसरा निकाह करने से पूर्व पंच परिषद् की अनुमति लेनी होगी। अनुमति नहीं लेता तो निकाह वैधानिक नहीं होता और बच्चे भी वैध नहीं माने जाते।

(2) स्वयं भारत में विवाह विच्छेद अधिनियम 1930 की धारा 2 के अंतर्गत मुस्लिम पारस्परिक विधि में महत्वपूर्ण परिवर्तन करके पत्नियों को भी विवाह विच्छेद एवं विवाह को शून्यीकृत घोषित कराने का अधिकार दिया जा सकता है। यद्यपि राजनैतिक कारणों से तथा मुस्लिम कट्टरपंथियों के विरोध के कारण सरकार उसका क्रियान्वयन नहीं कर पा रही है।

(3) यदि यह देश के सबसे बड़े समुदाय की धर्म विधि हिन्दू विधि को वैधानिक विधि बनाकर महिलाओं को पुरूषों की बराबर पर ला दिया। विवाह, विवाहच्छेद, भरणपोषण तथा उत्तराधिकार

सहित सभी विधियां केवल हिन्दूओं में धर्म पर आधारित थी जबकि मुस्लिम विधियाँ केवल संविदात्मक पक्ष अधिक मजबूत है न कि धार्मिक पक्ष। अत: यह तर्क कि राज्य मुस्लिम धार्मिक विधि में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। भारतीय संविधान के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप तथा संवैधानिक विधि या उचित प्रक्रिया के बिना मुस्लिम स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित करना उनके अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। बल्कि उन्हें दमन एवं क्रूरता से छुटकारा नहीं दिलाना भी राज्य द्वारा अनुच्छेद 21 का उल्लंघन हैं।

(4)जब मुस्लिम समुदाय के लोग भारतीय दण्ड संहिता सिविल प्रक्रिया संहिता तथा अन्य विधियों को स्वीकार करके मुस्लिम दण्ड व्यवस्था तथा साक्ष्य सभा व्यवस्था को त्याग चुके हैं तो व्यक्तिगत कानून से जकड़ रहे एवं भारतीय समुदाय से अलग-अलग रहकर राष्ट्रीय एकरूपता एवं सामंजस्य स्थापित करने की दिशा में उन्हें रूकावट बनने की अनुमति क्यों दी जाये ? [87]

अनुच्छेद 44 इस धारणा पर आधारित है कि सभ्य समाज में धर्म और वैयक्तिक विधि में कोई संबंध नहीं होता है। अत: समान सिविल संहिता बनाने से किसी समुदाय के सदस्यों के अनुच्छेद 25, 26 तथा 27 के अधीन प्रत्याभूत मूल अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। विवाह उत्तराधिकार और इस प्रकार के सामाजिक प्रकृति की बाते धार्मिक स्वतंत्रता से बाहर है और उन्हें विधि बनाकर विनियमित किया जा सकता है। न्यायमूर्ति श्री सहाय ने यह कहा कि समान सिविल संहिता बनाने के लिए सबसे पहला कदम यह होना चाहिए कि अल्पसंख्यकों की वैयक्तिक विधि को तर्क संगत बनाया जाय।

समान सिविल संहिता से सभी समुदायों में समानता होगी और देश की एकता ओर अखंडता भी सशक्त होगी न्यायालय का उक्त निर्णय एक अत्यन्त साहसिक कदम है आज हमारे राजनेता बोट की राजनीति में फंसकर मुस्लिम तुष्टीकरण में लगे हुए है और उनमें यह साहस नहीं है कि वे उन्हें समझायें कि उससे उनका कितना लाभ होगा। अत: समान सिविल संहिता बनाना कितना आवश्यक है सभी दल संविधान के पालन की दुहाई देते हैं किन्तु मुस्लिम समुदाय में स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए वैयक्तिक विधि का आधुनिकीकरण करने से कतराते हैं प्रधानमंत्री श्री राव ने उत्तर-प्रदेश के बरेली शहर में मुस्लिम समुदाय के उलेमाओं की सभा में यह घोषणा भी कर दी कि वे समान सिविल संहिता नहीं बनायेगें। यदि देश का प्रधानमंत्री ही न्यायालय की खिल्ली उड़ा रहा हो तो ऐसे में आम आदमी न्यायालय से निराश ही होगा।[88]

हाल ही में साहसिक निर्णयों द्वारा उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न न्यायालयों ने समान सिविल संहिता के बनाये जाने के लिए मार्ग प्रशस्त दिया है।

प्रगति बर्गीज बनाम सिरील जार्ज बर्गीज [89] के मामले में मुबंई उच्च न्यायालय ने भारतीय तलाक अधिनियम 1869 की धारा 10 को अवैध घोषित कर दिया है। इसके अंतर्गत एक ईसाई महिला को पति से तलाक के लिए जारकर्म के साथ-साथ क्रूरता और अधि व्यजन को साबित करना एक शर्त है।न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह धारा महिला के अनुच्छेद 21 में प्रदत्त मानव गरिमा से जीने के मूल अधिकार का उल्लंघन है अत: यह असंवैधानिक हैं।

नूर शावा खातून बनाम मोहम्मद कासिम[90] के वाद में अपीलार्थी नूर शाबा का विवाह प्रत्यक्षों के साथ मुस्लिम विधि के अनुसार 27 अक्टूबर 1980 को हुआ था उसके तीन बच्चे पैदा हुए जिसमें से दो लड़कियाँ और एक लड़का था बाद में पति ने उसे तलाक दे दिया विचारण न्यायालय ने उसे 200 रू. प्रति मास और बच्चों को 50 रूपया प्रति मास भरण-पोषण प्रदान दिया। उच्च न्यायलय ने निर्णय दिया कि मुस्लिम महिला एक्ट 1986 के अंतर्गत वह केवल 2 वर्ष तक भरण पोषण प्राप्त कर सकती थी। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने कहा कि एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला को अपने बच्चों के लिए जब तक कि वे बालिक नहीं हो जाते हैं पति, से भरण-पोषण पाने का अधिकार है न्यायालय ने कहा कि मुस्लिम परसनल लाँ और भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 दोनों के अधीन पति का दायित्व पूर्ण है। जबकि बच्चे तलाक शुदा पत्नि के साथ रहते हो।

इन मामलों में भी न्यायालय ने समान सिविल संहिता बनाई जाने के लिए निर्देश दिया।

धर्म निरपेक्षता पर आये अब तक के संकट :-

सन् 1976 में धर्मनिरपेक्षता का मंत्र आपातकाल के दौरान इंदिरागांधी ने संविधान की प्रस्तावना में बदलाव दिया और धर्मनिरपेक्ष शब्द जोड़ा गया तभी से धर्म निरपेक्षता बहस का मुद्दा बना है। सन् 1979 में मीनाक्षीपुरम् के दलितों का धर्म परिवर्तन करवाकर उन्हें मुसलमान बनाए जाने से तमिलनाडू में विवाद खड़ा हो गया। सन् 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद भड़के सिक्ख विरोधी दंगों से दिल्ली तथा सारे भारत में कई सिक्खों की हत्या होने से धर्मनिरपेक्षता पर संकट बताया गया और दंगाइयों के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं हुई। सन् 1985 में शाहवानों मामला में राजीवगांधी सरकार ने मुस्लिम कटटरपंथियों के दबाब में उच्चतम न्यायालय को पलटने के लिए मुस्लिम विधि में संशोधन किया। इसे अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण के तौर पर देखा जाता है सन् 1990 में पंडितों का पलायन करवाया गया जिससे कश्मीर में पी. पी. सिंह सरकार की निष्क्रियता साफ नजर आती है सन् 1992 में बाबरी मंस्जिद के विध्वंस के साथ राम जन्म भूमि आन्दोलन चरम पर पहुँच गया जिससे धर्म निरपेक्षता को चोट पहुंचती है और भयानक सांम्प्रदायिक दंगों का दौर शुरू हो गया। सन् 1998 में गुजरात में जबरन धर्म परिवर्तन के मुद्दे पर गिरजाघरों पर हमले के बाद ईसाई धर्मप्रचारकों की नृशंस हत्या कर दी गयी।

इससे धर्मनिरपेक्षता को असुरक्षित महसूस किया जाने लगा सन 2002 में गोधरा कांड के बाद हुए दंगों में लगभग 700 लोग मारे गये और सरकार मूक दर्शन बनी देखती रही 24 सितम्बर 2002 में ही गांधीनगर गुजरात के धार्मिक स्थल सवामीनारायण मंदिर पर हमला किया गया इसमें 50 लोग से अधिक मारे गये भारत के उप-प्रधानमंत्री श्री आडवानी ने कहा कि यह हमला जम्मू कश्मीर चुनावों की सफलता से लोगों का ध्यान हटाने के लिए गुजरात में साम्प्रदायिक उन्मद फैलाने के उद्देश्य से मुस्लिम आतंकवादियों द्वारा किया गया है।[91] इस प्रकार 26 वर्षो में सांप्रदायिक दंगों से लेकर धर्मपरिवर्तन, धर्मस्थलों के विध्वंस से धर्मनिरपेक्षता की भावना को गहरा आधात पहुँचता है।

भारतीय संविधान, एक धर्मनिरपेक्ष सरकार और धार्मिक स्वंतत्रता के संरक्षण का वादा करता है। केन्द्र सरकार सामान्य तौर पर इस अधिकार के निर्वहन का पालन एवं आदर करती है। परन्तु फिर भी कभी-कभी धार्मिक स्वतंत्रता पर हुये हमलों के विरूद्ध समुचित कार्यवाही नहीं करती कभी कभी स्थानीय एवं राज्य सरकारों ने इस अधिकार पर अंकुश लगाने की कोशिश की है जिस पर भी केन्द्र सरकार ने प्रभावी कदम नहीं उठाये। अत: इस प्रकार की विफलता में कानूनी कमजोरी एवं संघीय ढाँचे की कमजोरी है कानून का पालन कड़ाई से करने की एवं न्याय व्यवस्था को चुस्त-दुस्त रखने की जरुरत है। अप्रभावशाली विश्लेषण एवं एक प्रबंध भी अतिवादियों (धार्मिक) को यह प्रविधित करता है कि इस प्रकार के अपराध में सजा मिलने की संभावना न के बराबर है।[92]

भारत सभी धर्मो को बराबरी का माना गया है यहाँ तक कि सरकारी नीतियाँ भी किसी प्रकार का विभेद नहीं करती। परन्तु फिर भी हिंदु मुसलमानों के बीच एवं हिन्दु-ईसाईयों के बीच बढ़ते जातीय मतभेद भारतीय धर्मनिरपेक्षता के सामने अच्छी खासी चुनौती पेश करती है। भारत की एन. डी. ए. (सम्मिलित) सरकार ने धर्मनिरपेक्षता को बरकरार रखने की शपथ ली है।

इस सम्मिलित सरकार में सबसे बढ़ा दल भारतीय जनता पार्टी का नेतृत्व है जिसका कि संबंध हिंदु अतिवादियों (कट्टर सर्मथकों) से है जो कि हिन्दु मुस्लिम एवं हिन्दु ईसाई झगड़ों में साफ प्रतीत जान पड़ता है। इस दल की सरकार गुजरात हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश में भी है जहाँ पर इस प्रकार की जातीय विभेद की हिंसा में संबंधित सरकारी अधिकारियों का भी रूख हिन्दु अतिवादी की ही तरफ था क्योंकि इनकी सरकारों एवं अतिवादियों (हिन्दु समर्थकों) में संबंध था। और यही कारण है कि इस प्रकार के विवादों की सही तरीके से छानबीन नहीं की गयी एवं जो पकड़े भी गये उनके खिलाफ मजबूत कार्यवाही नहीं की गयी। और इस प्रकार की सरकारें धर्म विभेद करते हुये धार्मिक स्वतंत्रता पर अंकुश लगा रही है।[93]

धार्मिक स्वंतत्रता पर सरकारी प्रतिबंध किसी भी धार्मिक स्थली को राजनीतिक

उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु दुरूपयोग से बचाने के लिए धार्मिक संस्थान एक्ट का निर्माण किया गया। जिसका निर्माण विशेष तौर पर सिखों द्वारा गुरुद्वारों के दुरुपयोग से संबंधित था। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी इसी से संबंधित धार्मिक इमारतों एवं स्थलों से संबंधित बिल मार्च-अप्रैल 2000 में पारित किया। इस बिल में प्रावधान है कि किसी भी प्रकार के धार्मिक स्थल निर्माण से पहले सरकार की पूर्वानुमति जरुरी है। इस बिल के पारित करवाने वाले कहते हैं कि इस बिल का मुख्य उद्देश्य मुस्लिम समुदायों के धार्मिक स्थलों एवं उनके आतकवादियों गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए किया गया। अैार इस प्रकार से यह बिल राजनीतिक विवाद के घेरें में आ गया। और इसी प्रकार पश्चिम बंगाल ने भी बिल पारित किया कि किसी भी धार्मिक स्थल के निर्माण अथवा व्यक्तिगत धार्मिक स्थल को सामुदायिक धार्मिक स्थल में बदलने से पहले जिला मजिस्ट्रेट की पूर्वानुमति लेनी होगी।

आज के प्रचलित कानूनी व्यवस्था में विभिन्न धर्मों को उस धर्म की हैसियत के अनुसार प्रबंध किये गये हैं जैसे मुस्लिम एवं हिन्दु कानून में एक हीं प्रकार के संस्कारों एवं रीति रिवाजों जैसे, शादी विवाद तलाक, उत्तराधिकार, एवं अन्य विषयों पर अलग कानून है

कई पर्सनल व्यक्तिगत कानून स्टेटस कानून में धार्मिक मान्यताओं के तहत् स्त्री संबंधित अपराधों को बढ़ावा दिया गया है। मुस्लिम ला. के अनुसार कोई भी व्यक्ति तुरंत ही अपनी पत्नी को तलाक दे सकता है । जबकि स्त्री चाहे तो वह ऐसा नहीं कर सकती है। इस्लाम धर्म में एक व्यक्ति कई स्त्रीयों के साथ विवाह कर सकता हैं। परंतु स्त्री के ऐसा करने पर उसे सजा का हकदार माना गया है। भारतीय तलाक अधिनियम 1869 के तहत ईसाई स्त्रियाँ अपने पति के दुर्व्यवहार और परागमन करने पर तलाक मांग सकती हैं। परन्तु ईसाई पति के लिए सिर्फ परागमन ही तलाक का अधिकार दे देता है। सरकार ने अभी ईसाई तलाक अधिनियम 2002 तैयार किया है। वह बिल 1869 के भारतीय तलाक अधिनियम की जगह अधिनियमित किया गया है। जिसको विरोध का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि इसमें स्त्रियों से पक्षपात को समाप्त किया गया है। इसमें प्रावधान है कि आपसी विश्वास को तोड़ने पर 10 वर्ष तक की सजा हो सकती है इस बिल में प्रावधान है कि यदि विवाह में कोई भी एक पक्ष ईसाई धर्म का नहीं है तो चर्च में विवाह नहीं हो सकता। विरोध की वजह से मार्च-अप्रेल 2000 के सत्र में बिल लोकसभा में नहीं रखा गया। (अभी तक ऐसा कोई नियम नहीं बना है जो ईसाई नागरिकों को आने जाने से रोके। विदेशी मिशनरी अपना वीसा का नवीनीकरण करा लेती है। इस दौरान उत्तरपूर्वी प्रदेशों में इन मिशनरियों के वसने पर रोक लगा दी गयी। ऐसा राजनैतिक अस्थिरता के माहौल के तहत किया गया। सितंबर 1999 में भारत सरकार के गृह मंत्रालय में 57 वर्ष के अमेरिकन पादरी को भारत छोड़ने का आदेश दिया। यह पादरी बैंगलोर की मिशनरी में शिक्षक के तौर पर था।इसने सन् 1991 में

भारत में प्रवेश किया और रहवास अनुमति बढ़वा करके 1999 तक रहा। और अब उसके नवीनीकरण में प्रशासक द्वारा तरह तरह की बाधा डाली जा रही है क्योंकि इस प्रकार की धार्मिक संस्थाओं को विदेशी सहायता या गैर सरकारी योगदान पर रोक लगायी जा रही है ताकि इस प्रकार की स्वंतत्रता का दुरूपयोग आतकी गतिविधियों में न किया जा सके।[94]

प्रत्येक व्यक्ति को धर्म पालन की स्वतंत्रता ही धर्मनिरपेक्षता की प्रमुख मान्यता है भारतीय संविधान के अनुच्देद 25 से 28 तक में मूलअधिकार के रूप धर्म की स्वतंत्रता प्राप्त है और मूलअधिकार हमेशा से ही मानवाधिकारों के पर्याय रहे हैं धार्मिक स्वतंत्रता की नीति का ढांचा इस प्रकार तैयार किया गया है जिसमें प्रत्येक प्रकार के धर्म को समान स्वंतत्रताएँ प्राप्त हो। इसको व्यवहारिक जीवन में प्रयोग करने की अनुमति दी गयी है। इसी बात का सबसे अच्छा उदाहरण यह है कि धर्म के पंजीकरण की आवश्यकता नहीं होती।

धर्म की स्वतंत्रता में सर्वधर्म समभाव रखने का विचार अनेक धर्म मानने वाली अनेकता में एकता भारतीय जनता की धार्मिक भावनाओं का सम्मान राज्य द्वारा किया जाता है तथा उसके संरक्षण के लिए विशेष प्रावधान किये गये। लेकिन साम्प्रदायिकता को धर्म मानने की मूल धर्म के नाम पर कंलक है और जिससे हमारी धार्मिक स्वंतत्रता धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्र की एकता व अखंडता को भी खतरा हो सकता है। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के लिये आवश्यक है कि ऐसा राष्ट्र धर्म निरपेक्ष तरीके से कार्य करे न कि सांप्रदायिक तरीके से। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में उस राष्ट्र के नागरिकों के साथ धर्म या संप्रदाय के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाना चाहिये। उस राष्ट्र के नागरिकों को बिना किसी दबाब के अपने व्यक्तिगत विश्वास के आधार पर धर्म को मानने की स्वतंत्रता होनी चाहिये।

संदर्भ सूची

1. एवर्सन बनाम बोर्ड आफ एजुकेशन 1947, 330, यू . एफ
2. अहमदाबाद सेंट जेवियर कालेज बनाम गुजरात राज्य, ए. आई. आर. 1974 एस.सी. 1389
3. डाउन्स बनाम बिडबेल 1921, 182 , यू एस. 244
4. यू. एस. बनाम बनाई 1922, 322 यू. एस. 78
5. कास्टीट्यूएन्ट असेम्बली डिवेट्स VIII पृ. 114
6. राजकिशोर, अयोध्या और उससे आगे, 1995 तृतीय संस्करण पृ. 118
7. कृष्णा अय्यर, "सेक्यूलरिजम इन इंडिया कन्सेपचुअल एण्ड आपरेशन डाइमेन्शन", पृ. 10
8. कमल तालट, जनरल ऑफ स्टेट पॉलिटिक्सि एण्ड एडमीनिस्ट्रेशन अंक 1/1 नं. 1 जन-जून 1983 पृ.1-18
9. अरूण शौरी "इन दी नेम आंफ मुस्लिम पर्जनल लां, टाइम्स ऑफ इंडिया, मार्च 6 1986"
10. एस. विजय, "अवर सेक्यूलर अरेटाइज "वाल्यूम 1/1 नं. । जन -जून 1983 पृ. 19-36।
11. (1994), 3 एस. सी. सी. पृ. 1 से 115
12. (1994) 4, उम नि. प. पृ. 239,
13. (1973)2 उम नि. प. पृ. 362,ए. आई. आर. एस. सी. 1461
14. डी.जे. ड. कास्ट्रीट्यूशन आफ इंडिया, 2002 वाल्यूम त्त पृ. 1040
15. आक्सफोर्ड डिक्शनरी
16. इनसाइक्लोपीडिया बिट्रिनिका
17. इनसाइक्लोपीडिया आंफ सोशल साइंसेज
18. केशवानंद भारतीय बनाम केरल राज्य (1973)2 उप. नि.प. पृ. 362
19. इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राजनारायण ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 2299.
20. (ए. आई. आर.2002 एस. सी. 3176)
21. ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 124
22. ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 6201
23. (1988) 1, एस. सी. सी. 668
24. (1994) 6, एस. सी.1
25. ए. आई. आर. 1998 गुजरात 234
26. इस्माइल फारुकी बनाम भारत संघ (1994)6, एस. सी.।

27. ए. आई. आर. 1999 कलकत्ता

28. ए. आई. आर. 2000 एस. सी.2773

29 ए. आई. आर. 2000 एस. सी.1108

30. ए. आई.आर, 1977 एस. सी. 900

31. ए. आई.आर. 1983 एस. सी. 51

32. ए. आई. आर.1983 एस. सी.1268

33. ऐशाम्मी बनाम तमिलनाडू राज्य , ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1586, रतीलाल गांधी बनाम बंबई राज्य 1954 सु. को. रि. 1050 (1066)

34. ए. आई. आर. 1963 सु. को.16

35. वेस्ट बर्जीनियर स्टेट बोर्ड आफ एजुकेशन बनाम बर्नेट 319 यू. एस. 624

36. मोहम्मद हनीफ कुरेशी बनाम बिहार राज्य ए. आई.आर.1958 एस. सी.731

37. ए. आई.आर.1958 एस. सी.464

38. स्टेट आफ बाम्बे बनाम नराजु आम्रपाली, ए. आई. आर. 1962 बंबई 849

39. लिली थामस बनाम भारत संघ, ए.आई. आर. 2000 एस. सी. 1650

40 सेशाम्मल बनाम तमिलनाडू राज्य (1992)2 सु. को. के.।

41. ए. आई. आर. 1977, एस. सी. 908

42. (1986)एस. सी. सी. 615

43. ए. आई. आर, 1983 एस. सी. 1

44. ए. आई.आर. 1996 ए. सी.1765

45. ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1701

46. ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1765

47. ए. आई.आर. 1965 सु. को. 1175

48. ए. आई. आर. 1988 आ. प्र. 377

49. ए. आई. आर. 1955 इला. 68.

50. ए. आई. आर. 2002 पंजाब और हरि. 25

51. आश्रम अधिकार अभियान, ए. आई. आर,2002 सु. को. 554.

52. ए. आई. आर. 1962 सु. को. 853

53. एस पी. मित्तल बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1983, एस. सी. ।

54. ए. आई. आर.1966 एस. सी. 1119
55. श्री धर राव बनाम आंध्रपदेश सरकार, ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1334.
56. ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 706.
57. (1995)4 एस. सी. सी. 646
58. ए. आई.आर 1968 एस. सी. 622
59. ए. आई. आर 1962 एस. सी. 853
60. ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 150
61. ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1568
62. रतीलाल बनाम बंबई राज्य ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 388
63. दरगाह कमेटी बनाम हसन अली, ए. आई. आर. 1561 एस. सी. 1802
64. ए. आई आर. 1992 ए. पी. 310
65. ए. आई. आर. 1954 सु. को.282
66. ए. आई. आर. 1993 केरल 308
67. नारायन प्रसाद बनाम हैदराबाद राज्य ए. आई. आर. 1955 हैदराबाद 82
68. ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 400
69. ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 635
70. ए. आई . आर., 1954 एस. सी. 282
71. ए. आई. आर., 1975 दिल्ली 168.
72. ए. आई. आर. 1974 केरल, 48.
73. डी. ए. वी. कालेज बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. (1971)2 सु. को. 269
74. ए. आई. आर. 2002 सु.को. 3176
75. काठी रेनिंग बनाम सौराष्ट्र राज्य, ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 123
76. ए. आई. आर., 1953 एस. सी. 384.
77. कास्ट्रीट्यूएन्ट असेम्बली डिवेट्स भाग 7 पृ. 812-813 .
78. ए. आई.आर. 1951 मद्रास 930.
79. सेंट स्टीफन्स कालेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय (1992) 1 एस. सी. सी.
80. सविंधान निर्मात्री सभा की बहस, खंड 7 पृष्ठ 547-48
81. पूर्वोक्त

82. यूनिक कम्पीटिशन टाइम्स, विशेषांक 2000 पृ. 46.
83. ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 945
84. (1995)3 , एस. सी. सी. 635.
85. डॉ. जी. एस. पाण्डेय, भारत का संविधान प्रथम संस्करण पृ. 212
86. डॉ. बी. एन. शुक्ला, द कास्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, पंचम संस्करण पृ. 128
87. पालिटिकल एण्ड को टाइम्स जून (1995)पृ. 2-8
88. मेजर प्रायरिटिज : रिलीजन कंट्रोल हिजक दा पोलिटी, द टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, मार्च 8, 2002 पृ. 14
89. ए. आई. आर. 1997 बंबई 349
90. ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 3280
91. इंडिया टुडे (साप्ताहिक)सितम्बर 2002, पृ. 19
92. पी. एन. हकसर : फन्डामेटलिज्म एण्ड सेक्यूरिलिज्म मैन्स्ट्रीम, मार्च, 21, 1992, पृ. 20
93. द हिन्दुस्तान टाइम्स, फरवरी 22, 2001 पृ. 16
94. हूयूमन राइट्स रिपोर्ट इन इंडिया।

अध्याय -3

धर्म के विरूद्ध अपराधिक विधियां

भूमिका

भारत एक धर्म -निरपेक्ष राज्य है उसमे विभन्न धर्माबलम्बी रहते है । प्रत्येक मतावलम्बियों के साथ एक- सा व्यवहार करना अनिवार्य है क्योकि धर्म निरपेक्षता का सार इसी में निहित है । भारत में दण्ड संहिता के अतंर्गत ऐसे व्यक्तियों को दण्डित किया जा सकता है जो किसी वर्ग के धर्म का अपमान करने के आशय से उपासना के स्थल को क्षतिग्रस्त या अपवित्र करते है । प्रत्येक व्यक्ति को जहाँ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 के अतंर्गत धार्मिक मान्यताओं के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता है वहीं विधि उसको प्रतिबन्धित करती है कि वह दूसरे धर्मो का अपमान न करें। किसी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाना, धार्मिक मामलों में व्यवधान उत्पन्न करना इत्यादि भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध माने गये हैं।[1]

भारत का कोई राजधर्म नहीं है। राज्य प्रत्येक धर्म को समान आदर की दृष्टि से देखना है। मनुष्य अपने धार्मिक विश्वासो के लिये राज्य के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। धर्म मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग होता है । उसके धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करना उसके धार्मिक विश्वास को ठेस पहुंचना है ।[2] ऐसी गतिविधियों को कानून के अतंर्गत दण्डनीय बनाने के उद्देश्य से ही भारतीय दण्ड संहिता में धर्म से संबंधित अपराधों संबंधी अध्याय रखा गया। यह अध्याय इस सिद्धांत पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का अनुसरण करने का अधिकार है और यह कि कोई व्यक्ति किसी अन्य के धर्म का अपमान न करे ।[3]

धर्म के संबंध में एक ऐसा सिद्धांत है जिस पर चलना सभी सरकार के लिये वांछनीय होगा,किन्तु समाज के विघटन का जोखिम उठाये बिना भारतीय सरकार उस सिद्धांत से हट नहीं सकती है वह सिद्धांत यह है कि हर व्यक्ति का अपने धर्म को मानना सहन किया जाना चाहिये और यह कि कोई व्यक्ति किसी अन्य के धर्म का अपमान करे यह सहन नहीं किया जाना चाहिये ।[4]

भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत -

धर्म से संबंधित अपराध भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय 15 में धारा 295 से 298 तक दिये गये है जो निम्नलिखित है :-

1. लोक के किसी वर्ग की धार्मिक भावना को आघात पहुंचाना (धारा 295)
2. विद्वेषपूर्ण कार्य द्वारा किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं का अपमान करना (धारा 295 क)
3. धार्मिक सम्मेलनो में बाधा उत्पन्न करना (धारा 296)
4. कब्रिस्तान आदि में अतिचार (धारा 297)
5. धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिये शब्दों का उच्चारण करना (धारा 298)

(क) 'धारा-295':-

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 295 के अनुसार - ''जो कोई किसी उपासना-स्थल को या व्यक्तियों के किसी वर्ग द्वारा पवित्र मानी गई किसी वस्तु को नष्ट ,नुकसानग्रस्त या अपवित्र इस आशाय से करेगा कि किसी वर्ग के धर्म का तद् द्वारा अपमान किया जाये या यह सम्भाव्य जानते हुए करेगा कि व्यक्तियों का कोई वर्ग ऐसे नाश, नुकसान या अपवित्र किये जाने को अपने धर्म के प्रति अपमान समझेगा ,वह दोनों में से किसी भांति के करावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो ससकेगी या जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जायेगा। ''

इस धारा के अन्तर्गत अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित तत्वों का होना आवश्यक है :-

1. व्यक्तियों के किसी वर्ग द्वारा पवित्र मानी गयी किसी वस्तु को या किसी उपासना स्थल को नष्ट करना क्षतिग्रस्त करना या अपवित्र करना

2. ऐसा कार्य या तो व्यक्तियों के किसी वर्ग के धर्म को अपमानित करने के आशय से किया गया हो या

3. इस ज्ञान एवं विश्वास के साथ किया गया हो कि व्यक्तियों का एक विशिष्ट वर्ग ऐसे कार्य को अपने धर्म का अपमान समझे।

इस धारा का मुख्य उद्देश्य उन व्यक्तियों को दण्डित करना है जो जानवूझकर किसी की धार्मिक भावनाओ को ठेस पहुंचाते हैं या उनकें उपासना -स्थल का अपमान करते है।[5] इस धारा में प्रयुक्त 'अपवित्र' शब्द के अंतर्गत वे सारे कार्य शामिल हैं जो कि किसी उपासना स्थल एवं धार्मिक स्थल को कर्मकाण्ड की दृष्टिकोण से अपवित्र बना देते है।[6] केवल किसी पूजा स्थल को गंदा कर देना ही नहीं बल्कि इसके अंतर्गत ऐसे कार्य भी सम्मिलित है जो धार्मिक कर्मकाण्ड या अनुष्ठानो के लिए पूजा स्थल को अनउपयुक्त बना देते हैं ।[7] धार्मिक अनुष्ठानो को सम्पन्न कराने के लिए किसी पूजा स्थल को दूषित किया जाना भारतीय दण्ड संहिता की धारा 295 के अधीन उपासना स्थल को अपवित्र बनाना माना गया है।

इस धारा में प्रयुक्त 'वस्तु' शब्द से तात्पर्य कोई सजीव वस्तु से न होकर निर्जीव वस्तु से है, जैसे गिरजाधर,मस्जिद,देव-मूर्तियां इत्यादि।[8] वस्तु का मूल्यवान होना आवश्यक नहीं है कोई भी वस्तु कितनी ही छोटी अथवा कम मूल्य की क्यों न हो यदि वह किसी वर्ग विशेष के धर्मावलम्बियों द्वारा पवित्र मानी जाती है तो भले ही उसकी पूजा न भी जाती हो फिर भी ऐसी वस्तु को नष्ट करना दण्डनीय है यदि ऐसी वस्तु किसी धर्म को अपमानित करने के आशय से नष्ट की गयी है

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि इस धारा के प्रयुक्त होने के लिए निम्नलिखित तत्वो का होना आवश्यक है :-

1. विवादित स्थल पूजा स्थल हो या किसी धर्म के मानने वाले लोगो के द्वारा उसे पवित्र स्थल माना जाता हो

2. अभियुक्त ने उसे नष्ट किया हो अथवा अपवित्र किया हो।

3. उक्त कार्य करने के पीछे अभियुक्त का आशय उस धर्म के मानने वाले लोगो को अपमानित करना हो।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि मुसलमानों द्वारा किसी ऐसे स्थान पर गौवध जो किसी ऐसी सड़क से दृष्टिगत होता है जिस पर हिन्दुओं का आवागमन होता है इस धारा के अधीन दण्डनीय नही है। इसी प्रकार एक बैल, जो धार्मिक प्रथा के अनुसार हिन्दुओं के धार्मिक समारोह के अवसर पर समर्पित करते हुये खुला छोड़ दिया गया ,को कुछ मुसलमानों द्वारा रात्रिकाल में गुप्त रूप से ऐसे व्यक्तियों की उपस्थिति में जिसमें मुसलमानों के अलावा और कोई न था , मार दिया गया। न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस धारा के अधीन कोई अपराध नही गठित हुआ था।[9] इस धारा के अधीन किसी 'वर्ग' का अभिप्राय किसी धर्म के व्यक्तियों से है भले ही वे संख्या में न्यून हों ,ऐसे व्यक्तियों को 'वर्ग' की संज्ञा प्रदान की जा सकती हैं।[10]

एस.वीरभद्रम बनाम ई.व्ही.रामास्वामी नायकर[11] के मामले में अभियुक्त ऐसे पंथ का नेता था जो धार्मिक सुधार के रूप में मूर्ति पूजा के विरूद्ध थे । अभियुक्त लेखो का प्रकाशन और भाषण आदि से अपने विचारों का प्रचार करता था। ऐसे ही एक लोक भाषण के दौरान लोक की आँखो के सामने अभियुक्त ने गणेश भगवान की मूर्ति तोड़ दी। इस धारा के अधीन उसे दोषसिद्ध करते हुऐ उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि ऐसे मामलो में वस्तु के वास्तविक आर्थिक मूल्य की तुच्छता का कोई महत्व नहीं है और यह भी सदा आवश्यक नही है कि उस वस्तु की वास्तव में पूजा की गई हो। इस धारा का उद्देश्य लागो को विभिन्न अन्य धार्मिक विश्वासो के व्यक्तियो की अतिसंवेदनशीलता का सम्मान करवाना है।

जोसेफ वैन डिसूजा बनाम राज्य[12] के मामले में किसी स्थान के पट्टाकर्त्ता उस स्थान के पट्टे का किसी मंदिर के रूप में उपासना के लिये उपयोग कर रहे थे। केरल उच्च न्यायालय ने यह अधिनिर्धारित किया कि इस धारा के अधीन वह स्थान उपासना का स्थान नहीं था यधपि पट्टाधारी उसका उपयोग उपासना के लिये कर रहे थे और उन्होंने अन्य व्यक्तियों को भी ऐसा करने की अनुमति दे रखी थी क्योकि पट्टाकर्त्ता के सम्पत्ति के अधिकार पर किसी भी प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला

जा सकता है।

वेचान झा बनाम एम्परर[13] के बाद में भू-स्वामी की अनुमति के बिना कृषि भूमि पर बनी हुई झोपड़ी का मस्जिद के रूप में उपयोग किया जा रहा था। पटना उच्च न्यायालय ने ऐसे किसी भी प्रयत्न की निदां की जिसके द्वारा एक स्थान को धारा 295 के अंतर्गत उपासना के स्थान के रूप में बदलने का प्रयास किया जा रहा था।

धारा 295 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध दण्ड प्रकिया संहिता 1973 के अतंर्गत संज्ञेय, अजमानतीय तथा अशमनीय अपराध है। इस अपराध का विचारण किसी मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाता है। संज्ञेय अपराध होने के कारण पुलिस इस धारा के अतंर्गत अपराध करने पर किसी भी व्यक्ति को बिना वारंट गिरफ्तार कर सकती है। गंभीर प्रकृति का अपराध होने के कारण यह अजमानतीय अपराध है। अशमनीय अपराध होने के कारण इसमे समझौते (पीड़त पक्ष और अभियुक्त) के द्वारा मामने के समाप्त नही किया जा सकता है।

इस धारा के अधीन लगाये जाने वाले आरोप का प्रारूप निम्नवत् होगा -

मैं........(मजिस्ट्रेट का नाम, पद एवं स्थान आदि) आप.........(यहां पर अभियुक्त का पूर्ण विवरण दें) पर निम्नवत् आरोप लगाता हूँ कि,

आपने......स्थान पर दिनांक........ को या उसके लगभग उपासना स्थल को, व्यक्तियों के वर्ग द्वारा पवित्र मानी गई.......वस्तु को नष्ट नुकसानग्रस्त अपवित्र उस आशय से किया कि....... वर्ग के धर्म का इसके द्वारा अपमान किया जाय यह संभाव्य जानते हुऐ किया कि व्यक्तियों का.......वर्ग ऐसे नाश, नुकसान, अपवित्र, किये जानें को अपने धर्म के प्रति अपमान समझे तद्द्वारा आपने एक ऐसा कार्य किया जो कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 295 कि अधीन एक दण्डनीय अपराध है तथा इसके संज्ञान की अधिकारिता न्यायालय को प्राप्त है।

अत: मैं आदेश देता हूँ कि आपका उक्त आरोप के संदर्भ में पूर्ण विचारण इस न्यायालय द्वारा किया जावें।

दिनांक...... मजिस्ट्रेट का हस्ताक्षर एवं सील

(ख) 'धारा-295-क':-

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 295 -क विमर्शित और विद्वेषपूर्ण कार्य जो किसी वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करके उसकी धार्मिक भावनाओं को आहत करने के आशय से किए गए हों इस धारा के अधीन दंडनीय अपराध हैं। इस धारा को आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम, 1927 द्वारा जोड़ा गया था। इस धारा के अनुसार:-

"जो कोई भारत के नागरिको के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओ को आहत करने के विमर्शित और विद्वेषपूर्ण आशय से उस वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासो का अपमान उच्चारित या लिखित शब्दो द्वारा या संकेतो द्वारा या अन्यथा करेगा या करने का प्रयास करेगा वह दोनो में से किसी भाँति के कारावास से जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनो से दण्डित किया जायगा"

इस धारा के अंतर्गत अपराध गठित होने के लिये आवश्यक है कि का मुख्य सार किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को आहत अथवा अपमानित करने के आशय से उच्चारित शब्दो लिखित शब्दो संकेतो द्वारा या अन्यथा किया जाने या किये जाने का प्रयत्न किया गया । इस धारा के अन्तर्गत दायित्व हेतु जो कसौटी लागू की जानी चाहिए वह किसी सामान्य या अतिसंवेदनशील व्यक्ति की नही बल्कि साधारण समझ और प्रज्ञा रखने वाले व्यक्ति की होनी चाहिये। विद्वेष धारा 295 क के महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है जिसे उचित साधन द्वारा स्थापित किया जाना आवशयक है यदि रूचिकर कार्य बिना किसी विधिपूर्ण प्रतिहेतू के स्वेच्छा किया गया है तो विद्वेष होना उपधारित किया जा सकेगा।

धारा 295 क अधिकारातीत तथा असंवैधानिक नहीं है। यह धारा संविधान के अनुच्छेद 19(2)के संरक्षण के अंतर्गत आती है क्योकि यह अनुच्छेद 19(1)के अधीन वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अनुच्छेद 19(2) के अन्तर्गत युम्तियुक्त निर्बन्धन किये जा सकते है। धारा 295 क एक युक्तियुक्त निर्बन्धन होने के कारण असंवैधानिक एवम् संविधान का अधिकारातीत नहीं है।

संविधान के अनुच्छेद 25 के अधीन धर्म को मानने उसका आचरण और प्रचार करने का मूल अधिकार अभिव्यक्त रूप से सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अध्यधीन है। अत: अनुच्छेद 25 के अधीन धार्मिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार होने के कारण से सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए और समुदाय के सदाचार और स्वास्थय की सुरक्षा के लिये विधान बनाने और कार्य करने का राज्य का प्राधिकार समाप्त नहीं हो जाता है। न्यायालयो द्वारा इस प्रश्न की परीक्षा की जा सकती है कि कोई विशिष्ट परिपाटी किसी धार्मिक सम्प्रदाय द्वारा माने जाने वाले धर्म का भाग है अथवा नहीं।[14]

उच्चतम न्यायालय ने रामजी लाल मोदी बनाम राज्य[15] में धारा 295 क को संवैधानिक अभिनिर्धारित किया इस मामले में गौरक्षक नामक पत्रिका के याची मुद्रक और प्रकाशन को आपत्तिजनक लेख प्रकाशित करने के लिए इस धारा के अधीन दंडित किया गया था। उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिर्निधारित किया गया कि धारा 295 क अनुच्छेद 19(1)क के अंतर्गत वाक् और अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का उल्लधंन नहीं करती क्योकि यह वाक् एवं अभिव्यक्ति के अधिकार पर युक्तियुक्त

निर्बन्धन लगाती है। और अनुच्छेद 25 व 26 लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अध्यधीन होने के कारण विधि द्वारा युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित किए जा सकते हैं।[16] धार्मिक संस्थाओं और विश्वासों के सुरक्षा के सिद्धांत को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 153 क और 295 क में कुछ सीमा तक सुरक्षित रखा गया है

वोवमैन बनाम सेकुलर सोसाइटी लिमिटेड[17] वाले मामले में न्यायालय ने यह संकेत दिया है कि यदि धारा 153 क के आधीन अपराध के लिए आशय का प्रश्न तात्विक भी हो तो भी ऐसा आशय लिखे गये या बोले गये शब्दों से लेना चाहिये और यह भी निश्चायक होगा तथा अभियोजन पक्ष के लिये और आगे यह साबित करना आवश्यक नहीं होगा कि ऐसा आशय ऐसे शब्दों के प्रयोग में अंतनिर्हित था। न्यायालय का मत था कि आशय की प्रमुखता पुस्तक की भाषा से और उन परिस्थितियों से प्राप्त करना चाहिए जिनमें वह प्रकाशित की गई थी यदि पुस्तक का स्वरूप ऐसा है कि वह शत्रुता और घृणा की भावना को जन्म देने और बढ़ावा देने के लिये प्रकाशित है तो यह उपधारणा करनी चाहिए कि लेखक का आशय यह था जिससे उसके कार्य द्वारा बढ़ावा दिया जाना संभाव्य था। अंत: यह निष्कर्ष विधिसम्मत होगा कि जहां प्रयुक्त शब्द प्रत्यक्षत: निदांत्मक और संतापकारी हो, तो धारा 153 क और धारा 295 क के अधीन अपेक्षित आशय की उपधारणा कर लेनी चाहिये

दूसरों के धार्मिक विश्वासों की आलोचना के सिद्धांत के अतंगर्त निकृष्ट और गाली-गलौज की भाषा के प्रयोग की स्वतंत्रता नहीं है। दूसरों के धार्मिक विश्वासों का मजाक या खिल्ली उड़ाना उन लोगो के क्रोध और घृणा को भड़काने के समान है जो उसे अपने धर्म के रूप में स्वीकार करते है।[18]

कोई भी व्यक्ति धार्मिक विषयों के सम्बन्ध में स्वेच्छाचारी भाषण और उपदेश देने के लिये स्वतंत्र है, किन्तु जब हम इस बात पर विचार करते है कि क्या उसने मर्यादाओं का उल्लंघन किया है तो हमे उस स्थान को जहां वह भाषण देता है और उन व्यक्तियों को जिनके समक्ष उसमें भाषण दिया है, ध्यान में रखना नहीं भूलना चाहिये। कोई व्यक्ति किसी भी सार्वजनिक स्थान पर मनमाना कहने के लिये स्वतंत्र नहीं है जहां किसी ऐसे राहगीर जो यह जानते हुए कि वह क्या कहने वाला है उसे स्वेच्छया सुनने के लिये नहीं भी जा सकते है अथवा संयोगवश उसके शब्द सुनाई पड़ सकते है या जहां बच्चे भी उपस्थित हो सकते हैं। कोई भी व्यक्ति ऐसे स्थानों पर ऐसे विषयों के संबंध में जो देश के अधिकाशं लोगों के लिए पवित्र है भद्दे और उपहासात्मक शब्दों का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। उसे तर्को का प्रयोग करने की स्वतंत्र है।

जहां पर अभियुक्त ने रोमन कैथालिक चर्च की आलोचना करते हुए नीचतापूर्ण शब्द

व्यक्त किये हो तो उस दशा में यह अनुमान किया जा सकता है कि अभियुक्त का विद्वेसपूर्ण आशय रोमन कैथोलिक चर्च के अनुयायियों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पंहुचाने का था। और यदि बिना किसी विधिक औचित्य के किसी व्यक्ति को क्षति पहुँचाने वाला कार्य किया जाता है तो वहां भी विद्वेष की उपधारणा की जायेगी।[19] यह धारा यह नहीं कहती है कि विशिष्ट व्यक्तियों के विरूद्ध वैमनष्य या दुश्मनी को साबित किया जाना आवश्यक है यदि किसी नाटक के दृश्य क्रिश्चियन समुदाय के लोगों की धार्मिक भावनाओं को आघात पहुचाते हैं तो इस धारा के अधीन अपराध माना जायेगा, इस बात पर विचार किये कि नाटक में दिखाई गयी बातें तर्कसंगत या विवेकपूर्ण है या अविवेकपूर्ण। **नंद किशोर सिंह बनाम राज्य**[20] के वाद में लेखक ने अपनी पुस्तक विश्व इतिहास में दो उत्कृष्ट पुस्तकों एच.जी.वेल्स की 'आउटलाइन्स ऑफ हिस्टरी' और डेविस की 'हिस्टरी आंफ वर्ल्ड सिविलाइजेन्शन' से पैगम्बर मोहम्मद के जीवन और चरित्र से संबंधित कुछ लघु भाग उद्धरित किये जिन्हें घृणास्पद कहा गया। लेखक ने यह भी लिखा कि वह उस मत से सहमत नहीं है और उसने पैगम्बर साहब की प्रशंसा करते हुए इस विषय पर अपने स्वंय का मत भी किया पटना उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यहाँ धारा 295 क लागू नहीं होगी क्योंकि यह शब्द धार्मिक भावनाओं को आघात नहीं पहुँचाते हैं।

चंदनमल चोपड़ा बनाम राज्य[21] के वाद में दण्ड प्रकिया संहिता की धारा 95 के अंतर्गत पश्चिम बंगाल राज्य में कुरान की सभी प्रतियाँ के समपहरण की प्रार्थना की थी। कलकत्ता उच्चन्यायालय ने इसे नामंमूजर करते हुए कहा कि कुरान एक पवित्र धार्मिक ग्रंथ है यह किसी की भी धार्मिक भावनाओं को ठेस नहीं पहुचंती है यह पुस्तक व्यक्तियों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहूँचाती है या नहीं इसके निर्धारण के लिये इस पुस्तक कों सम्पूर्ण रूप से पढ़ना होगा और यहां वहां से कुछ भागो को संदर्भ के रूप में पढ़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती। कुरान के समपहरण का आदेश संविधान की उद्देशिका और अनुच्छेद 25 एवं भारतीय दण्ड संहिता की धारा 295 क के भी प्रतिकूल होगा।

कोई न्यायालय भारतीय दण्ड संहिता की धारा 295 क के अधीन दडंनीय अपराध का संज्ञान तब तक नहीं कर सकता है जब तक दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 196(1)के अंतर्गत संबंधित सरकार (केन्द्र सरकार या राज्य सरकार)की पूर्व स्वीकृति न पाप्त कर ली गयी हो। इस धारा की वैधानिकता को संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी गई क्योंकि धारा 298 के अंतर्गत किसी अपराध के संज्ञान हेतु पूर्व अनुमति नहीं ली जाती है।[22] न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह वर्गीकरण विवेकपूर्ण है क्योंकि धारा 295 क के अधीन अपराध धारा 298 के अधीन अपराध से कहीं अधिक गंभीर है।[23]

मनोज राय तथा अन्य बनाम मध्यप्रदेश राज्य[24] के मामले में राज्य सरकार द्वारा दण्ड

प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 196 (1) के अनुसार अपीलार्थी के विरूध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 295-क के अधीन अभियोजन स्वीकृत करने की पूर्व-स्वीकृति प्रदान नहीं की थी। अत: उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थी की अपील स्वीकार करते हुए उसके विरूद्ध कार्यवाहियों को अभिखण्डित कर दिया।

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के अंतर्गत इस धारा के अंतर्गत गठित अपराध संज्ञेय, अजमानतीय और अशमनीय है। ऐसे अपराधों का विचारण प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाता है। इस धारा के अधीन लगाये जाने वाले आरोप का प्रारूप निम्नवत होगा :-

मैं......(मजिस्ट्रेट का नाम, पद, एवं स्थान आदि)आप....(यहाँ पर अभियुक्त का पूर्ण विवरण दें)पर निम्नवत आरोप लगाता हूँ कि,

आपने..... स्थान पर दिनांक .....को या उसके लगभग भारत के नागरिको के वर्ग की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के विर्मशित और विद्वेषपूर्ण आशय से उस वर्ग के धार्मिक विश्वासो का अपमान उच्चारित, लिखित शब्दो .....द्वारा ...... संकेतो द्वारा दृश्य रूपणो द्वारा ....अन्यथा किया/करने का प्रयत्न किया तद्द्वारा आपने एक ऐसा कार्य किया जो कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 295 -क के आधीन एक दण्डनीय अपराध है तथा इसके संज्ञान की अधिकारिता इस न्यायालय को प्राप्त है

अत: में आदेश देता हूँ कि आपका उक्त आरोप के संदर्भ में पूर्ण विचारण इस न्यायालय द्वारा किया जावे

दिनांक .... (मजिस्ट्रेट का हस्ताक्षर एंव सील)

(ग) 'धारा-296' :-

भारतीय दंड संहिता की धारा 296 के अनुसार - "जो कोई धार्मिक उपासना या धार्मिक संस्कारों में वैधरूप से लगे हुये किसी जमाव में स्वेच्छया विध्न कारित करेगा वह दोनो में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्मानि से या दोनो से दण्डित किया जायेगा।"

इस धारा के निम्न लिखित आवश्यक तत्व है :-

1. स्वेंच्छा से विध्न कारित करना,

2. ऐसा विध्न किसी ऐसे जमाव में किया गया हो जो कि धार्मिक उपासना या धार्मिक संस्कार में लगा था,

3. यह जमाव इस प्रकार की उपासना या संस्कार में वैधरूप से लगा था।

जहां पर कई व्यक्ति नमाज पढ़ने के लिए एकत्र हुऐ है और यदि कोई गैर मुसलमान मस्जिद में एकत्रित जमाव की इबादत में विद्वेष पूर्वक विध्न डालता है तो वह इस धारा के आधीन दण्डंनीय होगा।[25] और मुसलमन भी ऐसा करता है तो वह भी दण्डनीय होगा [26]

इस धारा के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि अभियुक्त के द्वारा स्वेच्छया से विध्न कारित किया गया हो और वह जमाव धार्मिक उपासना या धार्मिक संस्कारो में वैधरूप से या सद्‌भाव पूर्वक लगा हुआ होना चाहिये। [27]

प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय के लोगो को सड़क पर से गाते-बजाते हुए धार्मिक जलूस निकालने का अधिकार है परन्तु इससे मार्ग पर आने-जाने वाले लोगो के लिए बाधा नहीं पहुँचनी चाहिये एवम् परिवहन नियमो का उल्लंघन नहीं होना चाहिये। अत: किसी मस्जिद के सामने से गैर-मुस्लिम सम्प्रदाय के लागो द्वारा गाते बजाते हुए धार्मिक जुलूस निकालते हुए ले जाना अपने आप में धारा 296 के अतंर्गत अपराध नहीं माना जायेगा जब तक कि वह शांतिपूर्वक तरीके से मस्जिद के अंदर उपासना करने वाले व्यक्तियों को बाधा पहुँचाए बिना निकाला जा रहा है। [28]

इस धारा के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि धार्मिक उपासना या कार्यक्रम में शामिल व्यक्तियो का जमाव सद्‌भावना पूर्वक एकत्रित होकर धार्मिक कार्य में लगा हो। **जयपाल गिर बनाम धरमपाल**[29] के वाद में धरमपाल नामक वौद्ध भिक्षु गया के बौद्ध मठ पर कब्जा जमाना चाहता था जो कि तत्समय शैव मंहतो के अधिपत्य में था। इस हेतु वह जापान से भगवान बुद्ध की एक कलात्मक मूर्ति लायाऔर उसे लेकर वह गया के बौद्ध मंदिर में प्रविष्ट हुआ। शैव मंहतो ने उसे मंदिर से निकाल बाहर किया। इस पर धरमपाल ने महंतो के विरूध धारा 296 के अंतर्गत अभियोजन चालाया, परन्तु न्यायालय ने अभियुक्त को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया कि तत्समय परिवादी कोई धार्मिक कार्य संपादित नही कर रहा था बल्कि उसका उद्‌देश्य मठ पर अपना अधिकार जमाना था जो सद्‌भावपूर्ण नहीं था।

मोहम्मद खान बनाम इम्परर [30] के वाद में न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि विध्न का अर्थ आवश्यक रूप से किसी धार्मिक सेवा को रोकना नहीं है। इस धारा का उद्देश्य शांतिपूर्ण उपासना में विध्न कारित करने से है इसलिए ऐसा कार्य जो उपासना को रोकता है विध्न कहा जायगा।

इस धारा के अधीन कारित अपराध दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत संज्ञेय जमानतीय और शमनीय अपराध है। इसका विचारण मजिट्रेट द्वारा किया जाता है।

इस धारा के अधीन लगाये जाने वाले आरोप का प्रारूप निम्नवत् होगा :-

मैं ......(मजिस्ट्रेट का नाम पद एवं स्थान आदि)आप ....(यहां पर अभियुक्त

का पूर्ण विवरण दें) आप पर निम्नवत् आरोप लगाता हूँ कि

आपने स्थान पर ......दिनांक को या उसके लगभग ....भारत के नागरिकों के वर्ग की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के लिये विर्मशित और विद्वेषपूर्ण आशय से उस वर्ग के धर्म धार्मिक विश्वासो का अपमान उच्चारित, लिखित शब्दों .....द्वारा ....संकेतो द्वारा....दृश्य रूपणों द्वारा ......अन्यथा किया / करने का प्रयत्न किया तद्द्वारा आपने एक ऐसा कार्य किया जो कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 296 क के अधीन एक दण्डनीय अपराध है तथा इसके संज्ञान की अधिकारिता इस न्यायालय को प्राप्त है

अत: मै आदेश देता हूँ कि आपका उक्त आरोप के संदर्भ में पूर्ण विचारण इस न्यायालय द्वारा किया जाये।

दिनांक .... मजिट्रेट का हस्ताक्षर एवं सील

(द) धारा - 297:-

कब्रिस्तानों आदि में अतिचार करना दंडनीय अपराध है। धारा 297 के अनसार अनुसार "किसी उपासना - स्थान में या किसी कब्रिस्तान पर या अन्त्येष्टि क्रियाओं के लिए या मृतकों के अवशेषो के लिए निक्षेप स्थान के रूप में पृथक रखे गए निजी स्थान में जो कोई इस आशय से अतिचार या किसी मानव-शव की अवहेलना या अन्त्येष्टि संस्कारों के लिए एकत्रित किन्ही व्यक्तियों को विघ्न कारित करेगा कि किसी व्यक्ति की भावनाओ को ठेस पहुँचेगी या किसी व्यक्ति के धर्म का अपमान होगा वह एक वर्ष तक के सादा या कठिन कारावास से या जुर्मानि से या दोनो से दंडित किया जायगा"

इस धारा के अतंगर्त कब्रिस्तानों में अतिचार करने को दण्डनीय बनाने के पीछे उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार से हिन्दू धर्म के अनुसार अन्त्येष्टि संस्कार को सोलह अनिवार्य पवित्र संस्कारो में से एक माना गया है ठीक उसी प्रकार से मुसलमानों में भी कब्रिस्तान को एक पवित्र स्थान तथा उपासना स्थल माना जाता है। कई पीर फकीरो की कब्रो को दरगाह के रूप में उपासना स्थल के रूप में प्रयोग किया जाता है जो एक धार्मिक विश्वास को प्रकट करता है। मोहर्रम के जलूस को इस धारा के अन्तर्गत अन्तेष्टि संस्कार नहीं कहा जा सकता है [31]

इस धारा के अन्तर्गत अपराध हेतु किसी मानव शव की अवहेलना किया जाना या अन्त्येष्टि स्स्कारों के लिए एकत्रित किन्ही व्यक्तियों को विघ्न कारित किया जाना आवश्यक है। ऐसा करते समय या तो अभियुक्त का आशय किसी व्यक्ति की भावनाओं का ठेस पहुँचाना या किसी व्यक्ति के धर्म का अपमान करना होना आवश्यक है या उसे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि ऐसा करने से इस बात की संभावना है कि किसी व्यक्ति की भावनाओं को ठेस पहुँचेगी या किसी व्यक्ति के धर्म का

अपमान होगा।

रत्ना मुदाली बनाम इम्परर[32] के वाद में न्यायालय द्वारा अभिनिर्धानित किया गया कि किसी मस्जिद के परिसर के भीतर किसी हिन्दु द्वारा अवैध मैथुन करना या किसी मुसलमान फकीर की मजार के परिसर के भीतर मैथुन करना इस धारा के आधीन दण्डनीय अपराध है । अन्त्येष्टि के क्रिया कर्म में बाधा पहुँचाना धारा 297 के अंतर्गत अपराध है। तथपि मरणोन्तर शव परीक्षा के लिए मृतक के शरीर की चीड़-फाड़ इस धारा की परिधि में नहीं आएगी।[33] इस धारा के अंतर्गत गठित अपराध को दण्ड प्रक्रिया संहिता में संज्ञेय तथा अशमनीय बनाया गया है जबकि यह जमानतीय अपराध है और यह किसी मजिस्ट्रेड द्वारा विचारणीय है।

इस धारा के अधीन अपराध के लिये लगाये जाने वाले आरोप का प्रारूप निम्नवत होगा :-

मैं .. ..(मजिस्ट्रेट का नाम, पद एवं स्थान आदि)आप ....(यहां पर अभियुक्त का पूर्ण विवरण दें) आप पर निम्नवत् आरोप लगाता हूँ कि

आपने स्थान....... पर दिनांक ....को या उसके लगभग.......उपासना स्थल में कब्रिस्तान पर अन्त्येष्ट क्रियाओ के लिए मृतकों के लिए निरपेक्ष स्थान के रूप मे पृथक रखे हुऐ या रखे गये ...... स्थान में अतिचार किया / मानव शव की अवहेलना / अन्त्येष्टि संस्कारो के लिए एकत्रित किन्ही व्यक्तियों को विध्न इस आशय से कारित किया कि आप ....व्यक्ति की भावनाओं को ठेस पहुँचाये / ठेस पहुँचे ...... व्यक्ति के धर्म का अपमान हो इस प्रकार आपने एक ऐसा कार्य किया जो कि भारतीय दंड संहिता की धारा 297 के अधीन एक दण्डनीय अपराध है तथा इसके संज्ञान की अधिकारिता इस न्यायालय को प्राप्त है।

अत: मैं आदेश देता हूँ कि आपका उक्त आरोप के संदर्भ में पूर्व विचारण इस न्यायालय द्वारा किया जावे।

दिनांक .... मजिस्ट्रेट का नाम पद एवं सील

(घ) धारा -298:-

धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के विमर्शित आशय से शब्द उच्चारित करना आदि धारा 298 के आधीन अपराध है। धारा 298 के अनुसार "जो कोई किसी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के विमर्शित आशय से उसकी श्रवणगोचरता मे कोई शब्द उच्चारित करेगा या कोई ध्वनि करेगा या उसकी दृष्टिगोचरता मे कोई अंगविक्षेप करेगा या कोई वस्तु रखेगा वह एक वर्ष तक के सादा या कठिन कारावास से या जुर्माने से या दोना से दंडित किया जायगा।"

यह धारा तभी लागू होती हग्न जब किसी धर्म को मानने वाले लोगो की धार्मिक

भावनाओं को आहत करने के लिए विद्वेष पूर्ण रीति से कोई बात कही अथवा बोली जाती है। यह धारा विविध धार्मिक विषयो पर स्वस्थ चर्चा की अनुमति प्रदान करती है परन्तु इस धारा के अन्तर्गत चर्चा के बहाने किसी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के विर्मशित आशय की अनुमति नही दी जा सकती है।

यह धारा शब्द के उच्चारित किये जाने या ध्वनि किए जाने या अंगविक्षेप किये जाने या वस्तु रखे जाने के द्वारा श्रवणगोचरता या दृष्टिगोचरता में किये गए कार्यो को सम्मिलित करके अपने अधीन दायित्व की सीमा में विस्तार करती है। इस धारा के अन्तर्गत अभियुक्त के दायित्व के लिए किसी भी प्रकार का ज्ञान या जानकारी महत्वपूर्ण नहीं है। सभी परिस्थितियों में इस उपवंध में उल्लिखित आशय के आधार पर ही अभियुक्त का दायित्व होगा। आशय तब विमर्शित होता है जब वह अचानक आवेग के आधार पर न होकर पूर्व चिन्तित हो। धारा 298 ऐसे मौखिक शब्दो से संबंधित है जो किसी व्यक्ति की उपस्थिति में उसकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के आशय से बोले जाते है। इसका संबंध किसी ऐसे लेख से नही है जो किसी सप्ताहिक में प्रकाशित किया गया। [34]

धारा 298 का उद्देश्य धार्मिक विचार विमर्श के लिए उचित छूट अनुज्ञात करने के साथ-साथ किसी धर्म के मानने वालों को ऐसे विचार-विर्मश के बहाने से उन बातों का साशय अपमान निवारित करना हैं जिसे अन्य लोग पवित्र समझते हैं। किसी व्यक्ति को विमर्शित आशाय से अपने पड़ोसियों की धार्मिक भावनाओं को शब्दों ,अंग-विशेष या प्रदर्शनो द्वारा ठेस पहुँचाने पर न्यायमुक्त नहीं किया जा सकता है। किसी विवाद की गर्मागर्मी में कोई तीखी बात बोल देना या किसी व्यक्ति द्वारा ऐसा तर्क पेश किया जाना है जो किसी भिन्न धर्म के मानने वालों को अपमानित या क्षुब्ध करने के प्रयोजन से नहीं बरन् सद्भावपूर्वक अपने धर्म को समर्थन देने के प्रयोजन से दिया गया है इस धारा के अन्तर्गत नहीं आता है। [35]

इस धारा के आधीन अपराध अंसज्ञेय जमानतीय संक्षिप्ततः विचारणीय है तथा उस व्यक्ति जिसकी धार्मिक भावनाओ को ठेस पहुँचाना आशयित है उसके द्वारा शमनीय है किसी और मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय है।

इस धारा के अधीन अपराध के लिये लगाये जाने वाले आरोप का प्रारूप निम्नवत होगा :-

मैं ......(मजिस्ट्रेट का नाम, पद एवं स्थान आदि)आप ....(यहां पर अभियुक्त का पूर्ण विवरण दें) आप पर निम्नवत् आरोप लगाता हूँ कि

आपने स्थान ...... पर दिनांक ....को या उसके लगभग ठेस पहुँचाने के विमर्शित आशय से उसकी श्रवणगोचरता से .... शब्द उच्चारित किये ....ध्वनि की उसकी दृष्टिगोचरता

में ...... अंग विक्षेप किया ....वस्तु रखी एत्तद्वारा आपने एक ऐसा कार्य किया जो कि भारतीय दंड संहिता की धारा 298 के आधीन एक दण्डनीय अपराध है तथा इसके संज्ञान की अधिकारिता इस न्यायालय को प्राप्त है।

अत: मै आदेश देता हूँ कि आपका उक्त आरोप के संदर्भ में पूर्ण विचारण इस न्यायालय द्वारा किया जाये।

दिनांक .... मजिस्ट्रेट हस्ताक्षर एंव सील

(ङ) धारा 153 (क) :-

भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 153 (क) धर्म ,मूलवंश , जन्मस्थान निवास स्थान, भाषा इत्यादि के आधारो पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता का संप्रवर्तन और सौह्र्द्र बने रहने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्य करने को दंडित करती है

धारा 153 की उपधारा 1(क) बोले गए या लिखे गए शब्दो या संकेतों या दृश्यरूपण द्वारा या अन्यथा विभन्न धार्मिक मूलवंशीय या भाषायी या प्रादेशिक समूहों ,जातियों या समुदायो के बीच असौह्राद्र अथवा शत्रुता, घृणा या वैमनस्य की भावनाएं,धर्म मूलवंश,जन्मस्थान ,निवास स्थान ,भाषा,जाति या समुदाय के आधारों पर या किसी अन्य आधार पर संप्रवर्तित करने या संप्रवर्तित करने के प्रयत्न को दंडित करती है

धारा 153 की उपधारा 1 (ख)कोई ऐसा कार्य करने जो विभिन्न धार्मिक मूलवंशीय,भाषायी या प्रादेशिक समूहों या जातियों या समुदायों के बीच सौह्र्द्र बने रहने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला हो और जो लोक प्रंशाति में विध्न डालने वाला हो या विध्न पड़ने की संभावना हो को दंडित करती है।

धारा 153 की उपधारा 1 (ग) ऐसे किसी व्यक्ति को दंडित करती है जो कोई ऐसा अभ्यास, आन्दोलन, कवायद या अन्य वैसा ही क्रिया कलाप इस आशाय से या ज्ञान से या तो संचालित करे या भाग ले कि ऐसे क्रियाकलाप में भाग लेने वाले व्यक्ति किसी धार्मिक ,मूलवंशीय,भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के विरूद्ध आपराधिक बल या हिंसा का प्रयोग करेगे या प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित किए जाएंगे और ऐसे क्रियाकलाप से ऐसी धार्मिक, मूलवंशीय , भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के सदस्यो के बीच चाहे किसी भी कारण से भय या संत्रास या असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है या उत्पन्न होने की संभावना है।

ऐसा कोई अपराध करने वाले को तीन वर्ष तक के क़ारावास से या जुर्मनि से या दोनो से दंडित किया जा सकता है ।

धारा 153 के खण्ड (2) के अनुसार - उपधारा 1(क)(ख)और(ग) में निर्दिष्ट अपराध यदि किसी पूजा के स्थान में या किसी जमाव में जो धार्मिक पूजा या धार्मिक कर्म मे लगा हुआ हो, किसी के द्वारा किया जाए तो वह पांच वर्ष तक के कारावास से दंडित किया जायगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा

इस धारा के अधीन अभियुक्त की दोषसिद्धि हेतु में निम्नलिखित तथ्यो को प्रमाणित किया जाना आवाश्यक है

1. यह कि अभियुक्त ने बोले गये या लिखे गये शब्दों द्वारा या संकेतों या दृश्यरूपणों द्वारा या अन्य तरीके से संपरिवर्तित किया या करने का प्रयत्न किया ।

2. अभियुक्त द्वारा बोले या लिखे गये शब्दों द्वारा या संकेतों या दृश्यरूपणों द्वारा भारत के नागरिको के विभिन्न वर्गो के मध्य शत्रुता तथा घृणा की भावना का सम्परिवर्तन हुआ तथा

3.अभियुक्त द्वारा ऐसा परिद्वेषपूर्ण रीति से किया था ।

इस धारा के अंतर्गत किसी बात को करने या कहने से अपराध कारित नहीं होता है बल्कि अपराध का कारित होना इस पर आधारित होता है कि उसे किस प्रकार से कहा गया या किया गया है। यहाँ यह सिद्ध किया जाना आवश्यक नही है कि वास्तव मे शत्रुता या घृणा करित की गई है बल्कि इतना सिद्ध किया जाना पर्याप्त है कि भाषा ऐसी थी जिससे घृणा या शत्रुता उत्पन्न होने की संभावना थी।

तारा सिंह बनाम राज्य [38] के वाद में धारा 153 (क) की संवैधानिकता द्वारा प्रदत्त वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के उल्लघंन के आधार पर चुनौती दी गयी थी। न्यायालय द्वारा इस धारा का संविधान के अनुच्छेद 19 (1) क के उल्लंघन के आधार पर असंवैधानिक घोषित किया गया ।संविधान संशोधन अधिनियम 1951 के द्वारा 19 (2) में किये गये संशोधन के कारण वाक् एवम् अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त निर्बन्ध आरोपित किया जा सकता है।

इस धारा के अधीन अधिरोपित प्रतिबंध युक्तियुक्त प्रतीत होते है । विशेष कर भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राज्य में जहां कि राष्ट्र का कोई राष्टीय मान्यकृत धर्म न हो वहाँ पर ऐसे प्रतिबंध का अधिरोपण अति आवश्यक हो जाता है अत: धारा मे उपबंधित नियम भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 (1) क द्वारा प्रदत्त वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का अतिक्रमण नही करते हैं ।

यदि किसी लेख मे घटना का सत्य विवरण दिया गया है और उसकी भाषा और उसको समक्ष रखने का ढंग ऐसा है जिससे असौहार्द्र अथवा शत्रुता, घृणा या वैमनस्य की भावनाऐ संप्रवर्तित होना संभाव्य है तो लेखक को इस धारा के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है।

किसी भी व्यक्ति को ऐतिहासिक सच्चाई या राजनैतिक धारणा के बहाने ऐसा कुछ भी लिखने की अनुमति नहीं है जो अल्पसख्यक समुदाय के सदस्यो पर असहिष्णु ,रक्त-पिपासु बालात्कार,लूट हिंसा हत्या की प्रवृत्ति हिन्दूओ और मुसलमानो के बीच शत्रुता, घृणा या वैमनस्यता फैलाने की है।

चन्दनमल चौपड़ा बनाम राज्य के वाद में संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक याचिका प्रस्तुत की गयी थी कि मुसलमानों के पवित्र ग्रंथ कुरान की समस्त प्रतियों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 295 के अधीन समपहत कर लिया जाए कयाकि यह हिंसा और मूर्तियों आदि को नष्ट करने का समर्थक है और यह गैर मूस्लिम लोगो की धार्मिक भावनाओं को आघात पहुंचाता है जिसके कारण इसका प्रकाशन भारतीय दंड संहिता की धारा 153 (क) और धारा 295 (क) के अधीन अपराध है। तर्क के समर्थन में ग्रथ के कतिपय अंशों को उद्धरित किया गया। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संहिता की धाराओं 153 क और 295 क को लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि बाइबिल,गीता,रामायण और महाभारत की तरह कुरान भी एक पवित्र ग्रंथ है और आज तक इससे कभी लोक प्रशांति भंग नहीं हुई है और न ही भविष्य में इस प्रकार की आंशका है न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि इन पवित्र ग्रथों का समपहरण कदाचित् संविधान के अनुच्छेद 25 का उल्लंघन है जिसके द्वारा अंत: करण की और धर्म को अबाध रूप से मानने , आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता व्यक्तियों को दी गई है।

इस धारा के अधीन कारित अपराध संज्ञेय,अजमानतीय तथा अशमनीय है। जिसका विचारण महानगर मजिस्ट्रेट या मजिस्ट्रेट वर्ग प्रथम द्वारा किया जा सकता है।

धारा 153 क के अतंर्गत दण्डनीय होने के लिये व्यक्तियो के किसी समूह को लोगो के किसी वर्ग में लाने के लिए उस व्यक्ति समूह को संख्यात्मक महत्व के एक निश्चित स्तर का अवश्य होना चाहिये तथा उसको किसी दूसरे वर्ग से अभिनिश्चित एवं भिन्न होना भी आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति समूह को वर्ग के रूप मे अभिहित नहीं किया जा सकता है।[40] इस प्रकार कोई अस्पष्ट, अनिश्चित एवं अनुमित व्यक्ति समूह चाहे उसे कोई एक नाम दे दिया गया हो, किन्ही निश्चित परिस्थितियों मे केवल इसी को कोई वर्ग नहीं माना जा सकता, विशेषकर जबकि उसके सदस्य दूसरे वर्गो मे भी बिना किसी भेदभाव के आते हों तथापि इसके साथ ही साथ यह आवशयक नहीं है कि वर्ग उतने भिन्न एवं पृथक -पृथक हो कि किसी व्यक्ति को किसी न किसी वर्ग में रखा जाना है सदैव सरल ही हो।

वर्ग जाति या धार्मिक आधारो पर आबंटित होते है व्यक्तियों की एक निश्चित संख्या को वर्ग के रूप में परिकल्पित नही किया जा सकता है किन्तु फिर भी प्रजा का एक निश्चित एवं

विर्निदिष्ट वर्ग धारा के भावबोध में वर्ग कहलायेगा।[41]

किसी भी व्यक्ति को इस धारा के अधीन दोषी ठहराने का आधार उसके द्वारा लिखे अथवा बोले हुये शब्दो द्वारा विभिन्न धार्मिक अथवा भाषायी वर्गो , जातियों या सम्प्रदायों के बीच धर्म ,वंश ,भाषा, जाति या सम्प्रदाय है न कि अन्यथा शत्रुता अथवा घृणा की भावनाओं को सम्प्रवर्तित करना है अथवा ऐसा करने का प्रयत्न करता है [42] ऐसे मलिन मुगलशासकों का वंशज कहकर वर्णित किया गया जो विकृत पुरूष बलातसंगी तथा हत्यारे थे। यह अभिनिर्धारित किया गया कि ये दोनों लेख हिन्दूओ और मुसलमानों मे शत्रुता की भावनाओ को सम्प्रवर्तित करने वाले थे। ये अभियुक्त भारतयीय दंड संहिता की धारा 153क के अंतर्गत दोषी होगा भले ही वैसे मुगल लोग वैसे रहे हों अथवा नहीं।[43]

राजनैतिक सिद्धांतो की नही मानती चाहे वे ऐसे आत्यान्तिक हों जैसे कि साम्यवाद। वरन् उन लेखो को दण्डित किया जाना अनुध्यात करती है जो कि वर्गो के बीच प्रत्यक्ष रूप से घृणा या शत्रुता की भावनाओं को संप्रवर्तित करते है। परन्तु यदि कोई प्रकाशन समस्त वर्तमान दशाओं को बलपूर्वक उलट देने की बात करना है और वर्गो में घृणा एवं शत्रुता संप्रवर्तित करने का लक्ष्य रखता है तो यह इसी धारा के क्षेत्र में आता है [44]

यदि कोई लेखक अपने वृतान्त को ऐतिहासिक भाग तक ही सीमित रखता है चाहे वह दूसरे समुदाय के सदस्यो के लिये कितना ही अरूचिकर क्यों न हो तो इस धारा के अंतर्गत यह कोई अपराध नहीं होगा। परन्तु यदि वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है तो जो विद्वेष दर्शित करती है तो वह निश्चित ही दूसरे सम्प्रदाय के सदस्यों को क्षुब्ध करेगी जिससे कि वे दूसरे वर्गो की दृष्टि में नीचे गिर जाए तो शत्रुता एवं घृणा की भावनायें संप्रवर्तित करने के कारण धारा 295 क के अधीन दण्ड का पात्र है [45]इस तरह धारा 153 क के अधीन आपराधिकता कही गयी अथवा की गयी बात में नहीं होती वरन् बात करने या करने के ढंग में होती है यदि बोले या लिखे गये शब्द संक्षिप्त भाषा में कहे गये है और लोगों के किसी वर्ग की भावनाओं अथवा गहरे धार्मिक विश्वासो के प्रति अपमान की कोई प्रवृति नहीं रखते है तो उसके कोई आपराधिक परिणाम उत्पन्न नहीं होते [46]

मेसर्स वर्षा पब्लिकेशन (प्रा.)लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य [47] के वाद में अभियुक्त द्वारा प्रकाशित पुस्तक में किसी धर्म या सम्प्रदाय को अपमानित करने का काई आशय नहीं झलकताथा बल्कि उसे संपूर्ण पढ़ने के बाद यह स्पष्ट होता था कि आदि-मुस्लिम काल में प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं धर्म अरेबिया में किस प्रकार प्रचार मे या प्रथा इससे मुस्लिम संस्कृति,धर्म तथा कला किस प्रकार प्रभावित हुई ऐसी स्थिति में न्यायालय ने उस एक विद्धन्तापूर्ण शोधकृति निरूपित करते हुए अभिनिर्धारित किया कि यह कृति धारा 153-क की परिधि में नही आती है अतः अभियुक्त

को दोष मुक्त किया गया। **बलंवत सिंह बनाम पंजाव राज्य**[48]के मामलें में अपीलार्थीगण बलवंत सिंह तथा भूपिन्दर सिंह शासकीय सेवक थे भारतीय दंड संहिता की धारा 124 क तथा 153 क के अधीन आरोपित किया गया था। उन पर यह आरोप था कि प्रधामंत्री श्रीमति इंदिरागांधी की हत्या के पश्चात् 30.10.84 को उन्होने चंडीगढ़ में सिनेमा हाल के सामने खलिस्तान जिन्दाबाद राज करेगा खालसा आदि नारे शाम को आफिस से लौटते समय लगाये। विचारण न्यायालयय ने अभियुक्तों को धारा 124क एवं 153 क के अंतर्गत एक-एक वर्ष के कारावास तथा 500 रू. जूर्माना से दंडित किया। उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि अभियुक्तों द्वारा अकसमात् कुछ समय तक नारे लगाने से जनता द्वारा कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की गई।अभियुक्तो का आशय जनता को भड़काकर अव्यवस्था फैलाना नहीं था। दोनों अभियुक्तो में से किसी ने भी हिन्दुस्तान मुर्दावाद का कोई नारा नहीं लगाया था। अत: उनके इस कृत्य से न तो भारत सरकार को किसी भी प्रकार की धमकी दी जाना सिद्ध होता है आर न ही विभिन्न समुदायों अथवा धार्मिक या अन्य समूहों के बीच घृणा तथा शत्रुता की भावना उत्पन्न होती है। धारा 153 क के अधीन अपराध के लिए अव्यवस्था फैलाने तथा जनता को हिंसा के लिए उकसाने का आशय अनिवार्य है। अभियोजन सफल होने के लिए आपराधिक मन: स्थिति को सिद्ध करना आवश्यक है यदि यह सिद्ध नहीं हो पाता है तो धारा 153 क के अधीन अपराध नहीं बनता है। अत: उच्चतम न्यायालय द्वारा दंडादेश को निरस्त कर दिया।

यह सिद्ध किया जाना मात्र कि अभियुक्त का आशय आपत्तिजनक कथन या लेखन के परिणामस्वरूप विभिन्न वर्गो या समुदायों में वास्तव में घृणा या वैमनस्यता उत्पन्न करना था धारा 153 क के अंतर्गत अपराध के लिए पर्याप्त है।[49]

यदि विभिन्न वर्गो के मध्य शत्रुता की भावना के संप्रवर्तन भाषा,धर्म या जाति के आधार पर लोक प्रशांति के विरूद्ध खतरा उत्पन्न होता है तो इस धारा के अंतर्गत दंडित किया जा सकता है।

(च) धारा 153 ख :-

धारा 153 ख राष्ट्रीय अखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले लांछन और प्रख्यान आदि को दंडनीय अपराध बनाती है। 153 ख की उपधारा (1) के अनुसार - जो कोई बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा दृश्यरूपणों द्वारा, या अन्यथा -(क)ऐसा कोई लांछन लगाएगा या प्रकाशित करेगा कि किसी वर्ग के व्यक्ति इस कारण से कि वे किसी धार्मिक मूलवंशीय भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के सदस्य है विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा नहीं रख सकते या भारत की प्रभुता और अखंडता की मर्यादा नहीं बनाए रख सकते उसे

दंडित किया जायगा।

153 ख की उपधारा (1) ख के अनुसार जो कोई बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा, या संकेतों द्वारा दृश्यरूपणों द्वारा या अन्यथा यह प्राख्यान करेगा परामर्श देगा सलाह देगा प्रचार करेगा या प्रकाशित करेगा कि किसी वर्ग के व्यक्तियों को इस कारण कि वे किसी धार्मिक, मूलवंशीय भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के सदस्य है भारत के नागरिक के रूप में उनके अधिकार न दिए जाए या उन्हें उनसे वंचित किया जाए उसे दंडित किया जायगा।

153 ख की उपधारा 1. (ग)के अनुसार जो काई बोले गए या लिखे गए शब्दो द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्यरूपणों द्वारा या अन्यथा किसी वर्ग के व्यक्तियों की वाध्यता के संबंध में इस कारण कि वे किसी धार्मिक मूलवंशीय, भाषायी या प्रादेशिक समूह या जाति या समुदाय के सदस्य है कोई प्रख्यान करेगा परामर्श देगा अभिवाक् या आपील करेगा अथवा प्रकाशित करगा और ऐसे प्राख्यान परामर्श अभिवाक् या अपील से ऐसे सदस्यो तथा अन्य व्यक्तियों के बीच असामजस्य अथवा शत्रुता या घृणा या वैमनस्य की भावनाऐ उत्पन्न होती है या उत्पन्न होनी संभाव्य है उसे दंडित किया जायगा।

इस धारा के अंतर्गत अपराध करने पर अपराधी को तीन वर्ष तक के कारावास से या जुमनि से या दोनो से दंडित किया जायगा

153 ख की उपधारा(2)के अनुसार- उपधारा (1) में विर्निष्ट कोई अपराध किसी उपासना स्थल में या धार्मिक उपासना अथवा धार्मिक कर्म करने में लगे हुए किसी जमाव में करेगा वह पांच वर्ष तक के करावास से दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

जबकि धारा 153क धर्म, मूलवंश, जन्मस्थान, निवासस्थान भाषा इत्यादि के आधारो पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता का संपरिवर्तन और सौहार्द्र बने रहने पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कार्य करने से संबंधित है। और धारा 295 क विमर्शित और विद्वेषपूर्ण कार्य जो किसी वर्ग ने धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करके, उसकी धार्मिक भावनाओं को आहत करने के आशय से किए गए हों, से संबंधित है। धारा 153 ख राष्ट्रीय अंखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले लाछन और प्राख्यान आदि से संबंधित है।

इस धारा के अंतर्गत किसी को दायित्वाधीन ठहनाने के लिये उसकी सच्ची श्रद्धा तथा आशय महत्व नहीं रखते है किसी भाषण अथवा प्रलेख, के प्रभाव को निर्धारित करते समय न्यायालय के लिये यह आवश्यक है कि वह संपूर्ण भाषण अथवा प्रलेख पर ध्यान दे न कि किसी विशिष्ट भाग या लोकोक्ति पर इस धारा के अंतर्गत कारित अपराध को संज्ञेय तथा अजमानतीय माना जाएगा तथा यह अशमनीय अपराध भी है। और यह महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय है।

इस धारा का प्रयोग साम्प्रदायिकता भड़काने वाले व्यक्तियो के खिलाफ एक कारगर कदम हो सकता है क्योकि किसी धर्म के विरूद्ध भड़काऊ भाषण देना जिससे किसी दूसरे धर्म के मानने वाले व्यक्तियो की भावनाओ को ठेस पहुंच तथा उस धर्म की के प्रति अन्य व्यक्तियो के मन में घृणा तिरस्कार या अपमान की भावना उत्पन्न हो जिससे साम्प्रदायिक दंग भड़के या भड़कने की संभावना है इन्हीं सब बातों को रोकने के लिए भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत यह उपबंध किये गये है इसी प्रकार की बात को लेकर शिवसेना प्रमुख बाला साहिब ठाकरे के विरूध कार्यवाही की गयी थी यह घटना 7 अप्रैल 1989 के मुंबई उच्च न्यायालय के एक निर्णय की 11 दिसम्बर1995 को उच्चतम न्यायलय द्वारा पुष्टि एवं सिफारिश के आधार पर चुनाव आयोग ने शिव सेना प्रमुख बाल ठाकरे को 10 दिसम्बर 2001 तक चुनाव लड़ने और मतदान करने से रोक दिया है स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह पहला अवसर था जबकि किसी राजनीतिक दल के प्रमुख को मताधिकार और चुनाव लड़ने दोनो से वंचित कर दिया है।

शिव सेना प्रमुख बाल ठाकरे ने वर्ष 1987 के विलेपार्ले के विधानसभा उपचुनाव प्रचार में एक उत्तेजक भाषण देते हुए कहा कि गर्व से कहा '' हम हिन्दु है हिन्दुस्तान हिन्दूओ का है नहीं किसी के बाप का है।'' इस चुनाव में शिवसेना श्री प्रभु से हारे कांग्रेसी नेता प्रभाकर कुंठे ने मुबंई उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर करके बाल ठाकरे पर आरोप लगाया कि उन्होने चुनाव प्रचार में उत्तेजक भाषण देकर गलत शब्दो का प्रयोग किया है।

उच्चतम न्यायालय की तीन सदस्यीय पीठ न्यायमूर्ति जे.एस.वर्मा ,न्यायमूर्ति एन.पी.सिंह एवं न्यायमूर्ति के. वेंकटस्वामी ने बाल ठाकरे के उत्तेजक भाषण को चुनाव प्रचार में भ्रष्ट आचरण माना। बाल ठाकरे ने अपने भाषणो में मुस्लिम संप्रदाय के लिए अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया जिससे धर्म के आधार पर हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदाय में वैमनस्य और कटुता फैलाने का प्रयास किया गया है। अत: यह एक भ्रष्ट आचरण का उदाहरण है तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि चुनावी भाषणों में हिन्दुत्व और हिन्दूवाद जैसे शब्दो स्वमेव भ्रष्ट आचरण नही माना जा सकता जब तक कि इसका प्रयोग धर्म के नाम पर वोट मांगने के लिए उपयोग न किये गये हो।

जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 123(3) के अनुसार -यदि कोई उम्मीदवार,उसका अभिकर्त्ता , उसकी सम्मति से अन्य व्यक्ति धर्म,वर्ण,जाति,समुदाय,धार्मिक चिन्ह अथवा राष्ट्रीय ध्वज अथवा राष्ट्रीय चिन्ह का उपयोग अथवा अभ्यर्थना उस उम्मीदवार की चुनावी संभावना लिए करता है तो उसे भष्ट्र आचरण का दोषी माना जायेगा।

धारा 123 (3-A) के अनुसार -यदि किसी उम्मीदवार की चुनावी संभावना बढ़ाने के लिए अथवा अन्य किसी के चुनाव पर विपरीत प्रभाव डालने के लिए ऐसा उम्मीदवार,उसका अभिकर्त्ता

अथवा उसकी सम्मति से उक्त कोई व्यक्ति भारतीय नागरिको के विभिन्न वर्गो के बीच धर्म ,वर्ण,जाति, समुदाय अथवा भाषा के आधार पर वैमनष्य अथवा घृणा उत्पन्न करता है अथवा प्राप्ति करता है तो उसे भ्रष्ट आचरण का दोषी माना जायगा।

उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर दो निष्कर्ष निकाले जा सकते है पहला - हिन्दूत्व अथवा हिन्दूवाद को सामान्यतया जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 123 (3)तथा (3ए) के अंतर्गत धार्मिक आधार तब तक नहीं समझा जाना चाहिए जब तक कि उसका उद्देश्य संकीर्ण साम्प्रदायिक आधार पर मत प्राप्त करना न हो । दूसरा - हिन्दुत्व या हिन्दुवाद को सामान्य साम्प्रदायिक परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा जाना चाहिए सामान्तया हिन्दुत्व भारतीय जीवन शैली अथवा मानसिक अवस्था है। हिन्दुवाद एक सहिष्णु विश्वास है जिसमें इस्लाम बौद्ध ईसाई मत जैन तथा सिक्ख जैसे सम्प्रदायों को समर्थन प्राप्त हुआ है जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा डा.इस्माइल फारूकी के मामले के संदर्भ में न्यायमूर्ति वी.भरूचा ने वर्णित किया था कि विभिन्न दार्शिनिकों तथा धार्मिक विचारको के स्थापित सोच के अनुसार हिन्दूत्व का भारतीयकरण का पर्यायवाची समझा जाना चाहिए अर्थात हिन्दुत्व एक ऐसी अवस्था है जो हिन्दू सम्प्रदाय के उपर की अवस्था है और जो सह- अस्तित्व युक्त संश्लेषणात्मक संस्कृति है

अतः यह कहा जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय का निर्णय अल्पसंख्यक तुष्टिकरण की नीति पर एक कुठारघात है और यह इस तर्क पर आधारित है कि जब अकाली दल तथा जमायते-इस्लामी जैसी पार्टियां धार्मिक आधार पर अपना अस्तित्व बनाए रख सकती है तो भा.ज.पा. तथा शिवसेना क्यो नहीं वर्शेते कि इसका प्रचार जनप्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 123(3)की धारा अथवा 123(3ए) से प्रतिषिद्ध न हो। आवश्यकता इस बात कि है कि हिन्दुवाद अथवा हिन्दुत्व के सही धर्मनिरपेक्ष आयामो को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

(छ) धारा 505 (2):-

धारा 505(2)के अनुसार विभिन्न वर्गो के बीच शत्रुता घृणा या वैमनस्य पैदा या संप्रवर्तित करने वाले कथन जो कोई जनत्रुति या संत्रासंत्रासकारी समाचार अंतर्विष्ट करने वाले किसी कथन या रिपोर्ट को, इस आशय से जिससे यह संभाव्य हो कि विभिन्न धार्मिक,मूलवंशीय भाषाई या प्रादेशिक समूहों या जातियों या समुदायों के बीच शत्रुता, घृणा या वैमनस्य की भावनाएँ धर्म, जन्मस्थान ,निवास स्थान,भाषा जाति या समुदाय के आधारों पर या अन्य किसी भी आधार पर पैदा या संप्रवर्तित हो सकेगा, प्रकाशित करेगा या प्रचलित करगा वह कारावास से जो तीन वर्ष तक का हो सकेगा, या जुमनि से या दोनों से दण्डित किया जायगा।

धारा 505 (2) पूजा के स्थान आदि में किया गया उपधारा 2. के आधीन अपराध -

जो कोई उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट अपराध किसी पूजा के स्थान में या किसी जमाव में जो धार्मिक पूजा या धार्मिक कर्म करने में लगा हुआ हो ,करेगा,वह कारावास से जो पांच वर्ष तक का हो सकेगा दडित किया जायबा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा

इस धारा के अंतर्गत लोकरिष्टि कारक वक्तव्य करने वाले ऐसे व्यक्तियो को दंडनीय बनाया गया है जो कि सैन्य विद्रोह उत्पन्न करते है या जनसख्या के किसी विशिष्ट वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के प्रति अपराध करके या विभिन्न वर्गा के मध्य परस्पर शत्रुता ,घृणा या दुर्भावना उत्पन्न करतें है या किसी पूजा स्थल के विभिन्न वर्गो के मध्य दुर्भावना या ईष्या फैलाते है। यह धारा के भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) द्वारा प्रत्याभूति वाक् एवं अभिव्यक्ति के मूल अधिकार का अतिलंघन नहीं करती है।[51]

शिवनाथ बनर्जी बनाम सम्राट के वाद में यह निर्धारित किया गया था कि दंड संहिता की धारा 505 लोगो की धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित है इसलिए बचाव पक्ष में इसका निर्वचन कठोरता के साथ किया जाना चाहिए।[52]

धारा 505 (1) के अंतर्गत कारित अपराध असंज्ञेय है। जबकि धारा 505 (2)और (3)के अंतर्गत कारित अपराध संज्ञेय अजमानतीय एवं अशमनीय है किसी मजिस्ट्रेट के द्वारा विचारणीय है। इन उपधाराओं के अंतर्गत आरोप इस प्रकार से लगाया जायेगा अर्थात् भारतयीय दंड संहिता की धारा 505(2) एवं(3) के अंतर्गत आरोप का प्रारूप निम्नवत् होगा -

मैं ......(मजिस्ट्रेट का नाम, पद एवं स्थान आदि)आप ....(यहां पर अभियुक्त का पूर्ण विवरण दें) पर यह आरोप लगाता हूँ कि

स्थान ...... पर दिनांक ....को या उसके लगभग आप ने..... (यथा स्थिति उल्लेखित करें)धार्मिक (मूलवंशीय या भाषायी या प्रादेशिका समूहो या जातियो या समुदायों) के बीच धर्म (जाति,जन्मस्थान,निवास,भाषा,जाति या समुदाय या किसी अन्य)आधार पर शत्रुता (घृणा या दुर्भावना)की भावनायें सृजन या संप्रवर्तन करने के आशय से जिससे ऐसी भावनाओं का सृजन (या संप्रवर्तन)संभाव्य था जनश्रुति या संत्रास कारित करने वाले समाचार से युक्त.......(कोई वक्तव्य या रिपोर्ट का वर्णन करें)को रचा या (प्रकाशित किया या परिचालित किया)तथा इसके द्वारा आपने ऐसा कार्य किया जो भारतीय दंड संहिता की धारा 505 (2) के अधीन दंडनीय अपराध है

अथवा

स्थान ....पर दिनांक ....को या इसके लगभग आपने .....(पूजा स्थान का

वर्णन करें में जो पूजा स्थान था).......(जमाव का वर्णन करें)में जो धार्मिक पूजा (या धार्मिक कर्म) में रत था, उपधारा (2)के उल्लेखित है .....(अपराध का वर्णन करें) अपराध किया और इसके द्वारा आपने ऐसा कार्य किया जो भारतीय दंड संहिता की धारा 505 (3)के अधीन दंडनीय अपराध है ,जिसका संज्ञानप लेने की अधिकारिता इस न्यायालय को प्राप्त है।

अतएव में आदेशित करता हूँ की आपके विरूद्ध उक्त आरोप का विचारण इस न्यायालय द्वारा किया जाये।

दिनांक................ मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर एवं पद की सील

भारतीय दंड संहिता की धारा 153 क-2 के तथा धारा 505 (3) के अंतर्गत पूजा के स्थान में किसी जमाव में जो धार्मिक पूजा या धार्मिक कार्यो में लगा हुआ तो ऐसा कार्य करने पर पांच वर्ष तक के कारावास से दंडित करने का प्रावधान है। इसकी परिभाषा लोक पूजा स्थान को भारतीय दंड संहिता तथा दंड प्रक्रिया संहिता या किसी अन्य विधि में परिभाषित नहीं किया गया है परन्तु सिविल अधिकार संरक्षण अधिकार 1955 के अंतर्गत की गयी है। सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 2 (घ)में लोकपूजा स्थान की परिभाषा इस प्रकार है।

'' लोक पूजा स्थान से चाहे जिस नाम से ज्ञात,ऐसा स्थान अभिप्रेत है, जो धार्मिक-पूजा के सार्वजनिक स्थान के तौर पर उपयोग में लाया जाता है या जो वहां कोई धार्मिक सेवा या प्रार्थना करने के लिए, किसी धर्म को मानने वाले या किसी धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी विभाग के व्यक्तियों को साधारणतः समर्पित किया गया है या उसके द्वारा साधारणतः उपयोग में लाया लाता हे और असके अंतर्गत निम्नलिखित है :-

1. ऐसे किसी स्थान के साथ अनुलग्न या संलग्न सब भूमि और गौण पवित्र स्थान

2. निजी स्वामित्व का कोई पूजास्थान जिसका स्वामी वस्तुतः उसे लोक पूजा स्थान के रूप में उपयोग में लाने की अनुज्ञा देता है; और

3.ऐसे किसी निजी स्वामित्व वाले पूजा स्थान से अनुलग्न ऐसी भूमि या गौण पवित्र स्थान जिसका स्वामी उसे लोक धार्मिक पूजा स्थान के रूप में उपयोग में लाने की अनुज्ञा देता है।

धर्म और अस्पर्श्यता के विरूद्ध सबसे अधिक आन्दोलन पूजा स्थान को ही लेकर था। जिसमें उच्च वर्ग के लोग ऐसे स्थानों पर दलितो एवं निम्न जाति वालों का आना निरूद्ध कर देते थे। हमारें राष्ट्रीय आंन्दोलन में अस्पृश्यता के खिलाफ आंदोलन एक महत्वपूर्ण पहलू रहा। जिसमें सबसे अधिक मंदिर में प्रवेश को लेकर उठा इसका सूत्रपात दक्षिण भारत में हुआ जिसे वायकोम आन्दोलन भी कहा जाता है और इस तरह के अस्पर्श्यता के विरूद्ध आंन्दोलन में गाँधी जी ने भी नेतृत्व किया और कहा

कि मानव-मानव के बीच भेद रखना ईश्वर के प्रति आस्था में अविश्वास के समान है। इसमें दलित लोक पूजा स्थान का तात्पर्य केवल सार्वजनिक स्थान पर पाये गये मंदिर या पूजा स्थल से ही नहीं है बल्कि यदि कोई प्राईवेट व्यक्ति अपने निजी स्थान में ऐसा पूजा स्थल बनवाया है। जिसे सामान्य जन के लिए खोला गया हो, उसे भी लोक पूजा स्थान कहा जायेगा तथा किसी व्यक्ति को उसमें प्रवेश करते थे अछूत या दलित या किसी धर्म विशेष का होने के कारण नहीं रोका जा सकता है।

धार्मिक निर्योग्यता उत्पन्न करना दण्डनीय अपराध

व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए भिन्न-भिन्न अधिकारों की गारंटी प्रदान करने के साथ ही साथ भारतीय संविधान का लक्ष्य देश की एकता और अखण्डता को अक्षुण्य बनाए रखना है। और इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी संभव जब जन-जन के अंदर बंधुता की भावना विकसित हो। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का सम्मान एवं आदर जातिगत, धार्मिक भावनाओं से परे होकर करे प्रजातंत्र और संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय के उद्देश्य की सफलता के लिये भी यह आवश्यक है कि काई भी व्यक्ति धर्म तथा जाति के आधार पर भेदभाव या छुआछूत की भावना न रखे संविधान के अनुच्छेद 17 के अंर्तगत अस्पृश्यता को प्रतिबंन्धित किया गया है। अस्पृश्यता निकारण है। संसद ने सन् 1955 में अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम 1955 पारित किया, जिसे अब सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 के नाम से जाना जाता है।

सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 की धारा 3 में धार्मिक नियोग्यताएं लागू करने के लिये दण्ड का प्रावधान किया गया है। इसे अनुसार- जो कोई किसी व्यक्ति को -

(क) किसी ऐसे लोक-पूजा स्थान में प्रवेश करने से, जो उसी धर्म को मानने वाले या उसके किसी विभाग के अन्य व्यक्तियों के लिए खुला हो जिसका वह व्यक्ति हो, अथवा

(ख) किसी लोक-पूजा स्थान में पूजा या प्रार्थना या कोई धार्मिक सेवा अथवा किसी पुनीत तालाब, कुएं, जलस्रोत या जलसरणी, नदी या झील में स्नान या उसके जल का उपयोग या ऐसे तालाब, जलसरणी, नदी या झील के किसी घाट पर स्थल उसी रीति से और उसी विस्तार तक करने से, जिस रीति से और जिस विस्तार तक ऐसा करना एसे धर्म को मानने वाले या उसके किसी विभाग के अन्य व्यक्तियों के लिए अनुज्ञेय हो, जिसका वह व्यक्ति हो,

अस्पृश्यता के आधार पर निवारित करेगा वह कम से कम एक माह और अधिक से अधिक छः मास की अवधि के कारावास से और ऐसे जुर्मनि से भी, जो कम से कम एक सौ रूपये और अधिक से अधिक पांच सौ रूपये तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा।

स्पष्टीकरण- इस धारा और धारा के प्रयोजनों लिए बौद्ध, सिक्ख या जैन धर्म के मानने

वाले व्यक्ति या हिन्दु धर्म के किसी भी रूप या विकास को मानने वाले व्यक्ति, जिसके अंतर्गत बीरशैव, लिंगायत, आदिवासी, वाकीसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज और स्वामी नारायण सम्प्रदाय के अनुयायी भी है, हिन्दु समझे जायेगे।

धारा 3 का मूल उद्देश्य सदियों से सामाजिक व धार्मिक कारणों से समाज के अस्पृश्य तथा अछूत लोगों को वे अधिकार प्रदान करना है जो कि उन्हें सार्वजनिक जीवन में धार्मिक, जातिगत, रूढ़िगत नियोग्यतओं के कारण उपलब्ध नहीं होते थे। संसद की संयुक्त समिति के प्रतिवेदन में भी यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि धर्म के आधार पर लोक पूजन स्थान में अस्पृश्य लोगों के प्रवेश तथा उनके पूजन आराधना के निषिद्ध अधिकार की नियोग्यताओं को समाप्त कर, अन्य हिन्दुओं तथा उक्त अधिकारों का लाभ उठाने वाले विभिन्न जातियों की तरह उन्हें भी वे अधिकार प्रदत्त करना है। अब वे लोग भी लोक पूजन स्थान में प्रवेश कर धार्मिक प्रार्थना, पूजन कर इच्छानुसार भेंट चढा सकते है। इसमें बाधा पहुँचाना।[53] **राज्य बनाम पूरनचंद** के वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस तरह धारा का उद्देश्य समाजवादी धर्म निरपेक्ष समाज में सबको समान धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार प्रदान करना है।[54]

कमिश्नर हिन्दू रिलिजियस इन्डोमेंट बोर्ड बनाम एल.टी. स्वामीया र[55] में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि अस्पृश्यता लोगों की मंदिर लोक पूजा या अन्य धार्मिक संसीन में प्रवेश या आराधना का अनियंत्रित एवं अनियमित नहीं है यदि वह आध्यात्मिक कार्य है यह परम्परागत प्रथा है जो सैंकड़ों वर्षो से चली आ रही है कि मंदिर का धार्मिक स्थल उदाहरण के लिए ऐसा स्थान जहां मूर्ति स्थापित है मंदिर के ऐसे स्थान में भी मंदिर में मूर्ति के पूजन आराधना के छोटे एवं समय निश्चित है शेष समय मूर्ति के विश्राम के लिये निश्चित है ऐसे विश्राम के अवसर पर जनता के किसी भी सदस्य को उम्र मूर्ति के विश्रांति के समय अशांति या व्यवधान उत्पन्न करने की अनुमति नहीं है अर्थात् पारंपरिक प्रथा के अनुसार निश्चित समय में ही मंदिर में प्रवेश तथा पूजन की आज्ञा है शेष समय में इसे अधिकार के रूप में, प्रयोग में नहीं लाया जा सकता।

सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 में 19 नबम्बर 1976 में संशोधन द्वारा धारा 10 क अत: स्थापित की गयी। धार्मिक निर्योग्यता संबंधी या सामाजिक अपराध कुछ विशिष्ट प्रकरणों में क्षेत्र विशेष में यदि संपूर्ण समुदाय या जाति द्वारा अथवा बहुसंख्यक लोगों द्वारा किया गया है तो ऐसी स्थिति में बहुसंख्यक लोगों की अपराध करने की प्रवृत्ति को कम तथा हतोत्साहित करने हेतु इस संधोधन की आवश्यकता महसूस करते हुए, संसद की संयुक्त समिति ने अपनी संस्तुति में प्रतिवेदित किया कि:-

समिति के समाधान के लिए समुदाय या बहुसंख्यक लोगों द्वारा अपराध करने के लिए

सामूहिक जुर्माना आरोपित करने का अधिकार राज्य शासन को दिया दिया जाना चाहिए जो कि क्षेत्र विशेष में अपराध कारित या करने केलिए अभ्यस्त है साथ ही आरोपित सामुहिक जुर्माना को वसूलने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता में जुर्माना उद्‌गृहीत करने के उपबंध का अनुसरण किया जाना चाहिए। और ये जुर्माने ऐसे माने जायेगें जैसे दण्डाधिकारी द्वारा आरोपित किये गये हों। समिति का यह भी विचार एवं संस्तुति थी कि राज्य शासन को यह भी अधिकार दिया जाना चाहिए कि वह किसी अपराधी को क्षमा प्रदान कर सके। और जो ऐसे अपराध करने के लिए उत्तरदायी नहीं है या उस श्रेणी में नहीं आते जिनके लिए उस क्षेत्र के लोगों के ऊपर सामूहिक जुर्माना अधिरोपि त हो तो उन्हें भी सामुहिक जुर्माना पूर्ण भुगतान या उसके आंशिक भुगतान की मुक्ति दी जा सकें।

उक्त संस्तुति का अनुपालन धारा 10 क अत: स्थापित करके किया गया तथा सामुहिक जुर्माने करने के लिए राज्य को शक्ति प्रदान की गई -

(1) यदि विहित रीति में जांच करने के पश्चात्, राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि किसी क्षेत्र के निवासी इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय, किसी अपराध के किए जाने से संबंधित है, या इसका दुष्प्रेरण कर रहे हैं, या ऐसे अपराध के किये जाने से संबंधित व्यक्तियों को संश्रय दे रहे हैं, या अपराधी या अपराधियों का पता लगाने या पकड़वाले में अपनी शक्ति के अनुसार सभी प्रकार की सहायता नहीं दे रहे हैं, या ऐसे अपराध के किए जाने के महत्वपूर्ण साध्य को दवा रहे हैं तो राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, ऐसे निवासियों के बीच प्रभाजन कर सकेगी जो सामूहिक रूप से ऐसा जुर्माना देने के लिए उत्तरदायी है और यह कार्य राज्य सरकार वहां के निवासियों की व्यक्तिगत क्षमता के संबंध में अपने निर्णय के अनुसार करेगी और ऐसा प्रभाजन करने में राज्य सरकार यह भी तय कर सकेगी कि एक हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब ऐसे जुमनि के कितने भाग का करार करेगा।

परंतु किसी निवासी के बारे में अधिरोपित जुर्माने को तब तक वसूल नहीं किया जायेगा, जब तक कि उसके द्वारा उपधारा (3) के अधीन फाइल की गई अर्जी का निपटारा नहीं कर दिया जाता।

(2) उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना की उद्‌घोषणा ऐसे क्षेत्र में ठोक पीटकर या ऐसी अन्य रीति से की जायगी, जिसे राज्य सरकार उक्त क्षेत्र के निवासियों को सामूहिक जुर्माने का अधिरोपण सूचित करने के लिए उन परिस्थितियों में सर्वोत्तम समझें।

(3) (क) उपधारा (1) के अधीन सामूहिक जुर्माने के अधिरोपण से या प्रभाजन के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति विहित कालवधि के अंदर राज्य सरकार के समक्ष या ऐसे अन्य अधिकारी के समक्ष जिसे वह सरकार इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ऐसे जुर्माने से छूट पाने के लिए या प्रभाजन के आदेश के लिए अर्जी फाइल कर सकेगा परंतु ऐसी अर्जी फाइल करने केलिए कोई फीस प्रभावित नहीं की जायगी।

(ख) राज्य सरकार या उसके द्वारा विनिर्दिष्ट प्राधिकारी अर्जीदार की सुनावई के लिए युक्तियुक्त अवसर प्रदान करने के पश्चात ऐसा आदेश प्राप्ति करेगा जो वह ठीक समझे।

परंतु इस धारा के अधीन छूट दी गई या कम की गई जुर्मानि की रकम किसी व्यक्ति से वसूलनीय नहीं होगी और किसी क्षेत्र के निवासियों पर उपधारा (1) के अधीन अधिरोपित कुल जुर्माना उस विस्तार तक कम किया गया समझा जायेगा।

(4) धारा (3) में किसी बात के होने हुए भी राज्य सरकार, इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय किसी अपराध के शिकार व्यक्तियों को या किसी ऐसे व्यक्ति को जो उसकी राय में उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट व्यक्तियों के वर्ग में नहीं आता है, उपधारा (1) के अधीन अधिरोपति सामूहिक जुर्मानि से या उसके किसी प्रभाग का संकाय करने के दायित्व से छुट दे सकेगी। (5) किसी व्यक्ति द्वारा (जिसके अंतर्गत हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब है) संदेय सामूहिक जुमनि का प्रभाग राज्य द्वारा अधिरोपति जुमनि की वसूली के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 द्वारा उपबंधित रीति से ऐसा वसूल किया जा सकेगा मानो प्रभाग मजिस्ट्रेट द्वारा अधिरोपित जुर्माना हो।

सामूहिक जुर्माना

किसी भी अधिनियम में सामूहिक जुमनि को परिभाषित नहीं किया गया है संहिता में सामूहिक जुमनि का तात्पर्य वह जुर्माना है जो किसी क्षेत्र विशेष के लोगों के समूह पर या जाति या समुदाय पर इस संहिता के अधीन दंडनीय अपराध के किये जाने, उसका दुस्प्रेरण करने, अपराध से संबंधित व्यक्तियों को संश्रय देने, अपराधी या अपराधियों को पकड़वाने में यथाशक्ति सहयोग न करने या अपराध के महत्वपूर्ण साक्ष्य को दबाने या छिपाने के दोषी होने पर ऐसे व्यक्तियों, समुदाय या जाति वर्ग के लोगों को अधिरोपित जुमनि को सामूहिक जुर्माना कहा जा सकता है।

ऐसा जुर्माना राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित कर अधिरोपित किया जा सकता है। ऐसी अधिसूचना उस क्षेत्र में ढोल पीटकर, मुनादी कराकर या अन्य रीति से की जावेगी जैसा मामले की परिस्थितियों को राज्य सरकार उचित समझे।

राज्य सरकार उस क्षेत्र के निवासियों के जिन पर सामुहिक जुर्माना अधिरोपित किया गया है की व्यक्तिगत क्षमता के संबंध में अपने निर्णय के अनुसार करेगी और ऐसे प्रभाजित करने में राज्य सरकार यह भी तय करेगी कि एक अविभक्त हिन्दू कुटुम्ब ऐसे जुमनि के कितने भाग का सदाय करेगा।

दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत -

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अनुसार-

न्यूसेंस या आशंकित खतरे के तात्कालिक मामले में आदेश जारी करने की शक्ति-जब कभी मजिस्ट्रेट

(जिला मजिस्ट्रेट,उपखण्ड मजिस्ट्रेट, या राज्य सरकार द्वारा विशेषतया सशक्त किसी अन्य मजिस्ट्रेट को शक्ति प्रदान की गई हे) को यह प्रतीत हो, कि (क) लोक न्यूसेस का तत्काल निवारण या (ख) आशंकित खतरे से शीघ्र उपचार करना वाछंनीय है, वह लिखित आदेश जारी कर सकता है आदेश में मामले के तात्विक तथ्यों का कथन होना चाहिए, और समन की तरह तामील होनी चाहिए। यह आदेश किसी व्यक्ति को निदिष्ट होगा (क) किसी कार्य विशेष को न करने के लिए, या (ख) अपने कब्जे की या अपने प्रबंधाधीन किसी विशिष्ट सम्पत्ति की कोई विशिष्ट व्यवस्था करने के लिए। आदेश इस धारा में विनिर्दिष्ट केवल तीन रीतियों में दिया जा सकता है अर्थात्-

1. विधिपूर्वक नियोजित किसी व्यक्ति को बाधा, क्षोभ या क्षति का, या,
2. मानवजीवन, स्वास्थ्य या क्षेत्र के खतरे का, या
3. लोक प्रशांति विक्षुब्ध होने का, या बल्वे या दंगे का निवारण करने के किए।

आपात् के मामलों एकपक्षीय आदेश पारित किया जा सकता है यह आदेश या तो किसी व्यकित को व्यक्तिगत रूप में निर्दिष्ट हो सकता है या किसी विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों को, या किसी विशिष्ट क्षेत्र के जन साधारण को निर्दिष्ट हो सकता है। मजिस्ट्रेट या राज्य सरकार या तो प्रेरणा से या व्यक्ति व्यक्तियों के आवेदन पर आदेश को विखण्डित या उसमें परिवर्तन कर सकता है आवेदन की प्राप्ति पर संबंधित व्यक्ति सुनवाई का हकदार होता है यदि आवेदन खारिज कर दिया जाता है तो खारिज करने करने के कारणों को अभिलिखित किया जाना चाहिये।

किसी धर्म विशेष को मानने का अधिकार यद्यपि निरपेक्ष नहीं हे लेकिन लोक शांति को बनाये रखने के लिए इस अधिकार का संरक्षण आवश्यक हे ऐसे मामलों में जिला मजिस्ट्रेट धारा 144 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। परन्तु आदेश द्वारा संविधान के अनुच्छेद 25 एवं 26 धारा व्यक्तियों दिये गये धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का उल्लघन नहीं होना चाहिये। **प्रभास कुमार राय बनाम व ऑफीसर इनचार्ज रानी नगर पुलिस स्टेशन**[56] के वाद में मजिस्ट्रेट ने धारा 144 के अंतर्गत एक आदेश द्वारा देवी दुर्गा के विसर्जन जुलूस पर रोक लगा दी थी जिसे एक विशेष दिन मस्जिद के सामने से गाजे-बाजे के साथ निकलना था, यह निर्धारित किया गया कि यह आदेश संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अतिक्रमण में था। अत: यदि ऐसा आदेश द्वारा धर्म की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण होता हैं तो ऐसा आदेश लेख अधिकारिता के अंतर्गत आता हैं।

मजिस्ट्रेट को किसी व्यक्ति को कोई कार्य करने से निवारित करने के लिए ही निर्वधनात्मक आदेश देने का हक होता हैं वह किसी व्यक्ति को कुछ कार्य करने का निदेश देने वाला आज्ञापक आदेश नहीं दे सकता है। शब्द कार्य विशेष न करने मजिस्ट्रेट को यह अधिकार नहीं देते हें कि वह किसी व्यक्ति को

कोई कार्य करने की अपेक्षा करने वाला आदेश दे सके। और न ही मजिस्ट्रेट कोई कार्य करने के लिए नकारात्मक आदेश दे सकता है शब्द कार्य विशेष से निश्चित कार्य अभिप्रेत है जैसे भीड़ को रोकना और वायु संचार में सुधार के लिए मंदिर के दरवाजे को चौड़ा और ऊंचा बनाना। मंदिर और उसकी सम्पत्ति में कोई हस्तक्षेप न करने का आदेश कार्य विशेष न करने का आदेश है।[57]

यह धारा ऐसे ही कार्यो तक सीमित नहीं हे जिन्हें यदि पूरा होने दिया जाये तो अपराध होगा, बल्कि ऐसे कार्यो पर भी लागू होती है जो यदि पूरे हो जाए तो वे केवल सिविल कारवाही के लिए आधार प्रदान करेंगे। किसी धार्मिक जुलूस में कोई बाधा को रोकने या उसमें भाग लेने वाले लोगों में देगे या बल्वे के निवारण के आधार पर मजिस्ट्रेट द्वारा इस धारा के संतर्गत निवारण उपाय अपनाए जा सकते है और आवश्यक प्रतिबंध की भी लगाये जा सकते है। शांति और व्यवस्था बनाये रखने में कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है जबकि आकस्मिक शांति भंग का खतरा पैदा हो जाता है और उसे अविलम्ब दूर किया जाना आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट को विशेष अधिकार प्रदान किये जाते हैं। कि वे किसी व्यक्ति विशेष को या समूह विशेष को या जन-साधारण को किसी कार्य-विशेष के नहीं करने या सम्पत्ति की तथा कथित व्यवस्था करने का आदेश दे सकते हैं।[58]

धर्म परिवर्तन या धर्मान्तरण एक दण्डनीय अपराध

सामान्यता धर्म परिवर्तन का अर्थ है धर्म में परिवर्तन करना-अर्थात किसी अन्य धर्म को स्वीकर कर लेना। जब कोई व्यक्ति या समुदाय अपने पूर्व स्वीकृत धार्मिक मत अथवा धर्म को छोड़कर किसी भी कारण से दूसरे धार्मिक मत या धर्म स्वीकार कर लेता है तो उसकी इस क्रिया को धर्म परिवर्तन या धर्मान्तिरण कहलाता है जिससे धर्म के अंतर का बोध होता है। जो व्यक्ति अथवं समुदाय इस प्रकार अपने धर्म में परिवर्तन करता है उसे धर्मांतिरित व्यक्ति या धर्मान्तिरित समुदाय कहा जाता है।

परंतु यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य धर्म धार्मिक मत या धर्मनरिपेक्ष दृष्टिको ण स्वीकार करता है तो इस कार्य को धर्म परिवर्तन कहते है जैसे जब कोई हिंदू मुसलमान ईसाई, बौद्ध अथवा मुसलमान हिंदू हो जाता है।[59]

धर्मान्तरण प्राचीन काल में भी होता था, आज भी हो रहा है और धर्मो में निर्बलता और संगठन विहिनता के कारण ऐसा शायद आगे भी होता रहेगा प्राचीनकाल में जब जाति विशेष का व्यक्ति आस्थाओं और मापदंडों के कारण नये धर्म की प्रतिस्थापना करता था तो शास्त्रार्थ होते थे लेकिन गरीब निजी हित की पूर्ति से ही धर्मान्तरण कर लेता था उसकी न तो शास्त्रतार्थ करने में दिलचस्पी होती है और न ही अपने धर्मातरण को न्यायोचित ठहराने में।

अनेक शासकीय और प्रशासनिक अवरोधों के वावजूद विचार स्वतंत्र का संघर्ष सभ्यता

के साथ ही गतिशील रहा है धर्म और धर्मातरण एक ही सिक्के के दो पहलू है। धर्म परिवर्तन के लिए मनुष्य को समाज तथा राज्य द्वारा धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान किया जाता आवश्यक है। इस कारण के अभाव में कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से धर्म परिवर्तन नहीं कर सकता धर्म परिवर्तन मुख्य दो रूप में हो सकता है - स्वेच्छा धर्म परिवर्तन और बलपूर्वक धर्म परिवर्तन। परंतु जो धर्म परिवर्तन इच्छा के विरूद्ध बलपूर्वक कराया जाता है तो उसे प्रायः घोर मानसिक कष्ट होता है स्वेच्छा से जीवन में धर्म परिवर्तन को स्वीकार नहीं करता धर्म के प्रचार में तलवार की भी भूमिका रही है तथा प्रलोभन व लालच देकर भी इस्लाम व ईसाई धर्म के इतिहास में बलपूर्वक धर्म परिवर्तन करवाये गये है कभी-कभी ऐच्छिक धर्मातरण यदि कोई व्यक्ति या समुदाय अपने आप को निरंतर तिरस्कृत तथा शोषित अनुभव करता है या हिन्दुओं ने ईसाई धर्म, इस्लाम अथवा बौद्ध धर्म को स्वीकार किया है। इसी प्रकार आर्थिक समृद्धि में लिये भी निर्धन व्यक्ति अथवा समुदाय ने धर्म परिवर्तन किये इतिहास इस बात का साक्षी है कि ईसाई धर्म प्रचारकों ने धन और भौतिक समृद्धि का प्रलोभन देकर अन्य धर्मो के लाखों निर्धन व्यक्तियों को ईसाई बनाया है। ऐसे धर्म परिवर्तनों के लिए बल प्रयोग को स्थान पर प्रायः प्रेरक विधियों को अथवा उपायों का प्रयोग किया जाता रहा है विश्व में ईसाई धर्म का प्रचार और विस्तार ऐसे ही प्रेरक उपायो द्वारा हुआ है।

अपनी इच्छा से धर्म परिवर्तन करने से विशेष मानसिक कठिनाई क्योंकि ऐसा आध्यात्मिक शांति प्राप्त करने के लिए ही करता है प्राचीनकाल में प्रमुख धर्म परिवर्तन के उदाहरण निम्न लिखित है महावीर स्वामी और गौतम बौद्ध ने सांसरिक दुखों से मुक्ति की कामना के लिये नये धर्म का प्रवर्तन किया और कई व्यक्तियों को धर्मान्तरण कराया। ईसा मसीह एवं पैगम्बर मुहम्मद साहब ने भी नये धर्म का प्रतिपादन और प्रचार किया सेंट थामस ने धर्म परिवर्तन कर भारत में ईसाई धर्म के प्रचार अशोक, नागसेन, संघमित्रा, महेन्द्र, कनिष्क आदि ने बौद्ध धर्म अपनाया तथा इसका व्यापक प्रचार प्रसार करके कई धर्म परिवर्तन करवाये।

कबीर को कबीरपंथी संप्रदाय हिंदू और मुसलमानों की रूढ़िवादिता के विरूद्ध उत्तर भारत में आज भी प्रचलित है।शंकराचार्य का धर्मातरण के विशेष योगदान महान दार्शनिक मंडल मित्र को धर्म परिवर्तन करने को बाध्य किया अकबर के समय धार्मिक सहिष्णुता थी फिर भी वीरबल तथा तानसेन ने भी धर्म परिवर्तन कर इस्लाम धर्म स्वीकर किया। केशवचंद सेन, माइकल मधुसूदन दत्त,पं. रामाबाई ने ईसाई धर्म को स्वीकार किया था रामानुज ने कई जैनियों को हिन्दू बना लिया था। स्वामी दयानदं सरस्वती ने तो शुद्धिकरण आंदोलन द्वारा कई हिन्दुओं को आर्य समाजी बनाया था। तथा डा. अंबेडकर ने लाखों दलितों के साथा बौद्ध धर्म की शरण में चले गये।

सन 1981 में मीनाक्षीपुरम में 300 दलित, हिन्दु धर्म का परित्याग कर मुसलमान बन

गये। सामंतों और बडी जातियों के अत्याचार से तंग आकर उन्होनें यह कदम उठाया था। इसी समय महाराष्ट्र में करीब तीन लाख दलितों ने हिन्दू छोडकर बौद्ध धर्म अपना लिया। 26 जनवरी 99 को तेजीपुर (उ. प्र.) में कई दलितों ने हिन्दू धर्म छोडकर बौद्ध धर्म अपना लिया।[60]

धर्म परिवर्तन विरोधी विधियां

भारत में धर्म परिवर्तन संबंधित मुद्दे को लेकर विधायी इतिहास यह है कि संबंधित अधिकारियों ने कभी भी धर्म परिवर्तन के पक्ष में अपना समर्थन नहीं किया जबकि ब्रिट्रिश भारत में धर्म परिवर्तन अधिनियम 1036, पटना का धार्मिक स्वतंत्रता अधिनियम 1942, सरमुजा राज्य स्वधर्म त्याग अधिनियम 1945 तथा उदयपुर राज्य का धर्म परिवर्तन विरोधी अधिनियम 1946 इसी प्रकार की विधियां बीकानेर, जोधपुर, कालाहांडी, कोटा में बनाई गयी जिनमें विशेष तौर पर ईसाई धर्म में परिवर्तन के विरूद्ध प्रावधान दिये गये थे, स्वतंत्रता पश्चात भारतीय संसद ने 1994 में प्रावधान दिये गये थे, स्वतंत्रता पश्चात भारतीय संसद ने 1994 में भारतीय धर्म परिवर्तन (बिल) विधेयक पारित किया गया। तथा इसके पश्चात 1960 में पिछड़े संप्रदाय विधेयक दोनों के समर्थन में कभी की वजह से हटा लिया गया प्रस्तावित धार्मिक स्वतंत्रता बिल 1978 का भेदभाव के आधार पर अल्पसंख्यक आयोग द्वारा विरोध किया गया।

लेकिन 1967 में उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश में स्थानीय विधियों जो कि उड़ीसा धर्म स्वतंत्रता अधिनियम तथा मध्यप्रदेश का धर्म स्वतंत्रता अधिनियम 1968 अधिनियम किये गये तथा उनमें एक धार्मिक आस्था से द्वारा या उत्पीड़न द्वारा या कपटपूर्वक ती इसी प्रकार के कारणों से धर्म परिवर्तन पर प्रतिषेध लगाया गया। तथा हाल ही तमिलनाडु राज्यपाल द्वारा 5 अक्टूबर 2000 को प्रस्तावित किया गया तथा राज्य विधान सभा द्वारा इस स्वीकर कर लिया गया से सभी अधिनियम सरकार धर्म परिवर्तन कपट, दवाव, प्रलोभन, उत्पीड़न, सद्भावना को परिभाषित करते है तथा अरूणाचल के मामले में निर्धारित तथा (धार्मिक आस्था) इन कानूनों द्वारा धर्म परिवर्तन को भारतीय दंड संहिता की धारा 295 तथा 298 संलेख अपराध बना दिया गया। जिसके द्वारा यह बताया गया कि दुर्भावना से आशय एक दीर्घकालीन दण्डनीय अपराध बनाया गया। जो 3 वर्ष तक का कारावास तथा पचास हजार रूपये तक जुर्माना हो सकेगा परंतु यदि अल्पसंख्यक समुदाय या अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति को धर्म परिवर्तन कराने पर सजा 4 वर्ष तथा जुर्माना 1 लाख रूपये तक हो सकेगा। इनके धर्म परिवर्तन की पूर्व सूचना जिला मजिस्ट्रेट को देनी होगी। न देने पर एक वर्ष तक के कारावास से दंडित किया जायेगा।[61]

तमिलनाडु सरकार द्वारा धर्मांतरण पर प्रतिबंध

अक्टूबर 2002 में तमिलनाडु सरकार ने जोर जबरदस्ती, प्रलोभन या धोखे से धर्मातरण पर प्रतिबंध लगाने का एक अध्यादेश जारी किया अध्यादेश की आलोचना करते हुए धर्म निरपेक्षता

वादियों ने कहा कि इससे व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार पर अंकुश लगता है वैसे 1960 के दशक में मध्यप्रदेश और उडीसा की सरकारों ने जबरन और धोखे बाजी से धर्म परिवर्तन के खिलाफ कड़े कानून बनाए थे और इन कानूनों को उच्च न्यायालयों में इस आधार पर चुनौती दी गई कि इनसे संविधान के अनुच्छेद 25 (1) के तहत धार्मिक प्रचार-प्रसार की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ है। उडीसा उच्च न्यायालय ने उसको सही ठहराया और कहा कि संदिग्ध तरीकों से कराए गए धर्मातंरण पर प्रतिबंध लगाकर यह कानून धार्मिक चुनौती दी गई तो मुख्य न्यायाधीय ए. एन. रे वाली पांच सदस्यीय पीठ ने याचिकाकर्ताओं के तर्क रद्द कर दिए और कहा कि अनुच्छेद 25 (1) किसी दूसरे धर्म के व्यक्ति को अपने धर्म में दीक्षित करने की अनुमति नहीं देता इस अनुच्छेद के तहत तो अपने सिद्धांतों के प्रचार के जरि अपने धर्म के विस्तार या प्रचार की बात कही गई है। अनुच्छेद 25 (1) किसी विशेष धर्म के अनुयायियों को नही बल्कि सभी नागरिकों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी देता है और यह भी माना कि किसी दूसरे धर्म के व्यक्ति को अपने धर्म में दीक्षित करने का कोई मूल अधिकार नहीं है न्यायालय ने कहा कि यदि किसी को जबरन धर्मांतरित किया जाता है तो सांप्रदायिक भावनाएं भडकानें की संभावनाएं होती है जिससे कानून व्यवस्था भंग होने की आशंका बढती है।

हाल ही तमिलनाडू में हुये धर्म परिवर्तन विरोधी विधि के अधिनियमन के संबंध में उत्पन्न विवाद की दो प्रकार की प्रतिक्रियायें मिली हुई है - एक तरफ वे व्यक्ति थे जिन्होनें विधायन का प्रस्ताव किया तथा अपने राजनीतिक लाभ के लिए इसका समर्थन किया साथ ही अपनी यह चिंता भी प्रकट की कि ऐसी किसी विधि की अनुपस्थिति में कराये जा रहे धर्म परिर्वन अदण्डित रह जायेगे तथा उन पर ध्यान नही दिया जायेगा इसका विरोधी मत उन अल्पसंख्यक समुदायों का था जिन्होनें यह महसूस किसा कि ऐसे विधायन का उद्देशय उनके धर्म को प्रसार करने के अधिकार को निबंधित करता है जो कि संविधान के अनुच्छेद 25 द्वारा प्रदत्त है इस तरह की प्रतिक्रियायेंमें समुदाय के लोगों का ध्रुवीकरण कर दिया तथा भारत का प्रजातंत्र ऐसे विचारों के लिए अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक में और संघर्ष प्रदान करना है।

सन 1967 से स्पष्ट है कि चिंता दवावयुक्त धर्म परिवर्तन की नहीं है परंतु किसी हिन्दू धर्म को छोड़कर धर्म परिवर्तन की है, विशेषत: ईसाई तथा इस्लाम। म. प्र. तथा उडीसा में अधिनियमों में अपराध किसी अवयस्क, स्त्री या अनुसूचित जाति या जनजाति के संकाय के साथ किया जाता है तो दण्ड को दुहरा कर दिया जायेगा। इस तरह ऐसे विभिन्न कानूनी दण्डों को दुबारा प्रभाव में लायेगे जैसे कि हिंदू विवाह अधिनियम 1955-56, हिंदू अवयस्क प्रतिपालन अधिनियम 1956 (6), हिंदू दत्तक, ग्रहण तथा भरणपोषण अधिनियम की धारा 1, 8, 9, 11, 18-14 हिंदू विवाह अधिनियम 1933 (13) (13) तथा

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (126)।

इस तरह से स्पष्ट है कि इनमें से अधिकार विधियों का उद्देश्य हिदु की नीची जाति को हिंदुत्व को रखने की है इस प्रकार की विधि हालांकि धर्म परिवर्तन को निषेध करती है लेकिन निचली जाति के हिंदुओं को पुनः धर्म परिवर्तन की अनुमति की गयी है। यदि किसी निचले जाति का हिंदू जिसने धर्म परिवर्तन कर लिया है या उसके कोई उत्तराधिकारी दुबारा हिंदू धर्म ग्रहण करके अपनी वास्तविक (मूल) जाति ग्रहण कर सकता है।

यह महत्वपूर्ण वाद म. प्र., उड़ीसा के अधिकारियों को चुनौती देता है **मुख्य न्यायमूर्ति ए. एस.रे , ने रवि स्टैनी स्लास बनाम म. प्र. राज्य**[62] **तथा यूलियो बनाम उड़ीसा राज्य तथा** अन्य [63] के मामलों में यह अभिनिर्धारित किया कि प्रसार धर्म परिवर्तन से भिन्न है नये धर्म को ग्रहण किया जाना अंतःकरण की स्वतंत्रता है जो कि सभी नागरिकों को समान रूप से प्रदान की गयी है जबकि धर्म परिवर्तन 'चुनाव की स्वतंत्रता' पर रोक लगायी जा सकती है। जबकि न्यायधीश ए. एन. रे ने 'प्रचार' शब्द पर मत व्यक्त करते हुए कहा कि क्या अनुच्छेद 25 (1) जो अधिकार प्रदत्त करता है वह यह नहीं है कि किसी दूसरे व्यक्ति को अपने संप्रदाय के मत के प्रचार में धर्म परिवर्तन कराकर अपने कार्य में ले आया जा सकते है ? विधायी सक्षमता के प्रचार की सक्षमता के प्रश्न पर न्यायाधीश का यह मत था कि धर्म परिवर्तन को कोई भी प्रचार से लोक व्यवस्था पर प्रावधान उत्पन्न हो तथा जिससे लोग प्रभावित होगे तथा राज्य विधायक के पास यह शक्ति होना चाहिए कि ये ऐसे विधायक निर्मित को तो लोग व्यवस्था स्थापित कर सकते तथा वो एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन कर इस प्रकार प्रतिषेध लगा सके है कि वे किसी भी संप्रदाय को अनुकूल हो ।जस्टिस पी. जगमोहन रेड्डी ने इस संबंध में कहा कि क्योंकि न्यायालय ने इन दोनों अधिनियम में दी गयी परिभाषा जैसे दवाव, उत्प्रेरण आदि पर कोई टिप्पणी नहीं की है इसलिए यह कहना संभव नहीं कि यह परिभाषा अल्पसंख्यकों के, उनके धर्म के प्रसार उनके मौलिक अधिकारों को प्रभावित करेगी साथ ही न्यायालय ने धर्म परिवर्तित व्यक्ति के धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकारों को भी नजर अंदाज किया है व्यक्ति का यह अधिकार है कि यह धर्म परिवर्तन करें इस का उस पर कोई प्रभाव नही पडता कि ये उस धार्मिक समूह के प्रसार का भाग नही है यदि किसी व्यक्ति का धर्म परिर्वतन कराया जायें तो शर्त यह है कि उसके साथ कोई दवाव, धोखा, उत्पीडन नही किया गया हो मीनाक्षीपुरम धर्म परिर्वतन फरवरी 1981 के बाद भारत सरकार के गृह मंत्रलाय ने राज्स सरकारों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को यह परामर्श दिया है कि मध्यप्रदेश उड़ीसा , तथा अरूणाचल प्रदेश की तरह से विधियों अधिनियमित करें।[64]

हिन्दू विधि में विवाह को एक पवित्र धार्मिक संस्कार माना गया है विवाह करने के उद्देश्य से किये गये धर्म परिवर्तन का भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत क्या स्थान है यदि धर्म परिवर्तन किया

जाता है तो इस आधार पर किसी व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के अंतर्गत कम दोषी ठहराया जा सकता है इससे संबंधित प्रावधान इस धारा में दिये गये है। यह धारा मुसलमानों पुरूषों दोनों पर लागू नहीं होती है क्योंकि उन्हें एक से ज्यादा स्त्रियों से विवाह करने की इजाजत होती हे परन्तु यह मुसलमान स्त्रियों पर लागू नहीं होती है और यह हिन्दू, क्रिश्चियन एवं पारसी पुरूष एवं स्त्रियों पर लागू होती है मुसलमानों और यहूदियों के मामले में विवाह की वैधता उनकी धार्मिक प्रथा के अनुसार निर्धारित की जायेगी। भारतीय ईसाईयों में 1872 के अधिनियम 15 के द्वारा, पारसियों के मामले में 1936 के अधिनियम 3 के द्वारा और हिन्दूओं, बौद्धों, सिक्खों और जैनियों के बारे में 1955 के अधिनियम 25 के द्वारा विशेष विवाह अधिनियम के अंतर्गत अनुष्ठापित विवाह की वैधता इसी अधिनियम के उपबंधों के अनुसार निर्धारित की जायेगी।

हिन्दु विधि के अनुसार कोई स्वधर्म व्यक्ति अपनी सिविल बाध्याताओं से मुक्त नहीं हो जाता है, वैवाहिक बंधन अविच्छेद बना रहता है एक गैर क्रिश्चियन विवाह के बल इस तथ्य से विघटित नहीं हो जाता कि एक या दोनों पक्षकार क्रिश्चियन धर्म में परिवर्तन हो जाते है।[66] हिन्दु विधि बहु-विवाह को मान्यता नहीं देती है एक हिन्दू स्त्री जो अपने हिन्दू पति के जीवित होते हुए किसी मुसलमान से या ईसाई से इस्लाम या क्रिश्चियन धर्म में संपरिवर्तित होकर भी विवाह करती है तो वह द्विविवाह का अपराध करती है।[67]

इस्लाम को छोड़ने वाले किसी व्यक्ति के मामले में विवाह बंधन विघटित हो जाता है और उसकी पत्नी द्वि-विवाह की दोषी नहीं होगी यदि वह फिर से विवाह कर लेती है। अहमदिया लोग इस्लाम से स्व-धर्म त्यागी नहीं होते हैं। उनमें और वाकी मुसलमानों में धार्मिक विश्वास के कुछ विषयों पर मतभेद हैं परन्तु वे मुसलमानों का ही एक पंथ हैं। इसलिये जब कोई मुसलमान अहमदिया हो जाता है तो वह स्वधर्म त्यागी नहीं हो जाता और उसकी पत्नी द्वि-विवाह की दोषी होगी यदि कह उसके जीवन काल में किसी अन्य से विवाह कर लेती है।[68]

मद्रास उच्च न्यायालय ने निर्धारित किया था कि कोई हिन्दू ईसाई होकर फिर से हिन्दू धर्म में वापस आता है और हिन्दू स्त्री से शादी करता है तो उसकी विवाह के लिये इस आधार पर दोष सिद्धि नहीं की जा सकती कि उसकी वह पत्नी जीवित है जिससे उसने स्वयं के ईसाई होते हुए विवाह किया था। यह निर्णय इस आधार पर था कि उस समय की हिन्दू विधि बहुपत्नित्व को अनुज्ञा देती थी। परन्तु पश्चात्वर्ती एक मामले में उसी उच्च न्यायालय ने इस व्यवस्था के सही होने पर संदेह व्यक्त किया है। इस देशी ईसाई जिसकी क्रिश्चियन पत्नी जीवित थी, उसने हिन्दू वैवाहिक संस्कारों के अनुसार एक हिन्दू स्त्री के बिना अपना धर्म त्याग, विवाह कर लिया। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वह द्वि-

विवाह का दोषी या और यह विचार व्यक्त किया कि इससे कोई अंतर न पड़ता कि उसने दूसरा विवाह करने से पहले क्रिश्चियन धर्म का परित्याग कर किया होता। [69]

इस प्रकार के कोई ईसाई इस्लाम धर्म स्वीकार करते हुए अपनी पहली पत्नी के जीवन कल में दूसरी बार शादी नहीं कर सकता। एक क्रिश्चियन स्त्री जिसने एक क्रिश्चियन से क्रिश्चियन वैवाहिक संस्कारों के अनुसार शादी की थी और अपने पति के जीवन काल में मुसलमान हो गई थी और एक मुसलमान से मुस्लिम वैवाहिक संस्कारों के अनुसार विवाह कर लिया था। उसके बारे में निर्णय हुआ कि उसने द्वि-विवाह का अपराध किया था। [70] यदि प्रश्न यह हो कि कोई धर्म संपरिवर्तन जो विवाह के बाद ईमानदारी से दोनों की सहमति से और बिना विधि पर कोई कपट करने के आशय से, किया जाता है वह विवाह संबंधित अधिकारों को परिवर्तित करने का प्रभाव रखेगा, जैसे कि तलाक देने का अधिकार महत्वपूर्ण प्रश्न है और बहुत बारीकियों वाला भी, इसके वारे में अभी तक कोई विनिश्चय नहीं हुआ है। जहां ईसाई धर्म स्वीकार करने के बाद, उसे हिन्दू धर्म स्वीकार के लिए त्याग दिया गया और हिन्दू वैवाहिक संस्कारों के अनुसार विवाह कर लिया गया। द्वि-विवाह के लिए दंडित किया गया। [71]

गुजरात में भारतीय जनता पार्टी का चुनाव घोषणा पत्र ऐसी ही विधि अधिनियमति करने के बारे में कहता है कि ईसाई तथा मुसलमानों पर अत्याचार के लिए प्रसिद्ध प्रजातंत्र में बहुसंख्यक राज्य का फायदा निश्चित रूप से बहुसंख्यकों को मिलेगा। क्या हम यह आशा करते है कि वे अल्पसंख्यकों विधि पर विचार करेगे। वरना कौन अर्थयुक्त प्रजातंत्र के लिए वोट देगे।

संदर्भ सूची

1. डा. एच पी. गुप्ता, भारतीय दण्ड संहिता 1860 तृतीय संस्करण, भाग II (2001)पृ. 975
2. डा. बंसतीलाल बाबेल, भारतीय दण्ड संहिता 1860 बांरहवा संस्करण 1991 पृ.. 219
3. ड्राफ्ट पीनल कोड, नोट जे. पृ. 136
4. ड्राफ्ट पीनल कोड, नोट जे. पृ. 1361
5. गोपीनाथ बनाम रामचंद्र ए. आई. आर. 1958, कटक 485
6. शिवकुट्टी स्वामी (1885) 1 वेयर 253
7. कुट्टीचामी भूथम बनाम रामा पट्टार (1918) 41 मद्रास
8. रोमेश चन्द्र सन्याल बनाम हीरू मण्डल, ए. आई. आर. (1890) 17 कलकत्ता 852
9. ए. आई. आर. (1890) 17 कलकत्ता 852
10. बंशीधर चमारिया बनाम राज्य, ए. आई. आर. 1956 (98)कल. ला. ज. 139
11. एस. बीरभद्रम बनाम ई. व्ही. रामास्वामी नायकर, ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 1032
12. जोसेफ बनाम राज्य, ए. आई.आर. 1961 केरल 28
13. वेचान झा बनाम एम्परर, ए. आई आर.1941 पटना 452
14. के. डी. गौर, क्रिमिनल लॉ केसेज एण्ड मेटोरियल्स द्वितीय संस्करण, पृ. 216
15. ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 620
16. स्टेट आफ मैसूर बनाम हेनरी रोडोगल्स (1962) कि. लॉ. ज. 564
17. (1917)अपील केसेज 406
18. आर. बनाम बाल्टर, (1908 (72)जे. पी. 188)
19. बाबा खलील अहमद बनाम राज्य, ए. आई. आर 1960 इला. 715.
20. 1985 दि. एल. जे. 797 (पटना)
21. 1986 क्रि. एल. जे. (कल.)182
22. शैलेन्द्र शाह बनाम गुजरात राज्य, ए. आई. आर. (1981) एस. सी. 173
23. शालिमद्र शाह बनाम स्वामी कृष्ण भारती 1981 क्रि. एल. जे. 113,
24. ए. आई. आर. 1995 एस. सी.300
25. जयपाल बनाम धामपाल, 23 कल. 60
26. अताउल्लाह बनाम अझी मुल्ला, (1889)12 इला. 454
27. जंगू बनाम अहमदुल्ला,1889 इला. 415

28. कोहिमा महबूब साहिब बनाम समाट्र, ए. आई .आर. 1945 मद्रास 456
29. 23 सी.60
30. मोहम्मद खान बनाम इम्परर, ए. आई आर. 1945 (नाग.)132
31. घसीटा बनाम कालका, (1883)5 इला. 529
32. (1886)10 मद्रास 126
33. सुब्रमनिया बनाम बेंकटा, (1883) 6 मद्रास 254 (257)
34. डा. एच एस. गौर, पीनल लॉ आफ इंडिया, भाग- 2 दशम संस्करण पृ. 1020,
35. डाफ्ट्र पीनल कोड नोट जे. पृ. 1371
36. बाबूलाल पटैल बनाम राज्य, ए. आई.आर 1980 एस. सी. 763.
37. ए. आई.आर. 1955 मणिपुर
38. (1951)4 पंजाब 193
39. 1986 क्रि. एल. जे. 182 (कल.)
40. नारायण बासुदेव फड़के, 1940 बाम्बे एल. आर. 861
41. विश्भमरदयाल बनाम सम्राट्र, ए. आई. आर. 194 अवध 33.
42. शिवकुमार 1978 क्रि. एल. जे. 701 इला.
43. 1980 क्रि. एल. जे. 525 एस. सी.
44. टी. भट्टाचार्य, भारतीय दण्ड संहिता, द्वितीय संस्करण पृ. 293
45. हरनाम दास, 1957
46. अजीजुल हक, 1980 क्रि.एल. जे. 448 एस. सी.
47. 1983 दि. ला. जे. 1946.
48. ए. आई. आर. 1995 सु. को. 3483.
49. गोपाल बनाम राज्य 1969 -72 बंबई ला. रि. 87
50. जी. वी. गोडसे बनाम श्री राम संघ ए. आई आर. 1971 बाम्बे 154
51. ए. आई.आर. 1962 सु. को. 955
52. शिवनाथ बनर्जी बनाम सम्राट्र, 1937 कल. 309
53. भूपेन्द्र ठाकुर, सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, प्रथम संस्करण, पृ. 53
54. आई. ई. आर. 1958 म. प्र. 352
55. ए. आई. आर. 1954 सु. को. 284

56. प्रभास कुमार बनाम द आफिसर इन्चार्ज, रानी नगर पुलिस स्टेशन क्रि. एल. जे 557 कल.

57. रामचंद्र एक नाथ (1869)6 बी. एच.सी.(क्रि. सी.)36

58. रतनलाल धीरजलाल, दण्ड प्रक्रिया संहिता पृ.282

59. वेद प्रकाश वर्मा, धर्म दर्शन की मूल समस्याएँ संस्करण प्रथम 1997 पृ. 503.

60. प्रतियोगिता दर्पण मई 1999 पृ. 505

61. दा हिन्दू 17 दिस. 2002 पृ. 15.

62. 1977- एस. सी. 908

63. यूलियो बनाम उड़ीसा राज्य

64. डी. एम. चतुर्वेदी, भारतीय दण्ड संहिता, संस्करण बारहवाँ पृष्ठ 192

65. सिविल सर्विसेज क्रनिकल, दिसम्बर 2002 पृ. 102

66. राजकुमारी (1891) 18 कल. 764

67. गंगा(1881) 4 बाम्बे 330,

68. नरंत कठ बनाम पारम्कल (1922)

69. लेजर (1907) 30 मद्रास 550

70. मुसस्मात रूरी (1918)1919

71. कैलाश शंकर बनाम माया देवी ए. आई आर. 1984 एस. सी. 6001

द्वितीय-खण्ड

अध्याय -4

धार्मिक, भाषायी अल्पसंख्यक और उनका उत्पीड़न

विश्व के कई समुदायों में कुछ लोगों को कई कारणों के आधार पर अलग रखा गया है जैसे शारीरिक संरचना, त्वचा का रंग, भाषा लिंग, धर्म शारीरिक विकलांगता और व्यवहार गत तरीके में भौतिक और सांस्कृतिक विशेषताएँ अत्याधिक सामाजिक दृष्टिकोण रखती है तथा समूह सदस्यता के प्रतीकों की पहचान करती है। इन तथ्यों के आधार पर व्यक्तियों को सामाजिक संरचना के समूहों में रखा जाता है। इस तरीके से पहचाने गये समूह को सामाजिक जीवन के क्षेत्रों में समान रूप से अथवा पूर्ण रूप से भाग लेने से रोका जाता है। इन्हें कई प्रकार के प्रतिबंधों और अलगाव का सामना करना पड़ता है। ये किसी भी अन्य समूह से अधिक प्रतिबंधित होते हैं ये सभी समूह अल्पसंख्यक कहलाते हैं।[1]

परिभाषाएँ-

शाब्दिक दृष्टि से माइनॉरिटी {Monority} लैटिन भाषा के "Minor" तथा "ity" का यौगिक शब्द है, जिसका अर्थ है समग्र को बनाने वाले दो समूहों में संख्या की दृष्टि से अपेक्षाकृत छोटा समूह। लोकतंत्र में जनमत या विचारों के आधार पर यह संख्या घटती बढ़ती रहती है। कभी कोई अल्पसंख्यक हो जाता है तो अन्य कोई बहुसंख्यक वर्ग। वस्तुतः अल्पसंख्यक लोकतंत्र की उपज है, लोकतंत्र के अभाव में अल्पसंख्यक प्रजातीय, संस्कृति, भाषा, धर्म आदि पर आधारित हो सकते हैं। इन्हें अल्पसंख्यक बहुसंख्यक की विचारधारा के अलोकतंत्रीय आधार माना जा सकता है। सामान्तयः अल्पसंख्यक दूसरों की तुलना में संख्यात्मक दृष्टि से अपेक्षाकृत छोटे समूहों का नाम है। साधारण एवं शाब्दिक दृष्टिकोण से अल्पसंख्यक शब्द का अर्थ व्यक्तियों के ऐसे छोटे समूह से है जो बड़े समूह के मध्य रहते हैं। अल्पसंख्यकों की ये परिभाषा दोषपूर्ण एवं अनुपयोगी है।

इनसाइक्लोपिडिया ब्रिट्रेनिका के अनुसार[2]- ''अल्पसंख्यक, ऐसे समूहों को कहते है, जो समान, रक्तवंश भाषा अथवा धार्मिक विश्वास के बंधनों से बंधे हुए हो तथा किसी एक राजनीतिक समुदाय के बहुसंख्य निवासियों से इन आधारों पर अपने को पृथक मानते हों।''

हमर बुक आफ हूमैन राइट्स के अनुसार[3]- ''अल्पसंख्यक शब्द में केवल उन्हीं अप्रभावी समूहों को शामिल किया है जो शेष जनता से पूर्णरूप से भिन्न विशेषताएँ अथवा स्थाई प्रजातीय, धार्मिक अथवा भाषायी परम्पराओं को रखती है तथा उन्हें बनाये रखना चाहती हैं।''

लैफोन्स[4] ने भी अल्पसंख्यक की परिभाषा करते हुए बताया है कि ''वह ऐसे लोगों का समूह है जिसे उनकी सामान्य प्रजातीय, भाषायी धार्मिक तथा राष्ट्रीय परम्पराके कारण राजनीतिक दृष्टि से प्रभावी सांस्कृतिक समूह द्वारा पृथक कर दिया जाता है। यह अल्पसंख्य इस बात से डरते हैं कि या तो हमें अपनी इच्छा के राष्ट्रीय समुदाय में एकीकृत होने से रोक दिया जायेगा अथवा उन्हें अपनी

पहचान के कारण उस एकीकरण से वंचित कर दिया जायेगा।''

चार्ल्स बैगले एवं मार्विन हैरीसन[5] ने ''अल्पसंख्यों की निम्नलिखित विशेषताएँ होती है।

1. अल्पसंख्य जटिल राज्य समाज के अधीनस्थ भाग होते है।

2. समाज में प्रभावी भागों की दृष्टि में अल्पसंख्यों की विशिष्ट अथवा सांस्कृतिक विशिष्टताओं को नीची दृष्टि से देखा जाता है।

3. अल्पसंख्यक विशिष्टता लिये हुए जिनके सदस्य इन्हें धारण किये रहते है सदैव जागरूक ईकाईयों से बने हुए रहते है। तथा उनके सदस्य इनसे संबंधित अयोग्यताओं से भी ग्रसित होते हैं।

4. अल्पसंख्यक की सदस्यता उत्तराधिकार में चलती है जो बिना सांस्कृतिक अथवा शारीरिक विशेषताओं के होते हुए भी बनी रहती है। अल्पसंख्यक अपने समूह में ही इच्छा या आवश्यकता के अनुसार अपने ही समूह में विवाह करते है।''

इस प्रकार समान समस्याओं के प्रति जागरूकता अल्पसंख्य समूह को बनाने रखती है जिसकी निरंतरता, पैत्रिकृता अथवा वंशपरम्परा के आधार पर चलती रहती है। किन्तु सभी अल्पसंख्यायें ये सभी विशेषताएँ नहीं पायी जाती जिसके कारण उनके संरचनात्मक स्वरूप में अंतर आ जाता है।

बाधवा[6] के अनुसार- ''नागरिकों का कोई एक वर्ग जो धर्म, भाषा अथवा अन्य किसी आधार पर एक निश्चित क्षेत्र में रह रहा हो तथा सख्या में छोटा हो, अपनी पहचान बनाये रखने अथवा बहुसंख्यकों में विलीन होने के लिए समानता अथवा प्राथमिकता चाहता हो, उसे अल्पसंख्यक कहते है।'' इस परिभाषा में अनुसूचित जातियों एवं अन्य अल्पसंख्यकों को भी शामिल कर लिया गया है। मानव अधिकारों से संबंधित उपयोग के प्रतिवेदन में किसी राज्य के बिना आकार पर ध्यान दिये अप्रभावी समुहों की अल्पसंख्य माना गया है। इस दृष्टि से अल्पसंख्यों की रक्षा का अर्थ ''अप्रभावी समूह की रक्षा'' है।

जी. एस. घुरैय[7] ने संकेत दिया है कि ''भारत में संस्कृति प्रजाति तथा राष्ट्रीय ता पर आधारित अल्पसंख्यक अधिक नहीं पाये जाते और अल्पसंख्यकों से तात्पर्य भाषा अथवा धर्म दोनों को मिलाकर लिया जाता है। **दुपारे**[8] के अनुसार ''अल्पसंख्यक, राज्य के कुछ राष्ट्रिकों का वह समूह है जो दूसरे राष्ट्रिकों से चारित्रिक भाषा या धर्म में विभिन्नता रखता हो। **ब्रूनेट**[9] के अनुसार ,'' अल्पसंख्यक किसी राज्य के उन नागरिकों का समूह है जो उस राज्य की जिसकी छत्रछाया में रहता तो है परन्तु जाति, भाषा या धर्म के आधार पर वह बहुसंख्यक आबादी से अलग पहचाना जाता है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अल्पसंख्यक राज्य का नागरिक तो है परन्तु फिर भी

बहुसंख्यक आबादी या नागरिकों में उसे अलग से ही पहचाना जा सकता है। अल्पसंख्यकों को उस राज्य का नागरिक माना जाता है।

बलोफ[10] के अनुसार "अल्पसंख्यकों को ऐसे निवासी समझा जाना चाहिए जो भाषा, जाति और धर्म के आधार पर नागरिकों की बहुसंख्या से भिन्न होते हैं।" अमेरिकी लेखकों सिम्पसन एवं इनेजर ने अपनी पुस्तक रेशियल एण्ड कल्चरल मायनॉरिटीज में लुईबर्थ की परिभाषा को उद्धृत करते हुए कहा है -

"हम अल्पसंख्यक शब्द की इस प्रकार व्याख्या कर सकते हैं कि यह ऐसे व्यक्तियों का समुदाय है जो अपने शारीरिक और मानसिक तथा चारित्रिक चरित्रों के कारण अन्य समुदायों से विभिन्नता प्रकट करता है क्योंकि साथ में रहने वाले समाज से वह असमानता तथा कुछ अंतर रखना अनुभव करता है। इसीलिए यह सामुदायिक भेदभाव का विषय बन जाता है।" संसार भर में अल्पसंख्यक मुख्यत: तीन प्रकार के होते हैं-

1. जातीय अल्पसंख्यक,
2. धार्मिक अल्पसंख्यक और
3. भाषायी अल्पसंख्यक।

दी न्यू एनसाइक्लोपीडिया बिट्रिनिका[11] के अनुसार "अल्पसंख्यक एवं सांस्कृतिक, जातीय समूह अथवा प्राजातीय रूप से बृहद समाज में रहने वाला पृथक समूह है।"

जैसा कि इस शब्द को राजनैतिज्ञों और सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त किया गया है। एक अल्पसंख्यक आवश्यक रूप से किसी समाज के भीतर प्रभावी समूह के अधीनस्थ होना चाहिए। यह अधीनस्थता न कि संख्या के आधार पर अल्पसंख्यता किसी अल्पसंख्यक समूह को परिभाषित करने की प्रमुख विशेषता है।

समाज शास्त्रीय अर्थो में "अल्पसंख्यता का पृथक सामाजिक समूह होना चाहिए इस रूप में इसके सदस्यता के विनिर्दिष्ट नियम होते है और सांस्कृतिक व्यवहार के विहित मार्गदर्शन होते है जिससे कि इसका बहुसंख्यकों से विभेद किया जा सकता है। इसकी विनिर्दिष्ट आसानी से पहचाने जाने वाली विशेषताएँ होनी चाहिए जिससे इसे बाकी समाज से चिन्हित किया जा सके।" समाज की प्रभावी शक्तियों से अपने अलगाव के कारण अल्पसंख्यक समूह के सदस्य सामान्यत: समाज की गतिविधियों में पूर्णरूप से सम्मिलित होने और समाज के पुरूस्कारों में समान अंश की प्राप्ति से अलग हो जाते है। एक अल्पसंख्यक समूह विशेषत: एक प्रभावी समूह से अधिक गरीब और राजनैतिक रूप से कम शक्तिशाली होता है यद्यपि कुछ अपवाद है।

उपरोक्त परिभाषाओं के अनुसार अल्पसंख्यक के लिए -

1. समाज में सांस्कृतिक, जातीय अथवा प्राजातीय रूप से भिन्न समूह होना चाहिए।
2. समाज में प्रभावी समूह का अधीनस्थ होना चाहिए।
3. विशिष्ट तथा आसानी से पहचाने जाने वाले लक्षण होना चाहिए ताकि समाज में इसे अल्पसंख्यक समूह के रूप में पहचाना जा सके।
4. समाज के कार्यो एवं उपलब्धियों की पूर्ण भागीदारी से वंचित होना चाहिए।

वेवस्टर III न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी के अनुसार[12]-

"अल्पसंख्यक के एक समूह के रूप में पहचान साधारणत: बड़े समूह से जिसका कि वह एक भाग है अथवा भाग था से पृथक पहचान और हैसियत की जागरूकता है। अत: अल्पसंख्यक एक जातीय, धार्मिक अथवा राजनैतिक समूह है जो कि बड़े नियंत्रणकारी समूह से भिन्न है।"

आक्सफोर्ड इग्लिंश डिक्शनरी के अनुसार [13]-

"अल्पसंख्यक छोटा, तुच्छ अथवा अधीनस्थ होने की शर्त अथवा तथ्य है।"

इस परिभाषा के अनुसार अल्पसंख्यक होने के लिए-

1. संख्या में कम होना चाहिए अथवा,
2. प्रास्थिति की दृष्टि से समाज में तुच्छ होना चाहिए अथवा,
3. अधीनस्थ होना चाहिए।

कालिन्स कोबिल्ड इग्लिंश लेग्वैंज डिक्शनरी के अनुसार [14]-

"किसी बड़े समूह में अल्पसंख्यक व्यक्तियों अथवा वस्तुओं की अल्पसंख्या उस बड़े समूह की संख्या के आधे से कम संख्या है। विशेषत: इसका प्रयोग तब किया जाता है यदि यह संख्या बड़े समूह की आधी संख्या से बहुत अधिक कम होती है। यदि कोई व्यक्ति अथवा समूह अल्पसंख्यक है अथवा अल्पसंख्या में है तो उनका संबंध बड़े समूह के ऐसे व्यक्तियों से होता है। जो कि उस समूह की आधे से कम संख्या में है। एक अल्पसंख्यक समान जाति, धर्म इत्यादि के व्यक्तियों का ऐसा समूह है। जहां उनके चारों ओर अधिकाशत: जाति और धर्म इत्यादि के लोग रहते है।"

इस परिभाषा के अनुसार अल्पसंख्यक होने के लिए आवश्यक है-

1. समान जाति और धर्म इत्यादि के व्यक्तियों का ऐसा समूह होना चाहिए जिसके चारों और विभिन्न धर्मो और जातियों के लोग निवास करते हो। और इसके अतिरिक्त।
2. व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह की संख्या बड़े समूह के सदस्यों की संख्या के आधे से कम होना चाहिए।

सन् 1918 के जर्मन युद्ध के पश्चात् संसार के राष्ट्रों का जो संघ बना था उसे 'लीग आफ नेशनल' कहा जाता है द्वितीय जर्मन युद्ध के पूर्व किसी भी अल्पसंख्यक समुदाय को अपने ऊपर आने वाली विपत्तियों का निवारण करने के लिए इस लीग का दरवाजा खुला था। वे वहां पहुँचकर अपील कर सकते थे। राष्ट्र संघ के तत्वाधान के आधीन की गयी संधियों और घोषणाओं में ''जातीय धार्मिक अथवा भाषायी अल्पसंख्यकों'' के संरक्षण की व्यवस्था की गयी थी परन्तु इनमें इन शब्दों को संतोषजनक रूप से परिभाषित नहीं किया गया था।

भारतीय संविधान में ''अल्पसंख्यक'' शब्द का इतना कम प्रयोग किया गया है कि संविधान सभा में न्यायमूर्ति टी. टी. कृष्णाचार्य के सुझाव पर 'अल्पसंख्यक' शब्द को कतिपय वर्गो certan classes में बदल दिया गया।[15] किसी भी वर्ग को जानबूझकर ''अल्पसंख्यक'' नहीं कहा गया यद्यपि संविधान निर्माण के समय सिक्खो, जैन मुस्लिमों, एग्लों इण्डियन तथा क्रिश्चियनों को ''अल्पसंख्यक'' माना गया था। इसका कारण यह था कि संविधान सभा यह मामला न्यायापालिका पर अलग-अलग मामलों के संबंध में छोड़ना चाहती थी। संविधान सभा के पास व्याख्या करने के लिए इतना अधिक समय भी नहीं था।[16]

जनरल क्लाजेज एक्ट एवं भारतीय संविधान के अंतर्गत न ही अल्पसंख्यकों की कोई निश्चित परिभाषा दी गयी है और न ही अल्पसंख्यक का निर्धारण करने हेतु कोई परीक्षण। भारतीय संविधान के अनु. 29 (1), अनु. 30, अनु.350 A और 350 B में ही अल्पसंख्यक शब्दावली का प्रयोग किया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 के अंतर्गत्त संरक्षण का लाभ प्राप्त करने हेतु किसी समुदाय के लिए यह सिद्ध करना आवश्यक है कि वह भाषा, लिपि, संस्कृति अथवा धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक है।

भारतीय संविधान के अंतर्गन्त अल्पसंख्यकों का वर्गीकरण नि. लि. के आधार पर किया गया है- 1. धर्म 2.भाषा 3. संस्कृति

इस प्रकार भाषा एवं धर्म को तो स्पष्ट किया जा सकता किन्तु ''संस्कृति'' को परिभाषित करना कठिन है वस्तुतः संस्कृति में मानव समूहों की भौतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा कलात्मक उपलब्धियां उनकी परम्पराएँ रीति रिवाज, आचरण के रूप, सामान्य विश्वास एवं मूल्य आदि सभी आ जाते हैं। इसलिए यह कहना कठिन हो जाता है कि किसे सांस्कृतिक ''अल्पसंख्यक'' कहा जाय किन्तु अल्पसंख्यकों का निर्णय धर्म और भाषा के मिश्रण पर सरलता पूर्वक किया जा सकता है।

इस तरह नागरिकों का कोई भी समूह जो कि किसी निश्चित क्षेत्र में संबंध में अल्प है, धर्म, भाषा या किसी अन्य आधार पर अपनी पहचान बनाये रखने के लिए अथवा बहुसंख्य में

आत्मसात होने के लिए समानता अथवा वरीयता का वर्ताव चाहता है तो वह अल्पसंख्यक है।

भारत में धार्मिक अल्पसंख्यक

आर्यो ने हमे जो सभ्यता प्रदान की थी उससे जाति व्यवस्था की शुरूआत हुई जिसके अनुसार शूद्र ऊंची जातियों से निम्न वर्ग के थे बौद्ध तथा जैन धर्म का उद्भव भारत में हुआ है लेकिन तुलनात्मक रूप से इसके अनुयायी भारत में कम है इसलिए वे भारत में अल्पसंख्यक कहलाये यही बात सिक्खों के साथ भारतीय कार्यो में सबसे अधिक अनुयायी हिंदु धर्म के है अरबकाल के दौरान मुस्लिम बहुसंख्यक थे लेकिन मुगलों के बाद मुसलमान अल्पसंख्यको को परिवर्तित हो गये इस्लाम तथा ईसाई धर्म की जड़े भारत से बाहर है। इसी तरह पारसी तथा यहूदी बाहर से भारत में आये इसलिए उनकी संख्या कम है और इसी कारण उन्हें अल्पसंख्यकों का नाम देना पडा इसके पश्चात बिट्रिश शासक आये जो कि ईसाई धर्म के अनुयायी थे तथा ईसाई बहुसंख्यक हो गये। जब बिट्रिश साम्राज्य का अंत हुआ तो ईसाई अल्पसंख्यक हो गये इस प्रकार हमारे देश में विभिन्न प्रकार के अल्पसंख्यक है जो कि उतरते तथा बढते चले थे।

मध्ययुग से पहले अक्सर एक व्यक्ति मात्र एक समुदाय की इकाई के कार्यरत रह कर संतुष्ट रहता था। उन दिनों व्यक्तिगत सजगता एक दुर्लभ घटना थी। साधारणताया व्यक्ति स्वयं के लिये ना तो सोचता था और न ही कार्य करता था। अल्पसंख्यक समुदाय उन व्यक्तियों से मिलकर बना होता हे जिनमें समानता की भावना हो, जिनमें एक समुदाय की भावना हो तथा जो महसूस करे कि यही समानता तथा समुदाय की भावना उसी क्षेत्र के बहुसंख्यक व्यक्तियों से अलग करती है उन समूहों के बीच अल्पसंख्यक समस्या का प्रश्न ही नहीं उठेगा जिनका एक दूसरे से कोई संपर्क नहीं है जब समूहों में लगातार संपर्क रहता है तब वे महसूस करते है कि वे भिन्न है तथा समस्या तीव्र होती जाती है।

अल्पसंख्यक की समस्या आवश्यक तौर पर आधुनिक युग की समस्या नहीं है तथा यह समस्या एक प्रजातंत्र की समस्या है। उन प्राचीन एवं पूर्व ऐतिहासिक समय में अल्पसंख्यक समूह या एक व्यक्ति अपनी शक्ति का प्रयोग बहुसंख्यकों की सहमति से करता था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि बहुसंख्यकों की सहमति थी पर राजा की इच्छा की ही विजय होती थी या वहां जहां विभिन्न प्रकार की सामंतवादी सरकार थी वहां प्रभावी समूह की इच्छा का महत्व था और वह प्रभावी समूह लगभग अभिन्न रूप से एक अल्पसंख्यक प्रकृति बनाए रखी और वह अल्पसंख्यक ही बने रहना चाहता था। अल्पसंख्यक शक्तियों का प्रयोग करते थे और अक्सर बहुसंख्याओं को अल्पसंख्याओं के आगे समर्पण करना पडता था।

प्रजातांत्रिक व्यवस्था में निम्न लिखित तीन लक्षण पाये गये। सभी नागरिकों के लिये

अधिकारों तथा कर्त्तव्यों में समानता जहां समानता नहीं है या अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के समानीकरण की प्रवृत्ति नहीं हे, वह प्रजातंत्र नहीं है। प्रजातंत्र एक आवश्यक लक्षण है कई भिन्न केंद्रों के मध्य शक्तियों का विभाजन है। जब भी किसी एक के हाथ में शक्ति केंद्रित होती है या फिर किसी एक समूह या श्रेणी में शक्ति केंद्रित हो तो वह प्रजातंत्र नहीं है। जब तक सत्ता के कई क्रेंद्र नहीं होगे तब तक प्रजातंत्र हो ही नहीं सकता।

अल्पसंख्यकों में एक समानता की भावना होती है उनका एक अलग दृष्टिकोण होता है तथा उनमें निकटता होती है तथा उनमें बहुसंख्यक समूह से भिन्नता की भावना होती है यदि इन अल्पसंख्यकों का बहुसंख्यकों द्वारा दमन किया जाता है तो यह प्रजातंत्र के विरूद्ध है दूसरी ओर यह अल्पसंख्यक शक्ति के केंद्र में कार्य करने के लिये स्वतंत्र होगे हमारे देश में प्रजातंत्र के विकास को उतने ही अवसर मिलेंगे।

भारत में कई धर्म आये और भारत में अपनी छाप छोड़ गये परंतु भारत में भी कई धर्मो का जन्म हुआ इन धर्मो का व्यापक प्रचार प्रसार न हो पाने के कारण ये कम लोगों के द्वारा ही अपनाये गये या जिन धर्मों को राजकीय सरंक्षण प्राप्त था उस राज्य का अंत होते ही उस धर्म के अनुयायी भी कम हो जाते थे इस प्रकार भारत में कुछ प्रमुख धर्म जो अल्पसंख्यक हैं उनकी उत्पत्ति या प्रादुर्भाव भारत में कैसे हुआ? तथा वह अल्पसंख्यक कैसे हुए इस संबंध में ऐतिहासिक पृष्टभूमि इस प्रकार है :-

इस्लाम धर्म :-

इस्लाम को जन्म लिये सिर्फ 80 वर्ष हुये थे। कि इतने ही समय में उसका झंडा एक ओर तो भारत की सीमा पर पहुंच गया और दूसरी ओर वह अटलान्टिक महासागर के किनारे पर जा फहरा। मुहम्मद साहब का जन्म 29 अगस्त 570 ई. में और मृत्यु 632 ई. में हुई सन् 622 ई. में उन्होनें मक्का छोड़कर मदीने की हिजरत की, जिस वर्ष से इस्लाम का वास्तविक आरंभ माना जाता है लेकिन सात सौ ई. लगते लगते इस्लाम इराक, ईरान और मंध्य एशिया में फैल गया तथा सन् 712 ई. में सिंध मुसलमानों की अधीनता में चला गया उसी समय मुसलमानी राज्य स्पेन में भी स्थापित हो गया हिजरी सन् 722 तक मुसलमानों के राज्य के राजा के समान शक्तिशाली राज्य दुनिया में और कही नही रह गया इस्लाम का प्रचार-प्रसार तलवार के द्वारा किया गया मुसलमान जहां-जहां गये उन्होनें जनता के सामने तीन विकल्प रखें, या तो कुरान लो और इस्लाम कबूल करों या कर दो और अधीनता स्वीकार करों, अथवा दोनों में से कोई बात पसंद नहीं हो तो तुम्हारे गले पर गिरने के हमारी तलवार प्रस्तुत है। ये बड़े ही कारगर उपाय रहे होगें। किंतु सिर्फ इन्हीं उपायों से इस्लाम इतनी जल्दी नहीं फैल सकता। अवश्य ही प्रत्येक देश की परिस्थिति और समानता के सिद्धांत में इस्लाम का विश्वास इस कार्य में सहायक हुए होगें।[19]

आठवीं शदी के शुरू में सिंध ओर बलख के अरब साम्राज्य में सम्मिलित होने पर भारतवर्ष का प्रभाव खिलाफत के देशों पर पड़ने लगा। मुसलमानों का पहला बेड़ा सन् 630 में उमर की खिलाफत में हिन्दुस्तान में आया।[20] खलीफा मुसलमानों के राजा भी थे और धर्मगरू भी थे आरंभ में खलीफा ने सादगी, चरित्रता और दोस्ती तथा वैराग्य का ऐसा अच्छा उदाहरण उपस्थित किया कि इस्लाम का आचार पक्ष बहुत ऊंचा उठ गया और इसके अंदर उन लोगों की संख्या बढने लगी जो गृहस्थ रहकर भी वैराग्य निभा सकते थे। जो गद्दी पाकर भी तबीयत से फकीर रह सकते थे। अत लोगों ने इस्लाम कबूल कर लिया और ये धर्म-परिवर्तन स्वेच्छा से किये गये थे जबरदस्ती के कारण नही। नवीं सदी के खत्म होने के पहले ही, मालावार का राजा चेरामन पेरूमल मुसलमान हो गया क्योंकि उसने सपने में चंदमा को फटने देखा था और दूसरे दिन उसे विश्वास दिलाया गया कि यह इस्लाम का चमत्कार है भारत में सबसे पहले उसी ने अरबों को अपना धर्म फैलाने की सुविधा दी थी। दसवी शती तक वे पूर्वी तट पर भी पहुचानें लगे और उनकी धाक राजदरबारों से लेकर व्यापारियों तक खूब जम गयी। इन प्रांतों में तभी उनकी सैकड़ों मस्जिदें भी बन गयी और समाज में उनके पीर औलिया भी घूमने लगे।

उत्तर के राज्य भी इस्लाम को उदारता से देखते थे। काम्बे के हिन्दुओं ने एक बार मुस्लिम सौदागरों पर आक्रमण किया और उनकी बस्तियां उजाड़ दी। इस पर राजा सिद्धराज ने उस मामले की जांच करवायी, दुष्टों को दण्ड दिया और मुसलमानों को नयी मस्जिदें बना लेने को रूपये भी दिये।

यहां तक हिन्दू-मुस्लिम संबंध मैत्रीपूर्ण रहा। इस्लाम से हिन्दुओं की भयंकर घृणा तब आरंभ हुई, जब महमूद गजनबी ने इस देश में आकर क्रूरता बरती और यहां के मंदिरों को विनष्ट करके अपने लिए दुर्नाम अर्जित किया। किंतु महमूद गजनबी या मुहम्मद गौरी ये लोग अरबी या ईरानी नस्ल के नहीं थे न इतिहास में उन्होनें सच्चे इस्लाम का प्रतिनिधित्व ही किया है।

जब विलासिता के कारण अरब साम्राज्य का पतन होने लगा तब सन् 850 ई. के लगभग इसके कई टुकड़े हो गये। खिलाफत एक छोटी सी रियासत के रूप में रह गयी और जो राज्य उसके स्थान में खड़े हुए, उनमें अधिकांश मुसलमान बने हुए ईरानियों के राज्य थे। इस बीच तुर्क भी मुसलमान होने लगे और ये लोग धीर-धीरे रियासतदार और जरदार भी हो गये इसलिए जब अरब साम्राज्य टूटा तो उसके कई हिस्सों में ये तुर्क सरदार राजे और सुल्तान बन बैठे।

मुहम्मद साहब ने जिस धर्म का उपदेश दिया वह अत्यंत सरल और सबके लिए सुलभ धर्म था अतएव जनता उसकी ओर उत्साह से बढ़ी। साहस करके आरंभ से ही उन्होनें इस बात पर काफी जोर दिया कि इस्लाम में दीक्षित हो जाने के बाद, आदमी-आदमी के बीच कोई भेद नहीं रह जाता है इस बराबरी वाले सिद्धांत के कारण इस्लाम की लोकप्रियता बहुत बढ़ गयी और जिस समाज में भी निम्न स्तर

के लोग उच्च स्तरवालों के धार्मिक या सामाजिक अत्याचार से पीड़ित थे। उस समाज के निम्न स्तर के लोगों के बीच यह धर्म आसानी से फैल गया।

हिन्दुओं और मुसलमानके अधिक समीप लगने से रोकने वाले कारण निम्न है हिन्दुओं की मानसिक कठिनाई यह है कि इस्लाम का अत्याचार उन्हें भुलायें नही भूलता और मुसलमान यह सोचकर पस्त है कि जिस देश पर उनकी कभी हुकूमत चलती थी, उसी देश में उन्हें अल्पसंख्यक बनकर जीना पड़ रहा है।[21]

मुसलमान अल्पसंख्यक भारत में इस कारण हुए कि भारत की स्वतंत्रता के साथ ही मुस्लिम लीग की मांग पर भारत का विभाजन हुआ और पाकिस्तान के रूप में एक स्वतंत्र मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना हुई जिससे भारत के अधिकतर मुस्लिम संप्रदाय के लोग वहां चले गये कुछ ही व्यक्ति भारत में रह गये जो आज अल्पसंख्यक माने जाते है। और जिन्हें ताकत के बल पर मुस्लिम बनाया गया थाा उन्हें बाद में फिर अपना पुराना धर्म स्वीकार कर लिया।

प्रजातंत्र में ऐसा कोई तरीका नहीं है जिससे अल्पसंख्यक लोग बहुसंख्यक बना दिये जाये। लेकिन ऐसे तरीके तो प्रत्येक शासन पद्धति में पाये जा सकते है। जिससे अल्पसंख्यकों की हर जायज शिकायत दूर की जा सके। किंतु यह तभी संभाव है जब अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक समुदाय परस्पर एक दूसरे का विश्वास करें।

बौद्ध धर्म -

बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध या गौतम बुद्ध का जन्म 563 ई. पू. में उ प्र. के वस्ती जिले के पास आधुनिक नेपाल राज्य में स्थित कपिलवस्तु के शाक्यवंशी क्षत्रिय राजपरिवार में हुआ था। इन्होनें 29 वर्ष की अवस्था में गृह त्याग दिया कठोर तपस्या के बाद बुद्धत्व या ज्ञान प्राप्त हुआ जिससे वे बुद्ध के नाम से विख्यात हुए वाराणसी के निकट सारनाथ में पहला धर्मोपदेश किया ज़हां पांच भिक्षु उनके अनुयायी हुए उन्होनें जाति पाति का भेदभाव किये बिना राजपुत्रों से लेकर भद्रपुत्रों तक को अनुयायी बनाया भिक्षु संघ में दीक्षित किया। उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म बौद्धधर्म नाम से प्रसिद्ध हुआ। बुद्ध ने राजगृह, वैशाली, पाटलिपुत्र आदि क्षेत्रों में भ्रमण कर धर्म प्रचार किया उनका निर्माण 483 ई. पू. में 80 वर्ष की आयु में कुशीनगर में हुआ। अत: बौद्ध धर्म का उदय भारत में ही हुआ।[22]

बुद्ध के निर्वाण के प्राय: सवा सौ वर्ष बाद सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया उनके गुरू मोग्गलिपुत्र के द्वारा बौद्ध निकायों के मतभेद दूर करने के लिए अशोक ने भिक्षु संघ के हजारों भिक्षुओं का सम्मेलन बुलाया इस सम्मेलन में भी धर्म और विनय का संमागम हुआ और एकमत से निर्णय लिया गया यह तृतीय बौद्ध संगीति कहलायी। इस तरह बौद्ध धर्म को भारत में राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ

तथा अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र व पुत्री संघमित्रा को भाी बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु विदेशों की यात्रा करवाई सबसे अधिक बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार अशोक के शासन काल में हुआ।

इसके पश्चात् कनिष्क की बौद्ध धर्म में रूचि हुई उसने बौद्ध भिक्षुओं से बात करने को बुलाया तो देखा कि सभाी अलग-अलग बात कर रहे है तब उसने। 1000 ई. के लगभग चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन कश्मीर में तथा बुद्ध धर्म की शिक्षाओं को ताम्रपत्र पर खुदवाया उसे स्तूप में सुरक्षित रखा गया परंतु बौद्ध धर्म दो भागों में विभाजित हो गया हदीययान और महायान। बुद्ध की पहली प्रतिमा से कनिष्क के समय अर्थात लगभग चार शताब्दी बाद बनायी गयी। उनकी पूजा अर्चना होने लगी। नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को ग्रहण करने के लिए की गयी जिसमें देश विदेश से व्यक्ति बौद्धधर्म की शिक्षा ग्रहण करने आते थे।

तुर्को ने बौद्ध और ब्राम्हण दोनों के ही मंदिरों को ध्वस्त किया तथा भिक्षुओं व पुरोहितों का संहार किया लेकिन ब्राम्हण धर्म भारत में बचा रहा और बौद्ध धर्म समूल नष्ट हो गया इसका कारण यह हो सकता है कि ब्राम्हण धर्म में गृहस्थ भी धर्म के अगुआ हो सकते थे जबकि बौद्धों में धर्म प्रचार तथा धर्मग्रंथों की रक्षा का भार केवल भिक्षुओं पर ही था। तुर्को के आने से बौद्ध धर्म को तलवारों से तथा उनके मठों और मंदिरों के ध्वस्त कर दिया गया और बौद्ध भिक्षु अपने धर्मस्थलों तथा मठों की मरम्मत करने में असफल रहे जिससे वे अशरण हो गये। बौद्ध बिहारों के तोड़ दिये जाने पर उनके भिक्षु तिब्बत, नेपाल, तथा दूसरे देशों की ओर चले गये। भिक्षुओं के अभाव में ब्राह्मण रक्त संबंधियों से पीछे बचे बौद्ध धर्मावलंबियों को अपने में समा लिया और छोटी समझी जाने वाली जुलाहा, धुनिया आदि जातियों के बौद्ध मतावलंवी मय और प्रलोभन से मुसलमान हो गये इस प्रकार एक दो शताब्दी में ही बौद्ध या तो ब्राह्मण धर्मो बन गये या मुसलमान।[23]

लेकिन बौद्ध धर्म आज भारत में पूर्णतः विलुप्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि आज भी बौद्ध धर्मावलंवी कश्मीर के लेह तथा लद्दाख,हिमाचल प्रदेश तथा सिक्किम प्रदेश में वसे हुए है। लेकिन इनके मानने वाली की संख्या आज भी अन्य धर्मोवलंबीयों की अपेक्षा बहुत कम है अतः ये अल्पसंख्यक समुदाय के लोग भारत में माने जाते है। बौद्ध धर्म जैन धर्म के समान अनीश्वरवादी, अनात्मावादी धर्म है इसकी अपनी शिक्षा, संस्कृति तथा लिपि और देवी-देवता अलग-अलग है इसीलिए इसे अल्पसंख्यकों का दर्जा धर्म को मानने वालों के आधार पर प्राप्त हो गया है।

सिक्ख धर्म :-

सिक्ख पंथ की स्थापना गुरू नानकदेव ने की थी उनका जन्म सन् 1469 में तलबंडी नाम स्थान पर हुआ था। 15 वीं शताब्दी मे सारे भारत में भक्ति की जो लहर आयी थी गुरू नानकदेव उसके

प्रमुख प्रणेताओं में से थे। उन्होनें धर्म और जाति के भेद को त्यागकर सब धर्मो, मतों तथ मनुष्यों की समानता तथा एक ईश्वर की प्रभुसत्ता का संदेश दिया। संस्कृत 'शिष्य' शब्द से जिस प्रकार हिन्दी सीख या सीखना बने है उसी प्रकार पंजाबी का सिख शब्द भी। अर्थात शिष्य से तात्पर्य है गुरू नानकदेव तथा उनके परवर्तो अन्य नौ गुरूओं की शिक्षा के अनुसार आचरण करने वाला होता है।

अकबर के बाद मुस्लिम शासक हिन्दुओं को प्रताड़ित कर इस्लाम धर्म अपनाने के लिए मजबूर करने लगे तो सिख गुरूओं ने उनका डटकर विरोध किया। गुरू हरगोविंद के समय से ये अत्याचार बढ़ते गये। गुरू हरगोविंद निर्भय, साहसी व्यक्ति थे। उन्होनें अपने अनुयायियों को शिक्षा दी कि हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये सिपाहियों की तरह तलवारों से लैस रहे और अच्छे घुड़सवार बने। गुरू अर्जुनदास ने भी जीवन भर मुस्लिम शासकों के बहुत जुल्म सहे। उन्हें कई प्रकार की यातनाएं दी गई और आखिर में नदी ने डुबोकर उनकी हत्या कर दी गई। गुरू तेगबहादुर ने भी औरंगजेब के बहुत जुल्म सहे तथा औरंगजेब इस्लाम विरोधी लोगों का नृशंसता पूर्वक दमन कर रहा था। गुरू तेगबहादुर ने कश्मीर की जनता को मुगल सम्राट की धर्मान्ध नीति का विरोध करने को भड़काया जिससे क्रुद्ध हो कर औरंगजेब ने उन्हें अपने दरबार में बुलाकर इस्लाम धर्म स्वीकार करने करे कहा गुरू तथा उनके दोनों बेटो केइंकार करने पर औरगजेंव ने 1675 ई. में उनका वध करवा दिया।उनके बातो में कहा जाता है कि सिर दिया पर सार (धर्म) न दिया गुरू तेगबहादुर ने धर्म के नाम पर अपने प्राण को उत्सर्ग कर दिया गुरू तेगवहादुर का वध मुगलों के पक्ष में अहित कर सिद्ध हुआ और दूसरी और सिक्खो में उत्तेजना का संचार हुआ। गुरू की निर्मम हत्या पर समस्त पंजाब में प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठी।[24] सिक्खो के दसवे तथा अंतिम गुरू गोविन्द सिंह ने अपने पिता की हत्या का बदला लेने का दृढ़ संकल्प किया 1699 मे वैसाखी के दिन खालासा पंथ की स्थापना की और सिक्खो को आदर्श सैन्य शिक्षा प्रदान करके एक शक्तिशाली सेना निर्मित की जिसकी सहायता से वे आजीवन मुगलो के अत्याचार का विरोध करते रहे।उन्होने प्रत्येक सिक्ख के लिए केश, कड़ा, कच्छा, कटार तथा कंघा हर समय अनिवार्य बना दिया। सिक्ख सम्प्रदाय को खालसा के नाम से पुकारा जाने लगा।

गुरूगोंविद सिंह के बाद वंदा वहादुर उनका उत्तराधिकारी बना उसने स्वतंत्र सम्राटो के समान मुद्राऐं प्रचलित की प्रथा विलासिता में रहने लगा। वहादुर शाह ने उसका दमन करने के लिऐ सेनाये भेजी जिनका सामना उसने धैर्य एवं साहसपूर्वक किया 1751ई. में वंदा बहादुर की मृत्यु हो गयी और सिक्खो को उसकी मृत्यु से महान आधार पहुँचा। नेतृत्वहीन सिक्कों पर मुगल सूबेदारों में भयानक अत्याचार कियें परन्तु सिक्कों ने अपने गुरूओं के आदर्श को नही त्यागा।नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण से मुगलों कि शक्ति कों निर्बल बना दिया तो सिख्खों ने सम्पूर्ण पंजाब पर अपना अधिकार कर के उसे 12 भागों में विभाजित कर दिया जो मिसिल कहलाते थे तथा सिख्खों के महान नेता

महाराज रणजीतसिंह ने समस्त मिसिलों को विजय कर के पंजाब में सिख्खों के एक शक्तिशाली एंव द्रढ़ राज्य का निर्माण क्यिा।

कबीर दादू रैदास नानकदेव सभी के उपदेश विचार तथा शिक्षा एक समान ही थी। फिर क्या कारण है कि गुरू नानकदेव के समकालीन संतों के पंथ तो लुप्त हो गये किन्तु सिख पंथ आज भी सप्राण और सजीव ही नहीं वल्कि सशक्त ओजस्वी और प्रवल रूप में प्रभावशाली बना हुआ है। इसके दो प्रमुख कारण थे एक तो यह कि आरंभ से ही इन अन्य पंथों के विपरीत गुरू नानकदेव के सिख पंथ के अधिकतर अनुयायी समृद्ध कृषक तथा वणिक व्यवसायी वर्ग के लोग रहे है। वाद में चलकर समृद्ध जाट किसान भी सिख बन गये पंजाब के जाटों में जातिवाद भी बहुत उग्र नहीं था इस कारण गुरू नानकदेव का समानता तथा बराबरी का संदेश पंजाब में आसानी से सर्वस्वीकृत एवं सर्वमान्य हो गया अनुयायियों के समृद्ध सक्षम एवं समर्थ होने के कारण पंथ जीवन बना रहा।

सिक्ख पंथ की सफलता का दूसरा कारण है कि बाद के गुरूओं ने संकीर्ण तथा कहर मुस्लिम शासकों के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए अपने अनुयायियों को ओजस्वी तथा प्रभावी बनाया, जिससे उनमें प्रबल उत्साह तथा शक्ति का संचरण हुआ और वे अपनी अलग पहचान स्थापित कर सके। सिख पंथ के अनुयायी आज भारत में ही नहीं सारे संसार में समृद्ध तथा प्रतिष्ठित व्यवसायों और पदों पर हैं सभी जगह उन्होंने उद्यम तथा परिश्रम से अपनी आर्थिक स्थिति और पंथ दोनों को मजबूत किया है उनके इन लक्षणों के कारण आज सिख शब्द ही परिश्रम तथा उद्यम का पर्याय बन गया है।

परंन्तु सिख धर्म का प्रचार-प्रसार पर्याप्त न होने के कारण यह सीमित स्थानों में सिमट कर रह गया और मुस्लिम के अत्याचारों ने भी संख्या नहीं बढ़ने दी इस कारण से सिख सम्प्रदाय अल्पसंख्यक है वैसे तो यह हिन्दू धर्म की ही एक शाखा थी परन्तु आज यह एक अलग पंथ के रूप में अपना स्थान भारत में बना लिया है इस कारण इनकी अनुयायियों की संख्या के कम होने से अल्पसंख्यक माना गया है तथा भारत के संविधान में पंथनिरपेक्षता की बात प्रस्तावना में की गयी है और उसी को संरक्षण करने के लिए अनुच्छेद 29 तथा 30 में मौलिक अधिकारों के रूप में इसे मान्यता दी गयी है।

ईसाई धर्म :-

ईसा मसीह को ईसाई धर्म का संस्थापक कहा जाता हे उनका जन्म रोमन साम्राज्य को गैलिली प्रांत में हुआ था। ईसा के जन्म ऐसे समय में हुआ जब यहूदी लोग गहरे संकट में थे। उनके देश पर रोम का अधिकार था। बहुत समय से वे रोमन साम्राज्य के अंकुश से मुक्त होने के लिए छटपटा रहे थे रोमन शासक हेरोड भ्रष्ट, लोलुप और निरंकुश था। ईसा मसीह ने एकांतवास में साधना की लौटने पर ये यहूदी पुरोहितों की तरह गांव-गांव घूमले लगे इनके साथ उनके कुछ शिष्य होते थै। गैलिली के गांवों में घूमते तथा

प्रवचन करते हुए ईसा ने कई ऐसे चमत्कारिक कार्य किये इनके छूने से अंधे देखने लगे , बहरे सुनने लगे, लूले-लंगड़े चलने लगे और मृत जीवित हो उठे। जिसे ईसा धीरे-धीरे मसीहा के रूप में प्रख्यात हो गये। फिर वह शिष्यों के साथ यरूसलम आ गये उनकी प्रसिद्धि के कारण लोग उनके दर्शकों के लिए व्याकुल थे तथा वड़ी भीड़ उनके प्रवचन सुनने उमड़ आयी। यहूदी मंदिर में जाकर उन्होंने साहूकारों को खदेड़ दिया तो भीड़ के उत्साह की सीमा न रही। ईसा की लोकप्रियता से सत्ता पक्ष शक्ति तथा भयभीत हो उठा। ईसा क्रांतिकारी धर्म प्रचारक ही नहीं वल्कि भंयकर विद्रोह और हिंसा का कारण बन सकते हैं इससे ईसा को छूठे आरोप में फंसाकर मृत्युदण्ड दिया उन्हें सलीब (क्रॉस) पर लटकाकर मृत्यृदण्ड की सजा दे दी गयी। लेकिन कुछ घंटों बाद ईसा पुनः जीवित हो उठे यह घटना ईसाई धर्म और इतिहास का मूलाधार है।

उत्तर भारत में प्रथम ईसाई धर्म प्रचारक सम्राट अकबर के दरबार में मौजूद थे वे जेसुइट फादर थे जिन्हें अकबर ने धार्मिक विचारों के आदान-प्रदान के लिए बुलाया था। अकबर ने एक फरमान द्वारा इन धर्मप्रचारकों को आगरा में एक चर्च स्थापित करने की अनुमति भी दी थी। इसी काल में ईसाई धर्म प्रचारक रोथ ने लैटिन में संस्कृत व्याकरण प्रकाशित करायी थी किसी भी यूरोपीय भाषा में यह कार्य पहली बार हुआ था।

भारत में ये तीन शाखाएं विद्यमान है भारत में यह मान्यता है कि ईसा के प्रमुख शिष्यों में से एक संत टामस स्वयं मद्रास के पास आकर बसे थे और ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार किया था। इस क्षेत्र में ईसाई धर्म स्वंतत्र रूप से विकसित होता रहा 16वीं शताब्दी में जब पुर्तगालियों के साथ रोमन कैथोलिक धर्म के प्रचारक भारत आये तो दक्षिण के ईसाईयों के पोप ने कैथोलिक चर्च से संबंध स्थापित किये किन्तु ईसाईयों के इस हिस्से ने पोप की सत्ता स्वीकार नहीं थी।अतः इन लोगों के केरल में जेकोवाइट चर्च स्थापित हुए। केरल के कैथोलिक चर्च में रीति और अनुष्ठानों वाली तीन शाखाएं है सीरियन मलाबारी, सीरियन-मालीकारी और लैटिन पर इन तीनों में धार्मिक विभेद नहीं है।[25]

गोवा मंगलौर-महाराष्ट्रियन समूह भाषा एवं संस्कृति में पश्चिम से प्रभावित थे तो तमिल समूल अपनी प्राचीन भाषा और परंपराओं से जुड़ा रहा। केरल में काका वेयत्तिरा जैसे देशभक्त और फादर स्टीफेन्स ने ईसाई धर्म के देशीकरण पर जोर दिया इन्होंने तमिल, तेलुगू भाषाएं सीखी स्वयं भारतीय संन्यासी की तरह जीवन व्यतीत किया और स्थानीय रीति रिवाज बनाये रखने पर जोर दिया।

प्रोटेस्टेन्ट धर्म का भारत आगमन 1706 ई में हुआ दी. जीगेनवाला ने तमिलनाडू के ट्रंकवार में और विलियम केरी ने 1800 में कलक्ता के निकट लूथरन चर्च स्थापित किया। साधु सुंदरसिंह, नारायण वामन तिलक, धनजी भाई नौरोजी और सी एफ. एंडमंड प्रमुख प्रोटेस्टेंट हुए हैं। एंडमंड ने महात्मा गांधी के साथ सामाजिक सुधारों तथा भारतीय आजादी के संघर्ष में भी हिस्सा लिया। आज देश में

बहुत से स्त्री पुरूष संन्यास आश्रम को अपनायें हुए है जिन्हें ब्रदर्स या फादर या सिस्टर या मदर कहा जाता है। इसी प्रकार का एक विश्व प्रसिद्ध समुदाय मदर-टेरेसा का कलकत्ता स्थित मिशनरीज ऑफ चेरिटी है जो 1950 में स्थापित हुआ था। परंतु भारत में इस धर्म का प्रसार अधिक न होने के कारण अधिक लोकप्रय नहीं हो पाया है अतः यह लोग या इसके अनुयायी हमेशा से ही अल्पसंख्यक रहे है और आज भी अल्पसंख्यक ही है। उपरोक्त धर्म के अनुयायी जनसंख्या के आधार पर कम होने के कारण अल्पसंख्यक माने जाते हैं।

जैन धर्म -

'जिन' को मानने वाले ,मौलिक संन्यास को मानने वालो का समुदाय इस की स्थापना छटवीं सदी के लगभग हुई। जिन नामक प्रतिष्ठा सूचक शीर्षक महान गुरूओ एवं आचार्यो ने दिया है जैन वाद में मुख्यतः चौबीस महान संतो की एक परम्परा को जैन धर्म में 'तीर्थकर' के नाम से जाना है। जैन के सिद्धांत तथा इतिहास धार्मिक विश्वास उद्भूत हुआ है जिसका सबंध जीतने से है अर्थात् इसका अंतिम लक्ष्य भौतिक जगत पर पूर्ण विजय प्राप्त करना है।

जी.टी.विटैनी[26] के अनुसार धार्मिक विश्वकोष के अनुसार जैन दर्शन शास्त्र एक स्वंत्रत धर्म के रूप में परिभाषित किया है। अनेक शोधार्थियों द्वारा ऐसा विश्वास किया जाता है कि जैन धर्म तथा बौद्व धर्म दोनों एक दूसरे के समकालीन धर्म थे तथा दोनों का उद्भव ब्राहमण बादी कर्मकाण्डों के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ है इन दोनों में कुछ समानताएं है परंतु ये ऐसा प्रदर्शित नहीं करते है कि एक धर्म का उदय दूसरे हुआ इनका विकास एक ही समय हुआ बौद्व धर्म एक ऐसा धर्म था जिसे अधिकतर लोगों द्वारा स्वीकार किया गया इसका विस्तार क्षेत्र काफी अधिक था इस धर्म ने जैन धर्म के फैलाव व विस्तार को भी प्रभावित किया जबकि जैन धर्म एक कम कर्मकाण्ड वादी तथा अपने सेवाभावी व्यवहार के कारण अधिक जाना जाने वाला धर्म बना तथा भारतवर्ष अपने जन्म से लेकर वर्तमान समय तक विकसित हुआ तथा हो रहा है। जबकि बौद्व धर्म भारत, अपनी जन्म भूमि से विलुप्त हो गया।

इनसाइक्लोपीडिया बिट्रेनिका[27] के अनुसार - जैनिज्म एक धर्म तथा दर्शन के रूप में ,छठी सदी में महावीर ,चौवीसबें तीर्थकर द्वारा पुनः स्थापित हुआ। जैन धर्म के महान संतो के जिनके द्वारा दिये गये उपदेशो पर यह धर्म आधारित है उनके द्वारा इसकी स्थापना अंधविश्वासी , कर्मकाण्डों से परिपूर्ण वैदिक धर्म के विरोध में हुई जैन धर्म किसी भी निर्माता भगवान के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता बल्कि उसका एक नैतिक सूत्र अहिसां सिद्वांत या सभी जीवो को किसी भी प्रकार की हिंसा से बचाना ,पालन करना है तथा धार्मिक आर्दश के रूप में यह मानव के संम्पूर्ण विकास में विश्वास करता है जो सन्यास तथा वैराग्य धारण करके ही प्राप्त किया जा सकता है ।

आगे भी इसका वर्णन इनसाइक्लोपीडिया बिट्रेनिका के अनुसार - जैनिज्म एक धर्म तथा दर्शन के रूपमें ,छठी शदी में महावीर ,चौबीसवें तीर्थकर द्वारा पुनः स्थापित हुआ। जैन धर्म के महान संतो के जिनके द्वारा दिये गये उपदेशो पर यह धर्म आधारित है उनके द्वारा इसकी स्थापना अंधविश्वासी , कर्मकाण्डों से परिपूर्ण वैदिक धर्म के विरोध में हुई जैन धर्म किसी भी निर्माता भगवान के अस्तित्व में विश्वास नहीं करता बल्कि उसका एक नैतिक सूत्र अहिसां सिद्वांत या सभी जीवो को किसी भी प्रकार की हिंसा से बचाना ,पालन करना है तथा धार्मिक आर्दश के रूप में यह मानव के संम्पूर्ण विकास में विश्वास करता है जो सन्यास तथा वैराग्य धारण करके ही प्राप्त किया जा सकता है ।

आगे भी इसका वर्णन इनसाइक्लोपीडिया बिट्रेनिका में करती है कि अन्य धर्म तथा जैन धर्म में , अनेको विभिन्नताएं होते हुए भी प्रमुख अन्तर जैन धर्म के दर्शन को लेकर है ऐसा मत विदेशी शोधकर्त्ताओं द्वारा किया गया परंतु भारतीय शोधकर्त्ताओं के द्वारा लिखे साहित्य में भी जैन धर्म को एक अलग विश्वास एवं दर्शन वाला धर्म बताय गया है जो वैदिक दर्शन से भिन्न है ।

भारत की सांस्कृतिक विरासत पर कार्य शाला की अध्यक्षता करते हुए डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने प्रागऐतिहासिक काल की प्रारंभिक अवस्था वैदिक , उपनिषद् , जैन तथा बौद्व धर्म के संबध में कहा कि जैन धर्म व दर्शन एक अत्यंत दुर्लभ अद्धितीय समानंतर परम्परा है जो वैदिक संस्कृति के समान अत्यंत प्राचीन एवं समानांतर विकसित है । इस में संक्षिप्त ऐतिहासिक वर्णन देते हुये कहा है कि जैन अपने धर्म के प्रति एक महान तथा अद्‌भुत प्राचीनता रखते इस के सबसे प्रथम गुरू ऋषभदेव थे भगवत् गीता तथा पुराणो में भी वर्णित है पुरातन या वैदिक साहित्य में एक ऐसा वर्णन मिला है जिसमें अपने आप को मजबूती से वैदिक धर्म के प्रति खडा रखा एवं जानवरो की हिन्सा का घोर विरोध किया । जैन परम्परा के अनुसार महाभारत युद्ध के समय नेमीनाथ नामक भगवान के द्वारा चलाया गया जो एक यदुवंशीय थे। श्रीकृष्ण भी इसी वंश के थे । नेमीनाथ को 22 वॉ तीर्थ कर कहा जाता है । जैन धर्म का विकास 23 वें तीर्थाकर पार्श्वनाथ के समय आठ सदी ईसा पूर्व में हुआ । इन का जन्म वाराणसी में हुआ था इन्होने जो संघ बनाया उसे श्रवण संघ के नाम से जानते है जो आगे चल कर महावीर एवं बुद्ध के समय दो भागो में विभक्त हुआ जिससे जैन धर्म और बौद्ध धर्म का विकास हुआ । इस प्रकार जैन एवं बौद्ध धर्म को एक ही मूल से उत्पन्न हुआ मानाजाता है ये सन्दर्भ जैन धर्म को एक अलग धार्मिक परम्परा के रूप में स्थापित करते है जो भारत वर्ष में काफी पुरातन था। वैदिक वाद एवं दर्शन के विरोध में उत्पन्न हुआ थाा इस प्रकार उपरोक्त साहित्य एवं कार्य जैन धर्म के स्वतंत्र अस्तित्व को सिद्व करते है तथा जैन इस समुदाय के ईसा के सात सौ वर्ष के पूर्व उद्धित हुआ मानते है।

राजस्थान उच्च न्यायालय सज्जन लाल बनाम राजस्थान राज्य[28]में निर्णय देते

हुये कहा कि तीन प्रश्नो का उत्तर निर्धारित किया जाना प्रथम तो यह है कि श्री ऋषभ देव जी का मंदिर एक श्वेताम्बर जैन मंदिर है या एक हिन्दू मंदिर है इस केसन्द्रर्भ में अनेको प्राचीन दस्तावेजो के अध्ययन से जिसमें मुगल सम्राट अकबर द्वारा हरि विजय सूरी को दान दिये गये पर्वतीय क्षेत्रो का वर्णन शामिल है तथा ये पर्वतीय क्षेत्र धार्मिक स्थल तीर्थ स्थल है जो जैन श्वेताम्बर को दिये गये है इन्हे हरि विजयसूरी को जो जैन धर्म को मानने वाले है दान स्वरूप दिये गये थे अथवा ऋषभ देवे जी का मदिर है भले ही निश्चत जो कि यह एक श्वेताम्बर तीर्थ है या दिगम्बर तीर्थ परन्तु वर्तमान परिपेक्ष में इस तथ्य को नकारा नही जा सकता कि अकबर ने जैन धर्म को एक स्वतंत्र धार्मिक समुदाय का स्तर प्रदान किया था तथा जैन समुदाय का रूप परिर्वतन इस बात को लेकर नही किया जा सकता कि इसमें जाने वाली सामजिक क्रियायें विवाद उत्तराधिकार सम्पत्ती आदि ठीक उसी प्रकार है जैसे हिन्दू द्वारा। इस में दो विभिन्न क्षेत्र है।

आर्य समाज शैक्षणिक बनाम शिक्षा निर्देशक दिल्ली प्रशासन जैन धर्म को दिल्ली केन्द्र शासित एक विशिष्ट धर्म का दर्जा दिया जाता है। श्री **जैन श्वेताम्बर तेरहपन्थी विद्यालय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य**[29] में श्री जैन श्वेताम्बर जैन तेरहपन्थी विद्यालय जो पश्चिम बंगाल सोसायटी रजिस्टेशन के अन्तर्गत ने चुनौती दी कि राज्य ने सोसायटी के प्रंबध समिति के कार्यो में दखल देते हुये तदर्थ समिति की स्थापना की जो उस के प्रशासन की देख रेख करे इस प्रकार विद्यालय ने अपना पक्ष रखते हुये कि यह एक शैक्षणिक संस्था जैन का एक अल्पसंख्यक समुदाय है उसके द्वारा प्रशासित और प्रबंधित की जाती है इस प्रकार राज्य ने सुरक्षा के अधिकार (अनुच्छेद 29 एवं 30) के अन्तर्गत विरोध करते हुये कहा कि जैन समुदाय एक अल्पसंख्यक समुदाय नही है बल्कि हिन्दु का ही एक वर्ग है ना कि एक विशिष्ट धर्म बात को न्यायालय ने खारिज करते हुये अल्पसंख्यक समुदाय के स्तर के संबंध में कहा कि प्रथम तो यह निश्चित करना चाहिये कि श्वेताम्बर धर्म को मानने वाले व्यक्ति संख्यात्मक रूप से एक अल्पसंख्यक समुदाय का निर्माण करते है यह पूरे प्रदेश की जनसंख्या के रूप में होनी चाहिऐ इस वात को स्वीकृति प्रदान करते हुये कहा कि जैन समुदाय एक अल्पसंख्यक समुदाय है जिसकी पुष्टी 1971 की जनगणना से होती है। स्पष्टत: यह आधारशिला कि ऐसे शैक्षणिक संस्थाएं उस अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित की गयी होगी जो कि इस अधिकार के स्थापित न होने का दावा करती हैं।

आन्ध्रकेशरी शिक्षण संस्थान बनाम आन्ध्रप्रदेश[30] के वाद में प्रतिवादी ने प्रारंभ से ही प्रार्थना कि उस में संस्थान को एक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान के रूप में घोषित संरक्षित किया जाये तथा वस्तुत: ऐसी स्वीकृति अल्पसंख्यक आयोग द्वारा 1992 के अधिनियम की धारा 2-स के द्वारा

की जाती है और इस के अभाव में याचिका को पूरी तरह से खारिज कर दियां गया और कहा गया कि किसी भी अल्पसंख्यक समुदाय को उचित स्तर प्रदान करना केवल राज्य आयोग का कार्य है तथा राजस्थान राज्य में जैन समुदाय को ऐसा समुदाय घोषित किया गया है कि इस प्रकार के संस्थानो की स्थापना करने वालो के द्वारा न केवल व्यक्तिगत लाभ एवं हितो के लिए की गयी हो बल्कि उसकी स्थापना तथा प्रबंध किसी अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा किया गया हो

जो भी हो जो भी अधिकार चलन में हो किसी समुदाय को पहचानने के उद्धेश्य से तथा अल्पसंख्यक मानने के उद्धेश्य ने कई तथ्यो पर निर्भर करता है। पिटीशन के दावे पर आते हुये दो तथ्यो का नकारा नही गया प्रथम जैन धर्म की एक विशेष धर्म के रूप मे पहचान तथा द्वितीय जैनो की राजस्थान राज्य में जन संख्या राज्य की जन संख्या के 50 प्रतिशत से कम है। इस के संबंध में भी पर्याप्त समय उपलब्ध है कि जैन वाद अर्थ धर्म से पूर्णत: भिन्न धर्म है दर्शन दंत महाविद्यलय जैसी एक शैक्षणिक संस्था में प्रवेश को लेकर एक विवाद उपन्न हो गया था।

सर्वप्रथम 1991 की जनगणना में भी समुदायो के वारे मे कथन है परन्तु उन समुदायो की वारे में जो प्रमुख रूप से धार्मिक समुदायो के सम्प्रदाय है। प्रतिवेदन का निम्नलिखित भाग वर्तमान उद्धेश्यो पर भी प्रकाश डालता है कि क्या जैन वाद एक विशेष तथा पृथक है और जैन समुदाय एक धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय है।

''अल्पसंख्यक'' होने के विभिन्न आधारों में धर्म का बड़ा महत्व हैं। धर्म विशिष्ट सामा. उद्देश्यों के प्रति तथा समूह के प्रति तथा अपने समूह के प्रति लौकिक तथा पारलौकिक आधारों पर दृढ निष्ठा उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार उस समूह की पहचान पक्की हो जाती है और वह अपने सदस्यों को दृढ़ संबंधों में बांधे रखता है धीरे धीरे धार्मिक संबंध अन्य सांस्कृतिक आर्थिक एवं राजनीति के आधार बन जाते हैं। इससे समाज के विभिन्न वर्गो में अल्पसंख्यक, बहुसंख्य एवं प्रभावी व अप्रभावी वर्गो की समस्या उत्पन्न हो जाती है इस प्रकार अल्पसंख्यकों की समस्या अथवा साम्प्रदायिकता की समस्या विशिष्ट धर्म की प्रवृत्ति तथा उसके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक संगठन से जुड़ जाती है

सरकार द्वारा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 (1992 का 19) की धारा 2 के खण्ड (ग) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उक्त अधिनियम के प्रयोजन के लिए मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध और पारसी समुदायों को अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित किया गया है। संविधान में कहीं भी स्पष्टतौर पर उन धर्मों का उल्लेख नहीं किया गया है जिनको अल्पसंख्यक माना जा सकता है जनगणना रिपोर्ट और उच्चतम एवं उच्च न्यायालयो के निर्णयों के आधार पर अल्पसंख्यकों की स्थिति का निर्धारण किया जा सकता है इसके अतिरिक्त विधायिका द्वारा

अल्पसंख्यकों का निर्धारण किया जा सकता है। अल्पसंख्यकों अधिकारों के दावे के लिए दावेदार समुदाय को संस्थापक रूप में देश अथवा राज्य में उस देश अथवा राज्य की कुल जनसंख्या के संदर्भ में अल्पसंख्यक होना चाहिए।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष ताहिर महमूद के अनुसार भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों की कोई परिभाषा नहीं दी गई है परन्तु अल्पसंख्यकों से संबंधित दो धारणाएँ अवश्य है। एक धारणा मजहबी है व दूसरी भाषा से संबंधित है यानी मजहबी अल्पसंख्यक और भाषाई अल्पसंख्यक। कुछ मजहब ऐसे है जिनके मानने वाले राषट्रीय स्तर पर अल्पमत में हैं, उन्हें मजहब पर आधारित अल्पसंख्यक माना गया है जो भाषा की दृष्टि से किसी ऐसे स्थान पर रहते हैं जहाँ उस भाषा के बोलने वाले अल्पसंख्या में हैं। उन्हें भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक कहा जाता है।

भारत में भाषीय अल्पसंख्यक-

भाषायी अल्पसंख्यों का आधार भाषा है। संविधान की आठवी अनुसूची 15 भाषाओं को मान्यता देती है। किन्तु इनके अतिरिक्त भी भाषाएँ एवं बोलियाँ हैं। इनकी संख्या 179 भाषाएँ तथा 544 क्षेत्रीय बोलियाँ हैं। बधवा के अनुसार- भाषायी अल्पसंख्य का राज्य स्तर पर यह अर्थ है कि राज्य स्तर पर जनता के किसी उस समुदाय से अर्थ लिया जाता है, जिसकी मातृ भाषा उस राज्य की प्रमुख भाषा से भिन्न है तथा जिला एवं तालुका स्तरों पर वह जिला एवं तालुका की प्रमुख भाषा से भिन्न है।

भारत संसार का एक मात्र ऐसा देश है जिसका संविधान कुछ मामलों में भाषायी व धार्मिक अल्पसंख्यों की बहुसंख्या से अधिक अधिकार प्रदान करता है संविधान की अनु. 30 के कारण राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार अल्पसंख्यों की शैक्षणिक, सामाजिक तथा अन्य प्रकार की संस्थाओं पर अन्य कोई नियम लागू नहीं कर सकती जो कि विधानमंडल तथा संसद ने विधिवत् स्वीकार किए है।

1. भारत के संविधान के अंतर्गत संवैधानिक संरक्षण भाषा, जाति अल्पसंख्यकों को संविधान में अंतर्गत निम्नलिखित संरक्षण प्रदान किये गये है।

1. अनुच्छेद 29 अल्पसंख्यक वर्गो के हितों का संरक्षण-

अनुच्छेद 29(1) भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी विभाग को जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद29 1(2)राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इसमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जायेगा।

2. अनुच्छेद 30 शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गो का अधिकार-

अनुच्छेद30 (1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

अनुच्छेद30 (1-कं) खण्ड (1) में निर्दिष्ट किसी अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधि बनाते समय राज्य यह सुनिश्अिनुच्छेदचत करेगा कि ऐसी सम्पत्ति के अर्जन के लिए ऐसी विधि द्वारा नियत या उसके अधीन अवधारित रकम ऐसी हो जो उस खण्ड के अधीन गारंटी दिए गए अधिकार को निर्वन्धित या निराकृत न करें।

अनुच्छेद 30(2)शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरूध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबंध में है।

3. अनुच्छेद 347 किसी राज्य की जनसंख्या के किसी विभाग द्वारा बोली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध-

यदि इस निमित्त मांग किए जाने पर राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए तो वह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जो वह विनिर्दिष्ट करे शासकीय मान्यता दी जाए।

4. अनुच्छेद 350: शिकायतों को दूर करने के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा- प्रत्येक व्यक्ति किसी शिकायत को दूर करने के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।

(अ) अनुच्छेद 350 (क): प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएँ- प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

(अअ)अनुच्छेद 350 (ख): भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष अधिकारों -

(1) भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

(2) विशेष अधिकारी का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन विषयों के संबंध में ऐसे अन्तरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें, राष्ट्रपति को रिपोर्ट दे और राष्ट्रपति ऐसी सभी रिपोर्टों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जायेगा और संबंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

(ख) संरक्षणों के व्यावहारिक कार्यान्वियन की विस्तृत योजना

इस योजना के अंतर्गत उन क्षेत्रों में जहाँ भाषा जात अल्पसंख्यक वहां की स्थानीय जनसंख्या के 15 या उससे अधिक हो नियमों, विनियमों सूचनाओं आदि का अल्पसंख्यक भाषाओं में अनुवाद और प्रकाशन, उन जिलों में जहाँ अल्पसंख्यक भाषा, बोलने वाले वहाँ की जनसंख्या के 60% या अधिक हों, अल्पसंख्यक भाषाओं की द्वितीय राजभाषा के रूप में घोषणा अल्पसंख्यक भाषाओं के अभ्यावेदनों को स्वीकारना और उनके उत्तर देना प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा के शिक्षण, माध्यमिक स्तर पर अल्पसंख्यक भाषाओं के माध्यम से शिक्षा भाषायी अल्पसंख्यक छात्रों की भाषायी वरीयता का अग्रिम पंजीयन एवं शिक्षण संस्थाओं के बीच समायोजन अल्पसंख्यक भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों और अध्यापकों का प्रावधान, त्रिभाषा सूत्र का कार्यान्वियन राज्य सेवाओं में भर्त्ती के मामले में अल्पसंख्यक भाषाओं का स्थान, संभाग, राज्य एवं जिला स्तर पर भाषाई अल्पसंख्यकों के प्रदत्त संरक्षणों के कार्यान्वियन के लिए उपयुक्त तंत्र की स्थापना और अल्पसंख्यक भाषाओं में भाषायी अल्पसंख्यकों को प्रदत्त अल्पसंख्यक का विवरण देने वाली पुस्तिकाओं का प्रकाशन सम्मिलित है।

3. भाषाजात अल्पसंख्यकों के संरक्षणों के कार्यान्वियन का आधारभूत उत्तरदायित्व-

भाषाजात अल्पसंख्यकों के संरक्षणों के कार्यान्वियन के आधारभूत उत्तरदायित्व प्रदेश सरकारों /संघ शासित क्षेत्रों के प्रशासनों का होता है जिनसे इस कार्य के लिए एक नोडल अधिकारी की नियुक्त करने की अपेक्षा की जाती है जिसका सक्रिय सहयोग भाषाजात अल्पसंख्यकों के हितों को सुरक्षित करने की कुन्जी है।

4. भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त के संगठन की भूमिका एवं महत्व-

भारत के संविधान के अनुच्छेद 350 (1)एवं (2)में भारत के भाषाजात अल्पसंख्यकों के लिए एक विशेष अधिकारी का प्रावधान है जिसे औपचारिक रूप से भारत के भाषाजात अल्पसंख्यमों के आयुक्त के नाम से पदनामित किया गया है।

अनुच्छेद 350 (ख), संविधान (7 वां संशोधन) अधिनियम, 1956 के तहत भारत

सरकार द्वारा 1956 में राज्य पुनर्गठन आयोग की संस्तुतियों को स्वीकारने के फलस्वरूप जोड़ा गया।

भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त का आधारभूत कार्य भाषाजात अल्पसंख्यकों को प्रदत्त संरक्षकों की जांच-पड़ताल करना और उन विषयों पर राष्ट्रपति को ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें रिपोर्ट देना है। राष्ट्रपति ऐसी सभी रिपोर्ट को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाते है। इसके अतिरिक्त, भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त महत्वपूर्ण मुद्दों पर भी अपनी रिपोर्ट तैयार कर सकते हैं और भारत सरकार तथा संबंधित राज्यों / संघ शासित क्षेत्रो के मुख्य मंत्रियों / उप-राज्यपालों को प्रस्तुत कर सकते हैं। भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त का संगठन भारत सरकार के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में है।

5. भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त के संगठन की कार्य पद्धति -

भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त का संगठन भाषायी अल्पसंख्यकों को प्रदत्त संरक्षकों से संबंधित ऐसे सभी मामलों पर कार्यवाही करता है जो कि भाषाजात अल्पसंख्यक व्यक्तियों / समूहों / संस्थाओं / संगठनों द्वारा इसकी जानकारी में लाए जाते हैं। भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त का संगठन भाषाजात अल्पसंख्यकों को प्रदत्त संरक्षकों से संबंधित योजनाओंका कार्यान्वियन सुनिश्चित करने हेतु राज्य सरकारी / संघ क्षेत्र प्रशासनों से बराबर सम्पर्क बनाये रखता है।

इसके अतिरिक्त भाषाजात अल्पसंख्यकों के आयुक्त, भाषाजात अल्पसंख्यकों के संरक्षकों की योजना के कार्यान्वियन की स्थिति का मौके पर मूल्यांकन करने हेतु भाषाजात अल्पसंख्यक क्षेत्रों और शैक्षणिक संस्थाओं का दौरा करते रहते हैं।

आयुक्त, राज्यपालों / मुख्य मंत्रियों, उप-राज्यपालों से विचार-विमर्श करते रहते हैं। आयुक्त शीर्षस्थ प्रशासनिक अधिकारियों जैसे मुख्य सचिव, प्रधान सचिव (शिक्षा) और भाषाजात अल्पसंख्यकों के संरक्षकों की योजनाओं के कार्यान्वियन की देख-रेख करने वाले विभागों के प्रधान सचिवों से भी बातचीत करते रहते हैं। जिलों के दौरों के समय आयुक्त, जिलाधिकारियों / मण्डलायुक्तों और उनके अधिकारियों से भी चर्चा करते हैं।

उद्देश्य :-

वर्थ के अनुसार अल्पसंख्यक चार उद्देश्यों को लेकर चलते हैं।

1. एक अल्पसंख्यक बहुउद्देशीय हो सकता है तथा वह विभिन्नताओं की सहिष्णुता तथा अवसर की समानता के आधार पर अपनी पहचान व संस्कृति को बनाये रखने की दिशा में कार्य करता है।

2. कोई अल्पसंख्यक अन्ततोगत्वा अपना अस्तित्व समाप्त करके अन्य प्रभावी समूहों में विलीन

होने का प्रयास कर सकता है, यह प्रकार ऐसे राजनीतिक राज्य का सांस्कृतिक दृष्टि से समग्र अंग बनने का प्रयास करता है इसमें अल्पसंख्यक मूल्यों एवं परम्पराओं को समाज की एकता के लिए खतरा माना जाता है यह स्वीकार दिया जाता है कि सभी दिशाओं में राजनैतिक प्रभावी समूहों को विद्यमान रहना चाहिए।

3. एक अल्पसंख्यक समूह प्रभावी समूह से राजनैतिक अथवा सांस्कृतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए विघटनकारी उद्देश्य रख सकता है।

4. किसी अल्पसंख्यक के लक्ष्य बल प्रयोगात्मक अथवा मौखिक हो सकते हैं जिसके द्वारा वह केवल सहिष्णुता, विलय अथवा विघटन में रूचि नहीं रखता अपितु बहुसंख्यक अथवा अन्य अल्पसंख्यों पर राजनैतिक प्रभुत्व जमाने का प्रयास कर सकता है।

अल्पसंख्यक आयोग का गठन

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग सर्वप्रथम 1978 में 1992 के अधिनियम के पहले बनाया गया था। जिसने कि काफी फलंनः केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित किये गये थे, शामिल थे। 1992 के अधिनियम के क्रियान्वयन के पहले आयोग की गतिविधियों का छोड़ आदेश की शर्तों के द्वारा शासित किया जा सकता था जिसके अंतर्गत 1992 की घोषणा के बाद आयोग का गठन किया गया था। आयोग की गतिविधियों का क्षेत्र तथा विस्तार 1992 के अधिनियम के अनुसार शासित किये जाते थे।

अल्पसंख्यक अधिकारों का निर्धारण के उद्देश्य राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग 1992 ने अल्पसंख्यक शब्द की परिभाषा कहीं भी नहीं देता परन्तु यह अल्पसंख्यक की अभिव्यक्ति को परिभाषित करता है। कि इस प्रकार केन्द्र शासन द्वारा एक समुदाय की व्याख्या की गयी है इस प्रकार अधिनियम की सीमाओं के अंतर्गत केन्द्रीय शासन द्वारा अधिसूचना जारी की गयी।

धारा 2-स के अंतर्गत इस अधिनियम के उद्देश्य हेतु वाक्यांश को समझने के लिए अधिनियम के प्रावधानों को समझना आवश्यक है अधिनियम की प्रस्तावना में, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की संरचना से संबंधित घटनाओं पर विचार था। दिया गया है बिना किसी सांविधिक आधार के 1992 के अधिनियम से पहले एक अल्पसंख्यक आयोग 1978 में था।

अधिनियम की धारा 3 में आयोग का संविधान अल्पसंख्यक के सदस्य के रूप में केवल अल्पसंख्यक ही नामांकित किये जा सकते हैं अतः आयोग के सदस्य हेतु ऐसे व्यक्ति इसमें शामिल किये जा सकते हैं जो कि ऐसे किसी समुदाय से है जो कि केन्द्र सरकार द्वारा धारा 2 स के द्वारा घोषित किए गये हैं। इसलिए अधिनियम के उद्देश्यों में से एक को पूरा करने के लिए एक अल्पसंख्यक आयोग संविधिक स्तर पर अपनी संवैधानिक नीति संदर्भित करता है। इस प्रकार का चुनाव क्षेत्र केन्द्र शासक

द्वारा उपलब्ध कराया जाना था 1992 के अधिनियम की धारा 9 में वर्णित आयोग को दिये गये कार्यों को पूरा करने तथा इसके उद्देश्यों को पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार ने कुछ कार्य अल्पसंख्यकों के नाम कर दिये हैं जिसके संबंध में आयोग अल्पसंख्यक समुदायों के विकास और उन्नति की जांच करते हुए सूचनाएँ एकत्रित करेगा।

यह न तो केन्द्र शासन को धार्मिक समुदाय को कल्याणकारी समुदाय के रूप में दर्ज करने की बात कहता है और न ही इससे संबंधित कोई कार्य शासन को देता है यह किसी समुदाय के अधिकार संरक्षण संबंधी दावों को शामिल नहीं करता जिसके अंतर्गत संविधान के किसी समुदाय द्वारा शैक्षणिक संस्था चलाने संबंधी प्रावधानों पर विचार किया करता है।

अल्पसंख्यक आयोग की गतिविधियों के क्षेत्र के विस्तार का निर्धारण करने से वे धर्म जिन्हें कि केन्द्र सरकार द्वाराअल्पसंख्यक कहा गया है आयोग को आवश्यक आधार प्रदान करते हैं। यदि यह माना जाये कि आयोग अन्य समुदायों के सापेक्ष सूचनाएँ एकत्रित कर सकता है और उन्हें अनुसंशाओं के रूप में उन समुदायों के रूप में प्रयोग कर सकता है जो कि केन्द्र सरकार द्वारा मान्य नहीं दिये गये हो तब आयोग की धार्मिक समुदायों के परे देखने तथा समझने की धारणा इसके शोध का भाग है तथा उनके संवैधानिक अधिकारों के संदर्भ में अनुसंशाएँ भी करना कमीशन के उद्देश्य का भाग है यह तथ्य कि आयोग समुदायों जो कि धारा 2 स के अंतर्गत अधिसूचना में है उनके परे देख सकता है तथा परामर्श दे सकता है तथा उनके संवैधानिक अधिकारों के बारे में अनुसंशाएँ कर सकता है। इस बात का प्रमाण भारत में उन धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों का अस्तित्व है जो कि अधिसूचना में उल्लेखित रहीं है न ही यह अधिनियम का उद्देश्य हो सकता है जो कि संवैधानिक अधिकारों और उनके संरक्षण का विरोध करें।

यह उद्देश्यों के कारण अतिरिक्त कथन को देख लेना भी उचित होगी ताकि पता किया जा सके कि कोई शुद्धि महाधिवक्ता के द्वारा दिये गए कथनों पर दी जा सकती है या नहीं कि एक समुदाय जो कि धार्मिक अल्पसंख्यकों समुदाय होने का दावा करती है और जो कि अघोषित भी है का सरंक्षण देने से अनुच्छेद 30 के अनुसार इंकार किया जा सकता है।

संविधान में अल्पसंख्यक समुदाय को स्पष्ट न किये जाने के कारण किसी भी 50% से कम संख्या वाले समुदाय को अल्पसंख्यक माना जा सकता है। किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने **डी. ए. वी कालेज जालन्धर बनाम स्टेट आफ पंजाब**[31] में निर्णय दिया कि संपूर्ण जनसंख्या के संदर्भ में अल्पसंख्यकों का निर्णय करना चाहिए किन्तु इस न्यायिक परिभाषा के बाद भी समस्या बनी रहती है उस राज्य में जनसंख्या धर्म और संस्कृति के आधार पर इतनी अधिक बटी हुई हो सकती है कि वहां कोई 50 %

वाला कोई बहुसंख्यक समुदाय ही नहीं हो जिसके विरूद्ध अल्पसंख्यक संरक्षण की मांग कर सके। इसके अलावा कोई एक समुदाय किसी राज्य विशेष में अल्पसंख्यक हो सकता है, किन्तु शेष भारत में, पंजाब में सिक्ख जम्मू कश्मीर में मुस्लिम तथा नागालैण्ड में ईसाई, बहुसंख्यक हो सकता है। ऐसे अल्पसंख्यक दोहरा व्यक्तित्व रख सकते है और वे राज्य में अल्पसंख्यक होने के साथ-साथ राष्ट्र में भी अल्पसंख्यक हो सकते है। इस प्रकार केवल संख्या के आधार पर अल्पसंख्यक को स्वीकार करना या मानना भ्रम उत्पन्न कर सकता है।

अनुच्छेद 29 व 30 का लक्ष्य यह है कि लिपि व भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक परिस्थितियों अथवा दबाब से अपनी भाषा संस्कृति व लिपि को छोड़ने के लिए विवश नहीं हो जाये। यदि एक विशिष्ट समुदाय जो राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक है किन्तु किसी विशिष्ट राज्य में बहुसंख्यक है तो एक समुदाय अपने बल पर दी क्योंकि उस राज्य के भीतर ऐसा कोई भ्रम या कंकर उत्पन्न नहीं हो सकता।अल्पसंख्यक को संरक्षण देने का मूल आधार ही यह है कि राजनीतिक दृष्टि से कमज़ोर समूहों को उनकी संस्कृति में बहुसंख्यकों से बचाया जाये। यदि भय या संकट नहीं हो तो संरक्षण की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। डॉ अम्बेडकर ने इसी दृष्टि से अल्पसंख्यकों के लिए राजनीतिक संरक्षण की आवश्यकता बतायी थी।

अम्बेडकर ने अल्पसंख्यक आरक्षण की आवश्यकता को संख्यात्मक दृष्टि से ही नहीं माना अपितु दूसरे सत्ता तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण माना है ताकि वे आर्थिक राजनीतिक दबाबों में आकर सांस्कृतिक अधीनता को प्राप्त नहीं हो जाये। परन्तु सुब्बाराव ने कहा कि ऐसे शक्तिशाली अल्पसंख्यों को विशेषत: आरक्षण की आवश्यकता ही नहीं होती। भारतीय न्यायपालिका को प्रभावी अल्पसंख्यों को तकनीकि अथवा कानूनी आधार पर विशेष संरक्षण देने की प्रवृत्ति से बचना चाहिए।

संविधान का उद्देश्य वास्तविक अल्पसंख्यकों की रक्षा करना है के. सुब्बाराव ने भी कहा है कि राज्य के संरक्षण की आवश्यकता इस धर्म या उस धर्म अथवा इस भाषायी समूह या उस भाषायी समूह से संबंधित उन लाखों लोगों को नहीं है, किन्तु उन अभागी छोटी जातियों एवं वर्गों को है जो कि राज्य के विभिन्न भागों में फैली हुई धार्मिक अथवा भाषायी समूहों से संबंध रखती है।

जनवरी 1978 में अल्प आयोग का गठन किया गया था। इसके उद्देश्य व कारण निम्नलिखित है :-

1. अल्पसंख्यकों के सरंक्षण हेतु प्रयुक्त संघटनों का मूल्यांकन करने तथा उनके अधिकारों की सुरक्षा को सुनिश्चित करने हेतु।

2. संविधिक स्तर के साथ अल्पसंख्यक आयोग अल्पसख्यकों में कार्य की प्रभावोत्पादकता पर

आत्मविश्वास पैदा करेगा। यह राज्य शासन/संघीय शासन से अधिक मूल्य रखेगा।

3. यह निर्णय लिया गया कि आयोग को कानूनी तौर पर प्रस्तावित विधायन के द्वारा एक सार प्रदान किया जाए।

4. अल्पसंख्यकों हेतु राष्टीय आयोग में एक अध्यक्ष आर छह अन्य सदस्य होंगे ।

5. आयोग का प्रमुख कार्य अल्पसंख्यक के विकास में होने वाली प्रगति का आंकलन अल्पसंख्यक के हितों की रक्षा हेतु उपायों के प्रयोग को देखना और केन्द्र शासन के द्वारा कार्यान्वित किए गए को मानीटर करना होगी। अल्पसंख्यक के अधिकारों की रक्षा से संबंधित शिकायतों को हल करना भी एक कार्य है इससे शिक्षा शोध आदि विश्लेषण को हाथ में लेना पड़ेगा। यह कुछ उपायों के बारे में भी परामर्श दे सकता हूँ कि अल्पसंख्यक को केन्द्र अथवा राज्यशासन के अधीन कर दिया जावे।

जहाँ स्थानीय प्रशासन के अंतर्गत शैक्षणिक संस्था स्थित थी। उन्होंने इस प्रकार सोचा कि एक अंतिम विचार धारा व्यक्त करना आवश्यक नहीं था कि शिक्षा, राज्य सूची के क्रमांक 11 का विषय होते हुए क्या केवल प्रावधानों की प्रवृष्टि 62, 63, 64,और 66 तक ही संबंधित हैं ?

विधेयक को उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने की आवश्यकता थी तथा क्रियान्वयन का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान अल्पसंख्यक आयोग को एक कानूनी स्तर प्रदान करना था। जिससे अल्पसंख्यक आयोग को एक स्थायी स्वरूप प्रदान करना था जिससे आयोग की क्रियाप्रणाली तथा प्रभावोत्पादकता को अल्पसंख्यक के मध्य विश्वास उत्पन्न किया जा सके। अत: केन्द्रीय प्रशासन द्वारा 1992 के अधिनियम के उद्देश्यों को एक स्तर नहीं दिया जा सकता जहाँ विभिन्न धार्मिक समुदाय किसी धर्म विशेष में आस्था रखने की बजह से उन्हें एक अल्पसंख्यक समुदाय का स्तर प्रदान किया जाए।

आयोग के कार्य

1. आयोग निम्नलिखित समस्त या किन्हीं कृत्यों का पालन करेगा, अर्थात्:-

(क) राज्य के अधीन अल्पसंख्यकों के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना ;

(ख) संविधान में और संसद तथा राज्य विधान मण्डल द्वारा अधिनियमित विधियों में उपबंधित रक्षोपायों के कार्य को मानीटर करना ,

(ग) राज्य सरकार द्वारा अल्पसंख्यकों के हितों की संरक्षा के लिए रक्षोपायों के प्रभावी कार्यान्वियन के लिए सिफारिशें करना,

(घ) अल्पसंख्यकों को उनके अधिकारों और रक्षोपायों से वंचित करने के बारे में विनिर्दिष्ट शिकायतों की जांच पड़ताल करने और ऐसे मामलों को राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन समुचित प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करना,

(ङ) अल्पसंख्यकों के विरूद्ध किसी विभेद के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अध्ययन करवाना और उनकों दूर करने के लिए अध्युपायों की सिफारिश करना,

(च)अल्पसंख्यक के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास से संबंधित विषयों का अध्ययन, अनुसंधान और विश्लेषण करना,

(छ) किसी अल्पसंख्यक समुदाय के संबंध में ऐसे समुचित अध्युपायों का सुझाव देना जो राज्य सरकार द्वारा किये जाने चाहिए ,

(ज) अल्पसंख्यकों से संबंधित किसी विषय पर और विशिष्टतया उन कठिनाईयों पर जिनका उन्हें सामना करना पड़ता है राज्य सरकार को नियमकालिक या विशेष रिपोर्ट देना और

(झ) कोई अन्य विषय जो राज्य सरकार द्वारा उसे निर्दिष्ट किया जाय,

परन्तु यदि आयोग द्वारा की गई कोई सिफारिश राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग द्वारा मध्यप्रदेश राज्य से संबंधित किसी मामले पर की गई सिफारिश के विरूद्ध है तो उस दशा में राज्य आयोग द्वारा की गई सिफारिश अभिभावी होगी।

(2) आयोग की उपधारा (1) के उपखण्ड (ख)और (घ) में वर्णित कृत्यों में से किसी का पालन करते समय, और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों की बाबत किसी वाद का विचारण करने वाले सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होगी, अर्थात्:-

(क) राज्य के किसी भी भाग से किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना,

(ख) किसी दस्तावेज को प्रकट और पेश करने की अपेक्षा करना,

(ग) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना,

(घ)किसी कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अध्यपेक्षा करना,

(ङ) साक्षियों और दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना, और

(च)कोई अन्य विषय जो विहित किया जाय।

अल्पसंख्यको का संरक्षण-

अल्पसंख्यको को न केवल भारत में बल्कि विश्व स्तर पर संरक्षण की बात की गयी है इसके लिए राष्ट्र संघ, संयुक्त राष्ट्र संघ तथा भारतीय अल्पसंख्यक आयोग द्वारा निम्नलिखित कदम उठाये गये हैं-

राष्ट्र संघ द्वारा

अल्पसंख्यकों के संरक्षण का प्रयास सर्वप्रथम लीग ऑफ नेशन्स ने लिया परंतु यह संरक्षण

एक राजनैतिक संरक्षण था। अल्पसंख्यकों का राजनैतिक संरक्षण उदारवाद और राष्ट्रवाद के सिद्धांत के बीच एक समझोते के आधार पर था। संधि प्रावधानों में महाशक्तियों द्वारा नीदरलैंड में (1814) ग्रीन (1830) तथा तुर्को और (1856 और 1878) में अल्पसंख्यकों के संरक्षण विचार किया गया था। इसे औपचारिक रूप से संधियों की वास्तविक स्वीकृति के द्वारा अथवा उन राष्ट्रों की घोषणा के बाद जिसमें अल्पसंख्यकों की समस्या अधिक गंभीर थी स्थापित किया गया था। इसे यातो स्वतंत्र राष्ट्रों की मान्यता की शर्त के रूप में या प्रथम विश्व युद्ध में पराजित देशों में शांति स्थापना की आवश्यकता के रूप में स्थापित किया गया था। ये संधियां ग्रीक, रोमानिया, चेकोस्लोवाकिया , युगोस्लाविया तथा पौलेण्ड से युद्ध के पश्चात बनाई गई थी। अल्पसंख्यकों के संरक्षण के प्रावधानो को आस्ट्रिया, बल्गोरिया, हंगरी और तुर्को के हुए शांति शामिल किया गया। इस प्रकार कोई भी प्रावधान जर्मनी कें साथ समझौते में नही था। इन सभी राष्ट्रों में प्रत्येक जीवन की स्वतंत्रता और धार्मिक स्वतंत्रता पर विशेष ध्यान दिया गया तथा उन सभा राष्ट्रवासियों के लिए विशेष शैक्षणिक और सांस्कृतिक सुविधाएं देने का वचन दिया गया जो प्राजातियां धार्मिक और भाषाओं अल्पसंख्यकों का गठन करते है। इन प्रावधानों पर लीग आफ नेशान्स की प्रतिभूति को स्वीकार किया। इन प्रावधानों के समन्वयन के उद्देश्य से विभिन्न देशों में रहने वाले अल्पसंख्यक लोगों ने सचिवालय के माध्यम से याचिका की। और यदि उचित पाया जाता है तो राष्ट्र संघ परिषद के समक्ष विचार हेतु रखा जा सकता है। परिषद तभी विचार करेगी यदि यह लीग के सदस्यों द्वारा आयोजित किया जाता है। लीग ऑफ नेशन ने यह संकेत किया कि समझौते में आश्वासित अधिकार समूह अधिकार न होकर व्यक्तिगत अधिकार थे।

देश के घरेलू न्याय पर काफी ध्यान दिया गया था। और इसलिए याचिका पर विधिक प्रणाली शुरूआत करने हेतु नहीं किया गया था। परंतु यह उस जानकारी से संबंधित थी जिनके आधार पर कोई देश किसी अल्पसंख्यक समूह को किसी संधि अथवा समझौते के अंतर्गत कुछ राहत व लाभ दे। लीग का प्रयास अल्पसंख्यक के अधिकारों की रक्षा करना था। परंतु अवधारणात्मक स्तर पर सभ्य स्वतंत्रता की अवधारणा अल्पसंख्यक के लिए स्वसांस्कृतिक निर्णय और राष्ट्रीय सौष्ठव काफी कठिन प्रक्रिया के अधीन थी अल्पसंख्यक ने स्वयं अनुभव किया कि व्यवस्था के द्वारा प्रदत्त संरक्षण अपर्याप्त था अक्सर इस अपर्याप्तता में दिये गए परामर्श जो कि एक निष्पक्ष अल्प संरक्षकता आयोग द्वारा जिसे संरक्षाण प्रदान करने हेतु स्थापित किया था असंतोष जनक थे।[32]

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा -

26 जून 1945 को सेन फ्रांसिस में संयुक्त राष्ट्र संघ के चारो पर हस्ताक्षर किये गये थे। इसे 50 राज्यों के प्रतिनिधियों की बैठक में जो विश्व जनसंख्या के दो तिहाई जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती

थी में हस्ताक्षरित किया गया राष्ट्र पति रूजवेल्ट के प्रस्ताव के आधार पर इसे संयुक्त राष्ट्र संघ का नाम दिया गया। संगठन वास्तविकता में 24 अक्टूबर 1945 को अस्तित्व में आया। यही वह समय था जब संसार हिटलर द्वारा किए गये क्षतिपूर्ण कार्यो से उवरने का प्रयास कर था। संयुक्त राष्ट्र संघ के चारों की प्रस्तावना में मानव के मौलिक अधिकार को सुनिश्चिता किया गया महिला पुरूषों के समानधिका र और सहिष्णुता की भावना और एक दूसरे के अच्छे पडौसी के रूप में साथ रहना होना इन विचारों को अनुच्छेद में सदस्य राष्ट्रों के हित में स्वीकृत किया गया इससे लोगों में स्वनिर्णय तथा समान अधिकारों के सिद्धांत को शामिल किया गया और धर्म , जाति, लिंग और भाषा तथा क्षेत्र के आधार पर विभेदता के बिना मौलिक स्वतंत्रता के लिये आदि मानव अधिक को प्रोत्साहित के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया गया। इन प्रावधानों के कार्यान्वियन के उद्देश्य से 10 दिस. 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा ने मानव अधिाकार की सार्वजनिक घोषणा की इसमें वर्णित अधिकार स्वतंत्रता न्याय आदि शर्तो के आधार के रूप में जाने गये है।

इसमें उल्लिखित अधिकारों को निम्न दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है -

1. व्यक्तिगत, सिविल और राजनैतिक अधिकार और

2. आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार आयोग ने मानव अधिकारों के स्वीकृति तथ्यों को तैयार किया है, जो इन अधिकारों को औपचारिक समझौते के रूप में परिभाषित करते थे।

अल्पसंख्यक के विभेद की रोकथाम और संरक्षण हेतु एक उपआयोग को आयोग के अधीन स्थापित किया गया है। जिसने कई अल्पसंख्यको की समस्याओं को अध्ययन किया, और स्वीकृत तथ्यों की संरचना तैयार की। मानवाधिकार के लिये निजी समूहों आदि संयुक्त राज्यों के महान प्रयासों के वावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ के पास समस्याओं का सामना करने की कोई प्रणाली नहीं है।

कश्मीर में अल्पसंख्यकों की संयुक्त मानवाधिकार समिती- राज्य में मुसलमानों द्वारा चलायी जा रहे कश्मीर राज्य में हिंदुओं को उखाडने के आतंकवादी आंदोलन के मुख्य योजनागत लाभ जो थे-

1. हिंदुओं को उखाडने से राज्य का धर्म निरपेक्ष संस्थाओं को बनाने का कार्य नष्ट हो जायेगा। जिससे भारत की धर्म निरपेक्ष एकता के सभी आदर्शवादी विचार प्रभावहीन हो जायेगे।

2. हिंदुओं के निस्तारण तथा प्रस्थान से कश्मीर के मुसलमानों के समक्ष भारत की साख नष्ट हो जायेगी क्योंकि हिन्दुओं के निष्कासन से मनोवैज्ञानिक संपर्क टूट जायेगा। मुसलमानों का एक बडा वर्ग राज्य में भारतीय ढांचे को समर्थन करता है।

3. हिंदुओं को घारी से हटाने के बाद मुसलमानों की भावना और अधिक कट्टरवादी सिद्धांतो की ओर बढ़ जायेगी।

4. हिंदुओं के निष्कासन से भारत सरकार का महत्वपूर्ण संचार का माध्यम खत्म हो जायेगा जिसे हिंदु ने हमेशा खुला रखने का प्रयास किया है हिंदु ऐसे हिंदुओं की दुर्दशा जो कश्मीर से हटाये गये है से भारत के हिंदुओं से तथा भारत की सरकार का कश्मीर में कोई आगे का प्रयास करने का मनोबल टूट जायेगा। हिंदुओं के निष्कासन का अर्थ यह होगा कि जम्मू तथा कश्मीर मुस्लिम राज्य में परिवर्तित होने की ओर कदम बढा लेगा जिसका परिणाम भारत से पृथ्थकरण होगा।

आतंकवादी अधिकतर कश्मीर से हिन्दुओं के निष्कासन में सफल हुए है उन्होनें उस परंपरागत जनसंख्या संतुलन को नष्ट कर दिया है जो कि राज्य की एक विशेषता थी जिसका स्थान मुसलमानों की पहचान तथा इस्लामी कट्टरवादी ने ले लिया वह मनोवैज्ञानिक संपर्क जो कि कश्मीर के सामुदायिक संबंधों के लिए बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है तथा मुसलमानों का भी भारत के ढांचे के प्रति आस्था का संबंध रहा है। मुसलमानों द्वारा नष्ट कर दिया गया है। तथा मुसलमान जो राज्य के अलगाव का समर्थन नहीं करते थे उन्होनें भी हिंदुओं की उत्पत्ति नष्ट होने के आगे अपने घुटने टेक दिये है वे हिंदु जो कश्मीर से उखाड दिये गये है वे इधर उधर भटक रहे है तथा भारतीय धर्म निरपेक्षता के प्रति अपनी झूटी आस्था खो दी है तथा भारत सरकार की इस आस्था के प्रति विश्वास खो दिया है कि वह पृथ्थकरण तथा अलगाव को रोक देगी। अलगाव के प्रति घुटने टेकते हुए बडी गैर जिम्मेदारी से भारतीय नेताओं ने मुसलमान आतंकवादी को मानने के लिए हर संभव प्रयास किये। तथा उन्होनें गांधी के उन मूल्यों को भुला दिया जो कि उन्होनें सामुदायिक सद्भाव, धर्मनिरपेक्षता तथा प्रजातांत्रिक प्रक्रिया तथा राष्ट्रीय एकता के लिए दिये थे।

आतंकवादी संगठनों ने हिंदुओं के नरसंहार तथा उन्हें घाटी से बाहर करने के लिए आपरेशन चलाये गये जैसे-जैसे हिंदुओं की मृत्यु के डर से अधिक से अधिक संख्या में कश्मीर छोडने लगे मुस्लिम नेता ने हिंदुओं के निष्कासन को बहुत निष्क्रिय रूप से लिया भारतीय जनता पार्टी शासन में आतंकवाद से लडने की इच्छा शक्ति की कमी थी। भारत सरकार का गृहमंत्रालय जो कि एक कश्मीर मुस्लिम के हाथो सौप दिया था जो राज्य में मुस्लिम मांग के प्रति भी जिम्मेदार था जिसने एक मुस्लिम झांकी बनायी थी। इस प्रकार राज्य सरकार भी दृढता के साथ आतंकवाद से नही लड सकी। रूविया सईद के अपहरण के प्रकरण में जो कि गृहमंत्री की पुत्री थी तथा इसके वाद केंद्र सरकार के टूटने से राज्य सरकार को आतंकवादी चुनौती का सामना करने की बहुत कम नैतिक शक्ति रह गयी थी। जगमोहन के छोटे से कार्यकाल के दौरान स्थिति को संभालने का प्रयास आधे मन से किया गया जो अंतत: प्रभावहीन हो गया।[33]

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग द्वारा

यह उस रिपोर्ट की प्रति है जो राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के उस दल द्वारा दी गयी थी जिसने आगरा पहुंचकर ईसाईयों पर पिछले कुछ महीनों में हुए हमले के समाचार दिये थे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के दल के परिपेक्ष्य में मोहम्मद शमीम चेयरमेन थे। श्री त्रिलोचन सिंह उपाध्यक्ष थे तथा दो सदस्य जांच जोसफ तथा अवकाश प्राप्त लेफ्टिनेंट जनरल स. एम. सेठना थे।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों पर राष्ट्रीय समिती ईसाई अल्पसंख्यकों पर हुई हमले पर हाल ही के समाचारो से बहुत अधिक विचलित हुई तथा उसने उन हमलो पर ध्यान केंद्रित किया जो कि मथुरा, आगरा में ईसाई हमले शैक्षणिक संस्थाओं में हुए थे तथा इन जगहों पर 26 अप्रेल को स्थिति को जांचते के लिए इस जगह पर जाने का फैसला लिया। तथा अपनी रिपोर्ट में कहा कि वह स्थानीय प्रसाशन द्वारा दिये गये संरक्षण तथा मदद से संतुष्ट नहीं है और वहां प्रसाशन की मौजूदगी में अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न तथा उनके मानवाधिकारों का उल्लघन लगातार जारी है।[34]

सरकार द्वारा-

अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिये प्रधानमंत्री का 15 सूत्रीय कार्यक्रम :-

अल्पसंख्यकों के कल्याण के महत्व के संबंध में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने मई 1983 में अल्पसंख्यकों के आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए कुछ मदों को समाविष्ट करते हुए मुख्यमंत्रियों को एक पत्र लिखा था। इस पत्र में कार्रवाई के लिए 15 विभिन्न पहलुओं को शामिल किया गया था, जिसे सामान्यत: अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए 15 सूत्रीय कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है। इन मदों को प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने सभी मुख्यमंत्रियों को लिखे गये अपने दिनांक 28 अगस्त, 1988 के पत्र के में दोहराया था। इन मदों के उद्धरण नीचे दिए गए हैं -

1. साम्प्रदायिक दंगे-

1. जिन क्षेत्रों का साम्प्रदायिक रूप से नाजुक और उपद्रव वाले क्षेत्रों के रूप में पता लगाया गया है वहां ऐसे जिला तथा पुलिस अधिकारियों को तैनात किया जाए जो अत्यधिक कार्यकुशल निष्पक्ष तथा धर्मनिरपेक्ष हैं। ऐसे क्षेत्रों में तथा अन्य कहीं भी साम्प्रदायिक तनाव रोकना जिला मजिस्ट्रेट तथा पुलिस अधीक्षक के प्रमुख कर्तव्य होने चाहिए। उनकी पदोन्नति का निर्धारण करने में इस सम्बन्ध में उनका कार्य निष्पादन ही एक महत्वपूर्ण तथ्य होना चाहिए।

2. इस संबंध में जिला तथा पुलिस अधिकारियों द्वारा किए गए अच्छे कार्य के लिए उन्हें पुरूस्कृत किया जाना चाहिए।

3. उन सभी के खिलाफ कठोर कार्यवाही की जाए जो साम्प्रदायिक तनाव को भड़काएँ अथवा हिंसा करने में शामिल हों।

4. साम्प्रदायिक अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों अथवा विशेष रूप से निर्धारित न्यायालयों की स्थापना की जाए ताकि अपराधियों को शीघ्र सजा दिलायी जा सके।

5.साम्प्रदायिक दंगों के शिकार व्यक्तियों को तत्काल राहत दी जाए और उनके पुनर्वास के लिए फौरन तथा पर्याप्त वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाए।

6. ऐसे प्रभावित क्षेत्रों में विश्वास कायम करने, साम्प्रदायिक सद्भाव और शांति बनाए रखने में रेडियों और टेलीविजन द्वारा भी सहायता दी जानी चाहिए।

7. यह दुर्भाग्य की बात है कि कभी कभी प्रेस के कुछ लोग भी जानबूझकर ऐसी रिपोर्ट तथा सामग्री का प्रकाशन करते हैं जो झूठी आपत्तिजनक और उत्तेजनापूर्ण होती है जिससे साम्प्रदायिक तनाव भड़क सकता है। ऐसी सामग्री के प्रकाशन से बचने का तरीका ढूढने में सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक तथा अन्य सम्बन्धित अपना सहयोग देंगे।

2. राज्य और केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती

8. राज्य सरकारों की सलाह दी जाए कि पुलिस कर्मचारियों की भर्ती में अल्पसंख्यक पर विशेष ध्यान दिया जाए। इस उद्देश्य के लिए चयन समिति के गठन में प्रतिनिधित्व पूर्ण होना चाहिए।

9. केन्द्रीय पुलिस बलों में कार्मिकों की भर्ती में ऐसी ही कार्यवाई केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाए।

10. रेलवे, राष्ट्रीकृत बैंक और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम बड़ी मात्रा में रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। इन मामलों में भी सम्बन्धित विभागों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अल्पसंख्यक समुदायों की भर्ती करने पर विशेष ध्यान दें।

11. अनेक क्षेत्रों में प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से भर्ती की जाती है। प्राय: अल्पसंख्यक समूह ऐसी परीक्षाओं में बराबरी के आधार पर शिक्षा प्रणाली का लाभ उठाने में असमर्थ रहे हैं। इन कठिनाईयों को दूर करने में उनकी सहायता करने के लिए इन परीक्षाओं में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होने के लिए इन व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने के लिए अल्पसंख्यकों को शिक्षा संस्थानों में कोचिंग कक्षाएँ शुरु करने को प्रोत्साहित करने के उपाय किए जाएँ।

12. इन अल्पसंख्यकों द्वारा जो आज पिछड़े हुए हैं तकनीकि कौशल प्राप्त कर लेने से देश के विकास में भी सहायता मिलेगी। इन समुदायों के व्यक्तियों को पर्याप्त संख्या में ऐसी संस्थाओं में दाखिला लेने में प्रोत्साहन देने के लिए सरकार और निजी एजेंसियों द्वारा अल्पसंख्यक बाहुल्य क्षेत्रों में

औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आई. टी. आई.) और पालीटेक्निक खोलने के प्रबन्ध करने चाहिए।

3. अन्य उपाय

13. यह सुनिश्चित करने के लिए ध्यान दिया जाना चाहिए कि अलपसंख्यकों को 20 सूत्रीय कार्यक्रम को शामिल करते हुए विभिन्न विकास कार्यक्रमों से होने वाले लाभों से पर्याप्त लाभ मिले। ऐसे कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की निगरानी रखने के लिए गठित की गई विभिन्न समितियों में उन समुदायों के सदस्यों को सक्रिय रूप से सम्मिलित करना चाहिए।

14.बताए गए सामान्य मुद्दों के अलावा ऐसी विभिन्न स्थानीय समस्याएँ हैं जो अल्पसंख्यकों के लिए अनावश्यक रूप से क्षोभकारी बन जाती हैं। उदाहरण के लिए वक्फ संपत्तियाँ और कब्रिस्तानों के अतिक्रमण से कुछ स्थानों पर विरोध और शिकायतें पैदा हुई हैं। ऐसी समस्याओं से निपटने के लिए शीघ्रता पूर्वक और संतोषजनक ढंग से समुचित उपाय किये जाने चाहिए।

15. अल्पसंख्यकों की समस्याओं को लगातार ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि आशंकाओं को दूर किया जा सके और वास्तविक शिकायतों का निवारण किया जा सके। इसके लिए गृह मंत्रालय में एक विशेष एकक खोला जा रहा है जिससे अल्पसंख्यकों से संबंधित मामलों को निपटाया जा सकेगा।

उपरोक्त प्रावधानों के वावजूद अल्पसंख्यको का उत्पीड़न लगातार जारी है उत्पीड़न का तरीका भले ही कोई भी हो पर उत्पीड़न के मामले हमेशा देखे जाते हैं।

धार्मिक अल्पसंख्यक का उत्पीड़न-

नयी हिन्दू-मुस्लिम हिंसा की संभवना विचारणीय है और दोनों पक्षों ने मानवाधिकारों का हमेशा दुरुपयोग किया। हिन्दू और मुस्लिम कई शताब्दियों पहले से मस्जिद के निर्माण पर झगड़ते रहे हैं क्योंकि हिन्दू विश्वास करते हैं कि यहाँ मंदिर बनाये गये थे।

5 मार्च से 11 मार्च 2000 के दौरान मुसलमानों ने नई दिल्ली में कुरान के कथित रूप से जलाये जाने की प्रतिक्रिया स्वरूप हड़ताल करके हिन्दुओं की संपति जलाकर सरकारी वाहन तथा पूना में पुलिस स्टेशन जलाकर अपने विरोध दर्ज किया। कुरान को जलाये जाने के बारे में उत्तेजक चित्र चिपकाकर सिमी ने दंगों को बढ़ावा दिया है बाद में सिमी को प्रतिबंधित कर दिया गया क्योंकि यह अलकायदा तथा अन्य आतंकवादी संगठनों से मिला हुआ था। 21 मार्च को पंजाब में कुरान को जला दिया गया, और एक हिन्दू समूह के सदस्य के द्वारा मस्जिद में सुअर के अंग फेके गये। सिमी पर लगे इस प्रतिबंध ने उत्तर प्रदेश में सितम्बर माह में एक और दंगा या बल्वा भड़काया जिसमें चार लोग मारे गये थे दंगे कुछ दिनों तक अमृतसर, कानपुर और वारामूला शहरों में चलते रहे परिणाम स्वरूप भारी तादाद में जान और माल की हानि हुए अमूबा में ओसामा विन लादेन के समर्थन में मुसलमानों के द्वारा

निकाली गयी एक राजनैतिक रैली ने पुन: दंगे फैलाये। रैली में पुलिस ने तब गोली चला दी जब विरोधी हिसंक हो उठे जिसमें 12 व्यक्ति मारे गये जिनमें से 7 विरोधी थे दंगाईयों द्वारा काफी हानि पहुँचाई तथा हिन्दू और मुस्लिम दोनों की सम्पत्ति की क्षति हुई । नवम्बर में एक गैर अधिकारिक खोजी दल ने भालेगाँव में फैली साम्प्रदायिक हिंसा में पुलिस की भूमिका की आलोचना की और कहा कि राजनैतिक दलों के द्वारा अफवाहे फैलाई गयी और गौं वध के फैलने के लिए साम्प्रदायिक संगठन उत्तरदायी थे। जम्मू और कश्मीर में भारत शासन का अंत चाहने वाले आंतकवादियों और लगातार चलने वाली हिसा ने लगभग 95 % हिन्दूओं को कश्मीर घाटी से खदेड़ कर जम्मू के शरणार्थी कैम्पों में तथा नई दिल्ली में अपने रिश्तेदार के यहाँ तथा अन्य दूसरी जगह रहना पड़ा। सर्व मुस्लिम उग्रवादियों ने कश्मीर से हिन्दुओं को खदेड़ने का कार्य वर्ष भर जारी रखा। वर्ष के प्रारंभ में आठ सिक्ख मारे गये।

3 फरवरी को जम्मू में 2 सिक्ख, 4 अन्य धायल हुये जनता ने इस हमले को उग्रवादियों का दण्ड माना। जिसमें एक स्थानीय पुलिसमैन के द्वारा कश्मीर के विशेष अभियान समूह में एक मुस्लिम शहरी की हत्या कर दी गयी थी जो भी हो ये बाते कभी प्रमाणित नहीं हुई यद्यपि शासन ने हत्याओं की जांच करने के लिए एक चार सदस्यीय टीम भेजी परन्तु वर्ष के अंत तक एक भी आरोप - पत्र दाखिल नहीं किया गया सिक्खों ने हत्याओं का विरोध किया जिसने कि आगे चलकर एक पुलिस मुठभेड़ का रूप ले लिया।

फरवरी की घटना कश्मीर घाटी की अल्पसंख्यक सिक्ख जनता के खिलाफ सामूहिक हत्यायें विशेष रूप से सिक्ख समुदाय के विरूद्ध हिंसा के बढते हुए भय को लोगों ने इस तरह आंतकित किया कि कश्मीर में बची हुई अल्पसंख्यक जनता (जिन्हें रोक रखा गया था।) पलायन हेतु मजबूर हो जाये।

दक्षिण कश्मीर के अनंतनाग के पास यही गांव में 35 लोगों की हत्या की कोई जांच नहीं की गयी थी। चांमोली जिले के मंदिरों के शहर कहे जाने वाले बद्रीनाथ में हिन्दूओं और जैनों में एक मुठभेड़ हुई क्योंकि जैन अपने प्रमुख आराध्य श्री अदिनाथ की प्रतिमा की स्थापना करना चाहते थे और बद्री नाथ हिन्दू का तीर्थ स्थल है, 1 अक्टूबर को कश्मीर की क्षेत्री संसद पर हमला करके 25 अधिकारी तथा क्षेत्री अधिकारियों को तथा 50 अन्य को घायल कर दिया। जैश -ए-मुहम्मद नामक एक आंतकवादी संगठन के प्रवक्ता ने इस हमले की जिम्मेदारी ली। नबंबर में इस्लामी उग्रवादियों ने सेना के पहरे को भंग करके कश्मीर में सैनिकों को मार डाला।

घरेलू मामलों के मंत्रालय के अनुसार लगभग 51 हजार पंडित परिवार जम्मू कश्मीर के अपने घरो को 2000 की हिंसों की बजह से छोड़ कर चले गये जिनमें से 4674 परिवार जम्मू के शरणार्थी शिविरों में, कुछ परिवार दिल्ली के शिविरों में तथा 18 परिवार चंढ़ीगढ़ में रह रहे हैं शेष अभी स्थानापन्न

हैं। पंडित समुदाय शिविर की आर्थिक, शैक्षणिक और विगड़ी हुई भौतिक स्थिति की आलोचना करता है और डरता है कि यदि मुस्लिम बहुसंख्यकता को एक बड़ी स्वास्यत्तता दे दी जाती है तो वे जम्मू और कश्मीर में एक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विशेष रूप से जीवन को नष्ट कर देगा।

अगस्त 2002 में जम्मू और कश्मीर प्रशासन ने कश्मीर घाटी में पंडितों को वापसी एवं पुर्नवास के लिए एक प्रस्ताव मान्य किया लेकिन कई पंडितो के समुह ने इस प्रस्ताव की आलोचना की क्योंकि प्रस्ताव पंडितों के राजनैतिक अभिलाभों को व्यक्त करने, उन्हें आर्थिक प्रत्याभूति तथा लौटने वाले पंडितों के लिए पर्याप्ति सुरक्षा की योजना बनाने में असफल रहा और यह प्रस्ताव कुछ विशेष आर्थिक क्षेत्र निर्धारित करता था जो कि सामुहिक तनाव को और बढ़ा सकता था अत: 2001 में इस प्रस्ताव को त्याग दिया गया। इस वर्ष ईसाई मिशनरियों और ईसाई समुदायों पर भारी तादाद में हमले किये गये मानव अधिकार आयोग ने अपने विश्व प्रतिवेदन 2001 में यह बात व्यक्त की कि भारतीय जनता पार्टी के सत्ता में आने के बाद से ईसाईयों पर हमले बढ़ गये हैं।

जबकि दूसरे अशासकीय संगठनों ने माना कि ईसाई सदा से हिंसा और कष्ट का मकसद बनाते रहे हैं जो मानते है कि ईसाई रिश्वत और शक्तियों के द्वारा धर्म परिवर्तन करवाते हैं उन्हें विश्वास है कि ईसाई आर्थिक रूप से पीड़ित दलितों और आदिवासियों को अपना विज्ञान बनाते हैं वो उन्हें स्कूलें, शालाओं और अन्य परियोजनाओं में शामिल करते रहते हैं।

दिस. 98 से दिस 2000 के दौरान ईसाईयों पर हुये 400 हमले की जाँच हेतु एक अधिकारिक जांच विठाई गये जिसने पाया कि कुछ घटनाओं में तो धर्म कही से संबंधित नहीं था। वे तो व्यक्तिगत लड़ाईयां थी। जनवरी के राजस्थान के निकट एक गांव में बंजदल दल कार्य कर्त्ताओं ने दो ईसाई धर्मानुआयी को पीठा क्योंकि वे ईसाई धर्म पर आधारित फिल्म देख रहे थे। उन दोनों धर्म प्रचारकों पर आदिवासी लोगों के धर्म परिवर्तन का आरोप था।

जनवरी के अंत में छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले में 360 आदिवासियों के एक समूह का पुन: हिन्दू धर्म में धर्मान्तरण दिया गया हैं। जो कि संघ परिवार की एक शाखा के द्वारा आयोजित किया गया था तथा जिसमें स्थानीय कांग्रेसी नेताओं और भारतीय जनता पार्टी सांसद भी उपस्थित थे। 26 मार्च को उड़ीसा में हिंदुओं के एक समूह ने ईसाई धर्म के दो व्यक्तियों को यात्रा के दौरान मारा पीटा। मार्च में उड़ीसा में ईसाई आर्क विशप चीनाथ ने उड़ीसा के स्वतंत्रता अधिनियम में सुधार करते हुए भाषण दिया। और कहा कि अब उन्हें लगता है कि धर्मान्तिरण और कठिन हो जायेगा। उन्होंने माना कि ईसाई स्कूलों में भारतीयों का एक बड़ा प्रतिशत भाग कई पीड़ियों तक शिक्षित किया है। फिर भी 1991 की जनगणना की तुलना में ईसाईयों की जनसख्या कम है।

31 जुलाई को विश्व हिन्दू परिषद् के सदस्यों के द्वारा अखिल भारतीय ईसाई परिषद् के एक सदस्य को पीटा गया। कुछ दिन पहले परिषद् के कुछ कर्मचारी भी विश्व हिन्दू परिषद के सदस्यों द्वारा पीटे गये थे 25 अक्टूबर को एक हिन्दू मौलिक वादी सदस्यों के 100 कार्यकर्त्ताओं सदस्यों ने टिचाकी गांव के फि लाडेल्फिया चर्च पर हमला करके तहस नहस कर दिया था।

30 नवंम्बर को समाचार पत्रों ने बताया कि अलकायदा जैसे ईस्लामी आंतकवादी दलों ने कलकत्ता की ईसाई मिशनरियों को अपना लक्ष्य बनाया है। प्रेस ने बताया कि उग्रवादी समूहों ने ननों को अपना निशाना बनाया है क्योंकि उन्हें संयुक्त राज्यों से मुसलमानों के ईसाई बनाने हेतु आर्थिक सहायता मिलती है हिन्दू और मुसलमानों के ईसाईयों द्वारा धर्मान्तिरण का वक्तव्य प्रधानमंत्री अटलबिहारी बाजपेयी के 15 अगस्त के भाषण में भी शामिल था उन्होंने कहा कि "कुछ ईसाई मिशनरीयों के द्वारा देश के पिछड़े क्षेत्रों में चलाई जा रही कल्याण कारी गतिविधियों के पीछे धर्मान्तिरण का मकसद हैं और यह उचित नहीं है यद्यपि धर्मान्तिरण के अंतर्गत मान्य है।" वर्ष 2000 के दौरान ईसाईयों पर सारे देश में बहुत सारे हमले दिये गये।

जिसमें मई 2000 में ईसाईयों की वैठक में आंध्रप्रदेश में बम विस्फोट और उत्तर प्रदेश में अप्रैल 2000 में हमलों की श्रृखंला भी शामिल है। इस्लामी उग्रवादी संगठन दीदार अजुंमन का हाथ विस्फोट में माना गया था इसके कई सदस्य गिरफ्तार किये गये थे और 3 मई को समूह पर प्रतिबंध लगा दिया गया। जून 2000 में मथुरा में एक पादरी की हत्या का चश्मरीद गवाह विजय एक्का मर गया।

शासकीय अल्पसंख्यक आयोग उ. प्र. की अप्रैल 2000 की घटना में की जांच की तथा इसने कहा हिसां की घटनाएँ पूरी तरह धर्म पर आधारित नहीं थी इस रिर्पोर्ट की व्यापक रूप से आलोचना हुई।

सितम्बर 2000 में विशेष न्यायालय ने भुवनेश्वर में ग्राहम वेल तथा उसके दो पुत्रों की हत्या में एक 13 वर्षीय बालक को भी दोषी ठहराया जिसे 14 वर्ष के कारावास की सजा दी गयी। बाधवा कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया कि दारासिंह ने हिन्दू संगठनों और राजनैतिक दलों को सह अपराधिता के आरोप से मुक्त कर दिया जबकि राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की एक पृथक जांच में पाया गया कि स्टेन्स की हत्याओं में बंजरंग दल भी शामिल था 1998 से ईसाई सहायता कर्मीयों के कष्ट में वृद्धि होती रही है। कई रिपोटरों को अपना काम करने से धमकियों द्वारा शासकीय बाधाओं तथा कुछ मामलों में शारीरिक हमले के द्वारा रोका गया।

राष्ट्रीय मानवाधिकार अल्पसंख्यक आयोग ने ईसाईयों की 2000 में हिंसा के विरूध दुख प्रकट किया और मांग की कि शासन ऐसी घोषणा करे कि वह ईसाई समुदाय के संरक्षण का

वचन देता है। गृहमंत्री लाल कृष्ण अड़वानी ने कहा कि ''केन्द्र में, प्रभावित क्षेत्रों में उन लोगों के विरूद्ध कार्यवाही की जायेगी जो कि ईसाईयों के विरूद्ध हुऐ हमले की जांच में दोषी पाये जायेंगे।'' त्रिपुरा में धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ भी घटने वाली घटनाओं जिनमें ईसाई उग्रवदियों, हिन्दु-मुस्लिम त्यौहारों पर असम ने प्रतिबंध लगाना चाहा।

संदर्भ सूची

1. राजेन्द्र पाण्डेय, माइनरिटीज् इन इंडिया, प्रोटेक्शन एण्ड वेलफेयर प्रथम संस्करण पृ.1
2. एनसाक्लोपीडिया विट्रेनिका
3. हमर बुक आफ हूमैन राइटस्
4. जे. ए. लैफोन्स, दी, प्रोटक्शन ऑफ माइनोरिटीज, प्रथम संस्करण 1960 पृ. 6
5. बैगले एण्ड हैरीजन, दा माइनरिटीज इन दी न्यूबर्ल्ड (सिक्ख केस स्टेडिज) प्रथम संस्करण, पृ. 347
6. के. के. वाधवा, माइनरिटीज सेफगार्ड इन इंडिया द्वितीय संस्करण 1979 पृ. 12
7. जी. एस.घुरैय, कास्ट कलाश एण्ड आक्पोरेशन 1961 पृ. 5
8. दुपारे, ला प्रोटेक्शन, डेस माइनरिटीज रेस, 1922 पृ. 31
9. ब्रूनेट, जनरल डी डिपोट् इन्टरनेशनल 1926, 278
10. बलोफ, डेट, इन्टरनेशनल सीहूट डेर मिन्डर हिटेन 1928 पृ. 63
11. दी. न्यू एनसाक्लोपीडिया बिट्रिनिका 1986 खण्ड 8, 169
12. वेवस्टर III न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी 1968: 1440
13. आक्सफोर्ड इग्लिंश डिक्शनरी 1933: 479
14. कालिन्स कोविल्ड इग्लिश डिक्शनरी 1988: 9204
15. डी. ए. वी. जालधंर बनाम स्टेट ऑफ पंजाब, 1982 एस. सी. सी. 219 पृ.
16. ए. आई. आर. 1958 एस. सी.956
17. सुरेश जैन, अल्पसंख्यक समुदाय विधि संहिता प्रथम संस्करण 2002 पृ. स. 150
18. राजेन्द्र पाण्डेय, माइनरिटीज, इन इंडिया, प्रोटेक्शन एण्ड बेलफेयर प्रथम संस्करण पृ. 62.
19. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय पृ. 277
20. आचार्य चतुरसैन भारत में इस्लाम द्वितीय संस्करण पृ. 67
21. वी. पी. लूथरा, रिलीजियस इम्पार्थलिटी सेमिनार में दिया गया भाषा इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1967
22. कृष्णन दुवे भारत के धर्म और दर्शन संस्करण 2001 पृ. सं. 53
23. पूर्वोक्त पृ. 62
24. एस. सी. गुप्ता, मध्यकालीन भारत का इतिहास, नवम् संस्करण 1980 पृ. 297

25. कृष्णन दुबे, भारत के धर्म और दर्शन संस्करण 2001 पृ. 93

26. पी. सी. माथुर, सोशयल वेसिज आफ इंडियल पालिअिम्स, जयपुर आलम प्रकाशन 1981 पृ.

26A. सी. टी बिटैनी, धार्मिक शब्द कोष

27. इनसाइक्लोपीडिया बिट्रेनिका

28. राजस्थान राज्य बनाम सज्जन सिंह, 1966 आर. एल. डब्ल्यू, 593

29. श्री जैन श्वेतांबर तेरापंथ विद्यालय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए. आई. आर. (राजस्थान) 101

30. आंध्र केसरी शिक्षण संस्थान बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1988 आंध्र प्रदेश 256

31. डी. ए. पी. कालेज, 1982 एस. सी. सी. 219 पृ.

32. अंतराष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग रिपोर्ट 1999 (इंटरनेट)

33. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग रिपोर्ट 2002 (इंटरनेट)

34. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्ट 2000 इंटरनेट।

अध्याय -5

अल्पसंख्यकों के संवैधानिक अधिकार और न्यायालय

भूमिका

भारत में शताब्दियों से हिंदू, बौद्ध, जैन, ईसाई, सिक्ख, पारसी निवास करते आये है लेकिन जातीय प्रथा तथा धार्मिक भेदभाव तब भी अस्तित्व में थे लेकिन उस समय एक धार्मिक सहनशीलता थी। भारत में बिट्रिश राज्य की स्थापना के साथ ही राजनैतिक क्रांति को एक नई दिशा मिली प्रजातंत्र के राजनैतिक विचारों तथा स्वराज्य के विचारों के प्रसार से अल्पसंख्यक अधिकारों के बारे में सचेत होते चले गये भारत में विश्व की पूरी जनसंख्या का एक भाग निवास करता है लेकिन इसमें हिंदू बहुसंख्या तथा अन्य सभी अल्पसंख्यक है जिनमें मुसलमान ,ईसाई , सिक्ख, बौद्ध, पारसी तथा अन्य है हमारे संविधान में धर्मनिरपेक्षता की भावना प्रस्तावना से स्पष्ट होती है इसका अर्थ है कि राज्य अपने सभी नागरिकों को सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय प्रदान करे। वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा संघ का संगम बनाने की स्वतंत्रता सभी को प्राप्त है लेकिन इससे भी बढ़ कर संविधान ने एक विशेष वर्ग को अपनाया ताकि इससे अल्पसंख्यकों के समुदायों को जीता जा सके।[1]

संविधान सभा का दृष्टिकोण

संविधान सभा में यह तर्क दिया गया था कि संविधान में प्रदत्त अल्पसंख्यक अधिकार एक धर्म निरपेक्ष राज्य की अवधारणा से असंगत है। लेकिन राष्ट्रीय एकता की भावना को हासिल करने के लिए तथा अल्पसंख्यकों की विशेष मांग की पूर्ति करने के लिए नेहरू ने अल्पसंख्यकों के लिए अल्पसंख्यक मौलिक अधिकार की समिति ने स्थान आरक्षित किये तथा कहा कि पहला कारण यह था कि हमें यह महसूस हुआ कि इससे संबंधित अल्पसंख्यकों की सहमति के बिना इसे (सीटों का सांप्रदायिक आरक्षण) हटा नहीं सकते यह उनके ऊपर है कि वे आगे या फिर कहे कि उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं है।

अल्पसंख्यकों अधिकारों पर बनी समिति की रिपोर्ट को संविधान सभा में प्रस्तुत करते हुये सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा कि इस रिपोर्ट में यह प्रयास किया गया है कि अल्पसंख्यको को वे सुरक्षात्मक उपाय दिये जाये जो कि सामान्य ज्ञान का विषय है जैसे विधायिका में प्रतिनिधित्व, पृथक निर्वाचन क्षेत्र। यह प्रश्न करीब एक दशक तक विवाद रहा और इसके लिए हमने बहुत सी परेशानियां उठाई तथा इसकी भारी कीमत चुकाई है लेकिन दुर्भाग्यवश हम इस प्रश्न को इस तरह से सुलझा नहीं पाये कि इस मामले में एकमत हो जाये कि कोई भी पृथक निर्वाचन क्षेत्र नहीं होने चाहिए तथा इस प्रकार सिर्फ संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र ही होना चाहिए ताकि इससे सभी को लाभ मिले।

इस तरह के अधिकार से भारत का निश्चित रूप से स्थाई विभाजन हो जायेगा किसी भी समुदाय के राष्ट्रीय हितों से ऊपर नहीं होना चाहिए। साहब बहादुर ने पृथक निर्वाचन क्षेत्र की इस आधार पर संविधान सभा में समर्थन किया कि मानव प्रकृति इसी प्रकार है दूसरे स्थान पर अल्पसंख्यक तथा

अल्पसंख्यक समुदाय रहेगे तथा विशेषकर भारतीय उपमहाद्वीप में उनका रहना तो अनिवार्य है लेकिन इस समस्या से इस दृष्टिकोण से सामना किया गया कि एक दिन से या आयोग जब अल्पसंख्यक पूरी तरह से राष्ट्रीय एकता में समाहित हो जायेगे यह भी ध्यान देने योग्य है कि संविधान सभा में फेंक एंथोनी ने कहा था कि मुझे विश्वास है कि आज की परिस्थिति अल्पसंख्यकों के लिए एक चुनौती है बुद्धिजीवी अल्पसंख्यक वर्ग अभी या बाद में भविष्य की ओर देखेगें न कि अपने समुदाय के रूप धारण करेगे हमें अपने इसी आदर्श को प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए अभी या बाद में हम सभी अपने सांप्रदायिक सद्भाव को छोड़ देगें तथा भारतीय समुदाय की अनिवार्य भावना से बंध जायेगे।

संविधान सभा में इस बात पर सहमति थी कि अल्पसंख्यकों के जनसंख्या में उनके अनुपात के आधार पर आरक्षण इसलिए होना चाहिए ताकि अल्पसंख्यक यह महसूस करे कि उनके वैधानिक दावों को नजरअंदाज नहीं किया गया है न ही तो यह गलत भावना तथा असंतुष्टि अवश्य ही व्याप्त हो जायेगी। कुछ अल्पसंख्यकों ने प्रसन्नता पूर्वक अपने स्थानों के आरक्षण का अधिकार वापस दे दिया क्योंकि वे पृथक लाभ नही चाहते थे और न ही पृथक निर्वाचन क्षेत्र चाहते थे तथा स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। पारसी तथा ईसाई अपने सामान्य समुदाय के लिए अपने अधिकार छोडने के लिए तैयार थे। लेकिन केंद्रीय तथा प्रांतीय विधायिकों में आगमन भारतीय तथा अनुसूचित जातियो तथा जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित कर दिये गये थे कि उनका यह डर दूर हो सके कि उन्हें विधायिका में प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा।[2]

मंत्रिपरिषद में संरक्षित करने के लिए गवर्नर को भारत सरकार अधिनियम 1935 के अंतर्गत निर्देशों प्रलेख जारी किया गया। जो यह प्रावधान करता था कि मंत्रीपरिषद के निर्वाचन के समय राज्यपाल वह सभा प्रयास करेगा कि मंत्री इस प्रकार चयनित हो कि वह बहुसंख्यक समुदाय के साथ-साथ अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यों को भाी सम्मिलित करे तथा जो एक साथ विधायिका का विश्वास हासिल करने में सक्षम हो लेकिन इसके साथ ही हमें मंत्रियों के संयुक्त दायित्व की आवश्यकता को भी ध्यान में रखना चाहिए लेकिन संविधान के अनुच्छेद 164 (1) का परंतु केवल यह प्रावधान करता है कि बिहार, म. प्र., उडीसा राज्य में एक मंत्री होगा जिस के पास जनजाति कल्याण तथा अनुसूचित जनजाति का कल्याण विभाग होगा उसके पास अनुसूचित जनजाति के विकास का भी दायित्व भी होगा तथा दूसरे कार्य भी होगे जहां तक कि जहां तक कि लोक सेवाओं का सवाल है आंग्ल भारतीय समुदाय तथा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजातियां पर कुछ मामले पर विशेष ध्यान दिया जाता है उच्च प्रकार की सेवाओं में आंग्ल भारतीय समुदाय को उनको स्वतंत्रता के पूर्व विशेषाधिकार दिये गये थे।

अल्पसंख्यकों को दिये गये सुरक्षात्मक उपायों के महत्व पर जोर देते हुए अल्पसंख्यक

अधिकारों पर गठित समिती की रिपोर्ट अपने निष्कर्ष में कहा, हम यह साफ कर देना चाहते है कि अल्पसंख्यकों की स्थापना के निर्धारण में राज्य को इस तरह कार्य करना चाहिए कि वे ये सोचना बंद कर दे कि वे अल्पसंख्यक है उन्हें यह महसूस करना चाहिए कि राष्ट्रीय संस्थाओं में तथा विधान में उनका एक प्रतिष्ठित स्थान है तथा हम यह सोचते है कि उन अल्पसंख्यकों को उठाने के लिए राज्य विशेष कदम उठाये जो समुदायिक रूप से पिछडे हुए है।

इस बात को मानना पडेगा कि किसी भी देश में अल्पसंख्यकों के अस्तित्व से विभिन्न समस्याएं उत्पन्न होती है अल्पसंख्यक इस भावना को पोषित करते रहते है कि उन्हें बहुसंख्यक समूह द्वारा अधिशासित किया जाता है तथा बहुसंख्यक यह सोचने लगते है कि अल्पसंख्यकों को विशेष अधिकार मिले है जो कि राष्ट्रीय एकता तथा विकास में बाधक है इस समस्या को समक्ष तथा सहानुभूति के साथ देखना चाहिए सबसे पहले इस बात की आवश्यकता है कि इस बात को नकार दिया जाये कि भाषायी या धार्मिक अल्पसंख्यक ही राज्य का गठन करते है तथा राजनीति उन्हीं के अधीन है तथा भाषायी अल्पसंख्यक देश में, आधे विदेशी है। जे. आर. फ्लाई कहते है कि -इस समस्या को सुलझाने के लिए सही बात माननी होगी कि वे बहुसंख्यकों, अल्पसंख्यकों को एक राजनैतिक समुदाय के संपूर्ण भाग के रूप में स्वीकार करे। भले ही यह कथन यूरोप के राष्ट्रीय अल्पसंख्यक थे लेकिन यह कही भी अल्पसंख्यक समस्या पर लागू होता है उनकी इस इच्छा का आदर करते हुए कि उन्हें यह अधिकार है कि वे अपने सांस्कृतिक परंपराओं को संरक्षित तथा पोषित करें विभिन्न धर्मो के लोगों को शांति पूर्वक एक राष्ट्र की तरह जीवित रहना सीखना पडेगा नहीं तो धार्मिक तथा सांस्कृतिक विभिन्नता की उपस्थिति में राजनैतिक एकता संभव हो जायेगी जिसकी आवश्यकता पर कोई भी दूसरा मत नहीं है रेनाल्ड नेभर कहते है कि इन व्यक्तियों के वैधानिक अधिकारों को सभी को मिलकर संरक्षित करना चाहिए।

अल्पसंख्यकों को यह महसूस करना चाहिऐ कि बहुसंख्यक उन्हें कुछ देना चाहते है न कि उनके कुछ लेना चाहिए इसी प्रकार के सांप्रदायिक सद्भाव की भारत को आवश्यकता है। इस संबंध में महात्मा गांधी का एक कथन है जिसमें उन्होनें कहा है कि मै नहीं चाहता कि मेरे घर में चारों ओर दीवारें खडी रहे और है खिडकियों बंद रही तथा मै यह चाहता हूं कि सभी देशों की संस्कृति स्वतंत्रतापूर्व मेरे घर में आये लेकिन में इस बात से इंकार करूगा कि उनके कारण मेरे पैरों की जमीन हट जाये। अल्पसंख्यकों को यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि उन्हें अधिकार अपनी स्थिति को स्थायी करने के लिए नहीं दिये गये है समाज में उन्हें अपनी भूमिका का निर्वाह करना पडेगा तथा धर्म तथा भाषा के आधार पर वह इसमें रोडा नही बन सकते हैं, हो सकता है कि उनके कुछ क्रियाकलापों पर सामाजिक विधानों का असर पडे यही कारण है कि उनके संरक्षित हितो पर प्रतिबंध लगाये गये जैसे धार्मिक, शैक्षणिक, आदि मामले पर आज

के भारत में अल्पसंख्यक अधिकारों की सुदृढ करना चाहिए भारत आधुनिकीकरण तथा धर्म निरपेक्षता के पथ पर अग्रसर हो रहा है इस प्रक्रिया के अंतर्गत समाज को नये आयामों से जुडना चाहिए। अल्पसंख्यकों द्वारा इस आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की बहुसंख्यकों द्वारा भी सराहना की जायेगी उनके विशेषाधिकारों तथा संस्कृति अधिकारों की उपयोगिता समाप्त हो जायेगी जब वे पूरे समाज से नहीं जुडेगे तब तक वे अपने को उपेक्षित महसूस करेंगे। भारत जैसे देश में विभिन्न समुदायों के लोग रहते है तथा उनके हितों में विशेष समुदायों का योगदान महत्वपूर्ण है उनमें व्याप्त भेदभाव को दूर न करने के लिए उनकी भाषा, संस्कृति तथा धर्म का संरक्षण आवश्यक है तथा यह आवश्यक है कि अल्पसंख्यक में आस्था तथा विश्वास की भावना पैदा कर सके।

अल्पसंख्यकों को अधिकतम संभव स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। अल्पसंख्यकों को विशेषाधिकार तथा स्वतंत्रता प्रदान करते है संविधान अपने प्रजातंत्रात्मक स्वरूप को स्पष्ट करता है एक प्रज़ातंत्र में अल्पसंख्यकों को अपने को करना महसूस नहीं करना चाहिए ऐसा देश जहां करोडों लोग अल्पसंख्यकों में आते है उनके लिए संरक्षात्मक उपाय आवश्यक है जब तक वह बहुसंख्यक के समान राष्ट्रीय जीवन में अपनी भूमिका निभाने में पूरी तरह से तैयार न हो जाये।

संविधान सभा में सरदार पटेल ने यह अनुरोध किया था कि व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाये तो यह सभी के हित में होगा कि वे भूल जाये कि देश में बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक जैसे कोई वस्तु है तथा यह महसूस करे कि भारत में केवल एक समुदाय उन सभ को यह बात ध्यान में रखना चाहिए जो कि भारत में सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता में रूचि लेते है।[3] अत: भारतीय संविधान विभिन्न वर्ग के लोगों के सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक अधिकारों को संरक्षित करता है तथा प्रत्याभूति देता है।

संवैधानिक संरक्षण-

1. अनुच्छेद 29 अल्पसंख्यक वर्गो के हितों का संरक्षण-

अनुच्छेद 29(1) भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी विभाग को जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद29 (2)राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इसमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जायेगा।

2. अनुच्छेद 30 शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गो का अधिकार-

अनुच्छेद30 (1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गो को अपनी रूचि की शिक्षा

संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

अनुच्छेद30 (1-क) खण्ड (1) में निर्दिष्ट किसी अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधि बनाते समय राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसी सम्पत्ति के अर्जन के लिए ऐसी विधि द्वारा नियत या उसके अधीन अवधारित रकम ऐसी हो जो उस खण्ड के अधीन गारंटी दिए गए अधिकार को निर्बन्धित या निराकृत न करें।

अनुच्छेद 30(2)शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरूध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबंध में है।

एक अल्पसंख्यक जो जाति, धर्म तथा भाषा पर आधारित है को अनुच्छेद 30(1) के अधीन शैक्षणिक संस्थानों को 'स्थापित' तथा 'प्रशासित' करने का अधिकार है। इस अधिकार में अल्पसंख्यकों द्वारा स्वयं की समस्याओं में अपने बच्चों को स्वयं की भाषा में निर्देश देने का अधिकार विदित है। बंबई राज्य बनाम बंबई ऐजुकेशन सोसाइटी[4] के वाद में यह कहा गया राज्य की शिक्षा की भाषा निर्धारित करने की शक्ति के विस्तार में अल्पसंख्यकों के इस अधिकार को भी जगह देनी होगी। इसी प्रकार न्यायालय विश्वविद्यालय से संबद्ध किसी शैक्षणिक संस्थान में किसी विशेष भाषा के प्रयोग निषेध नहीं कर सकता। उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि अनुच्छेद 30 के अंतर्गत यदि किसी अल्पसंख्यक ने कोई शैक्षणिक संस्थान स्थापित की है उसे उसको प्रशासित करने का अधिकार होगा। अनु 30 में शब्द 'प्रशासित' एवं स्थापित को साथ-साथ पढ़ना चाहिये। एक धार्मिक अल्पसंख्यक किसी शैक्षणिक संस्था जो किसी और के द्वारा स्थापित की गई है को प्रशासित करने का दावा मात्र इस आधार पर नहीं कर सकते कि संविधान के आने से पहले किसी कारण से वे उसे प्रशासित कर रहे थे। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय जो संविधि द्वारा स्थापित है के लिये यह नहीं कहा जा सकता कि वह मुसलमान समुदाय द्वारा स्थापित की गई है और ना ही मुसलमान संप्रदाय इस विश्वविद्यालय को प्रशासित कर रहा था। भले ही विश्वविद्यालय अधिनियम यह उपबंधित करता है कि कोई भी गैर मुसलमान बोर्ड का सदस्य नहीं हो सकता परन्तु ऐसा कोई निर्बन्धन कार्यपालक समिति या शैक्षणिक समिति या बोर्ड के निर्वाचन मण्डल पर नही है। इस प्रकार अनुच्छेद 30(1) किसी ऐसी संविधि को शून्य नहीं करता जो विश्वविद्यालय की प्रशासनिक व्यवस्था को विनियमित करते है।[5]

न्यायिक दृष्टिकोण :-

डी. ए. वी. कालेज भटिण्डा बनाम पंजाब राज्य[6] के मामले में यह अभिनिर्धारित

किया गया है कि अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं को स्थापित और प्रशासित करने के अधिकार में शिक्षा के माध्यम से विकल्प का अधिकार भी शामिल है। इस मामले में पिटिशनर डी. ए. वी. कालेज ट्रस्ट एण्ड सोसाइटी द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाएँ थीं। यह आर्य-समाजियों का एक संघ था। ये संस्थाएँ पंजाब विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थीं। विश्वविद्यालय ने एक घोषणा द्वारा अगले सत्र से प्री-यूनिवर्सिटी तक विज्ञान के लिए भी पंजाबी को शिक्षा और परीक्षा का एकमात्र माध्यम घोषित कर दिया। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि पिटिशनर धर्म पर आधारित अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा चलायी जाने वाली संस्थाएँ थी और इस प्रकार सभी विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम औश्र परीक्षा के लिए गुरुमुखी लिपि में पंजाबी भाषा के अनन्य प्रयोग के कारण पिटिशनर का अपनी लिपि को बनाये रखने और संस्थाओं को प्रशासित करने के अधिकार का प्रत्यक्षतः अतिलंघन होता है।

ब्रह्मचारी सिद्धेश्वर सहाय बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य[7] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस द्वारा वेदान्त दर्शन के सिद्धांतों का जन कल्याण के उत्थान के लिए प्रतिपादन एक नया धर्म नहीं है वरन् हिन्दू धर्म का ही एक पंथ है अतः उनके अनुयायियों द्वारा उनकी शिक्षाओं के प्रचार एवं प्रसार के लिए स्थापित शिक्षण संस्थाओं को अनुच्छेद 30 (1) के अन्तर्गत प्रदत्त मूल अधिकार उपलब्ध नहीं हैं। इस मामले में स्वामी रामकृष्ण के शिष्यों ने उनकी शिक्षाओं के प्रसार एवं प्रचार के लिए रामकृष्ण मठ या मिशन की स्थापना की थी। इस प्रयोजन के लिए मिशन ने एक शिक्षण संस्थान की स्थापना किया था। पिटिशनर ने राज्य सरकार द्वारा कालेज प्रबन्धन में हस्तक्षेप के विरुद्ध कलकत्ता उच्च न्यायालय में अपील फाइल किया। उच्च न्यायालय ने पिटीशनर के तर्क को स्वीकार करते हुए निर्णय दिया कि उक्त संस्था एक अल्पसंख्यक संस्था है अतः अपने प्रबन्धन के लिए स्वतन्त्र है। उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायमूर्तियों की पीठ ने उच्च न्यायालय के निर्णय को उलट दिया और यह निर्णय दिया कि रामकृष्ण द्वारा प्रतिपादित वेदान्त दर्शन एक नया धर्म नहीं है वरन् हिन्दू धर्म का ही भाग है। स्वामी रामकृष्ण ने किसी नए धर्म की स्थापना नहीं की थी बल्कि वेदों में निहित हिन्दू दर्शन की ही व्याख्या की और उसका प्रचार एवं प्रसार किया। अतः उनकी शिक्षाओं के प्रचार एवं प्रसार के लिए स्थापित संस्थाएँ अल्पसंख्यक संस्था नहीं हैं अतः उसे अनुच्छेद 30 (1) के अन्तर्गत प्राप्त मूल अधिकार उपलब्ध नहीं हैं। उच्चतम न्यायालय के निर्णय से हिन्दू धर्म के अन्तर्गत बने विभिन्न धार्मिक पंथों के अल्पसंख्यक बनने की प्रकृति पर रोक लगाना संभव हो सकेगा और हिन्दुओं में विखराव की स्थिति पर भी रोक लगेगी और एकता को बढ़ावा मिलेगा।

किन्तु अनुच्छेद 30(1) में दिया हुआ अल्पसंख्यकों का यह अधिकार अनुच्छेद29 (2)

के अधीन है जो यह उपबन्धित करता है कि राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्यनिधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षण-संस्था में प्रवेश पाने से किसी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जायगा। इसका तात्पर्य यह है कि यदि अल्पसंख्यक वर्गों द्वारा स्थापित कोई शिक्षण-संस्था राज्यनिधि से सहायता प्राप्त करती है तो वह अन्य समुदाय के लोगों को उसमें प्रवेश देने से इन्कार नहीं कर सकती है। अन्य समुदाय के लोगों को प्रवेश देने से अल्पसंख्यकों की संस्थाओं की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

44वें संशोधन अधिनियम द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में समाप्त कर दिया गया है; फलतः संविधान से अनुच्छेद 19 (1) (8) और अनुच्छेद 31 को निकाल दिया गया है। किन्तु यह स्पष्ट करने के लिए कि सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त किये जाने के परिणामस्वरूप अल्पसंख्यकों को अपनी रुचि की शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अनुच्छेद 30 में एक नया खण्ड (क) जोड़ा गया है। खण्ड 1 (क) यह उपबन्धित करता है कि राज्य किसी ऐसी विधि को पारित करते समय, जो किसी अल्पसंख्यक द्वारा स्थापित शिक्षण-संस्था की सम्पत्ति के अनिवार्य अर्जन का उपबन्ध करती है; यह सुनिश्चित करेगा कि उस विधि के अधीन अर्जित सम्पत्ति के लिए नियत या निर्धारित रकम ऐसी न हो जो इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार को निर्वन्धित या नष्ट करती हो।[8]

अनुच्छेद 29 तथा 30 के मध्य संबंध -

अनुच्छेद 29 तथा 30 के मध्य गहरा संबंध है। कोई अल्पसंख्यक समुदाय अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति को शैक्षणिक संस्थानों द्वारा ही संरक्षित कर सकता है क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही अल्पसंख्यकों की भाषा तथा संस्कृति उनके बच्चों तक पहुँचाई जा सकती है। इस प्रकार अल्पसंख्यकों का शैक्षणिक संस्थान स्थापित तथा पोषित करने का अधिकार उनके द्वारा उनकी पृथक भाषा, लिपि या संस्कृति को सरंक्षित करने के अधिकार का सहगामी अधिकार है। परन्तु अनुच्छेद 30 के संरक्षण का दावा कोई अल्पसंख्यक संस्था तभी कर सकती है जब वह विशेष तौर पर केवल अल्पसंख्यक भाषा लिपि या संस्कृति का संरक्षण ही ना कर रही हो वरन् साधारण शिक्षा भी दे रही हो।

गुरूनानक विश्वविद्यालय के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया अनुच्छेद 30 (1) के विस्तार को 29 (1) के आधार पर कम नहीं किया जा सकता। 25 (1) अल्पसंख्यको को उनकी भाषा इत्यादि संरक्षित करने के लिये दिया गया एक साधारण संरक्षण है पर 30(1) अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि के संस्थान स्थापित करने का विशेष अधिकार प्रदान करता है और उनकी रूचि संस्थानों तक सीमित नहीं किया जा सकता जो भाषा, लिपि या संस्कृति को संरक्षित करते हों और

न ही अल्पसंख्यक संस्थानों द्वारा दूसरे समुदाय के व्यक्तियों का ऐसे संस्थानों में प्रवेश करने से शक्ति चली जाती है।

इस प्रकार अल्पसंख्यक, चाहे वे भाषा या धर्म पर आधारित हों को साधारण शिक्षा के संस्थान स्थापित करने का अधिकार है और न कि ऐसे जो स्वयं की भाषा तथा संस्कृति तक सीमित हों। सिद्धराज भाई के वाद में एक अल्पसंख्यकों द्वारा चलाए जा रहे शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान को अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत संरक्षण प्रदान किया गया। दूसरे समुदाय के लोगों के प्रवेश से संबंधित संस्थान का चरित्र नहीं बदलता है। वास्तव में अनुच्छेद 29 (2) के अंतर्गत एक राज्य से सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शिक्षण संस्था पर यह बाध्यता है कि वह धर्म, जाति तथा भाषा के आधार पर दूसरे संप्रदाय के व्यक्तियों के प्रवेश को मना न करें।[9]

अनुच्छेद 29 (1) और अनुच्छेद 30 (1) सुभिन्न मामलों का उल्लेख करते हैं औरअनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रदत्त अधिकार अनुच्छेद 29 (1) के आधार पर सीमित या निर्बन्धित नहीं किया जा सकता है। इन दोनों अनुच्छेदों में निम्नलिखित प्रभेद हैं-

(1) अनुच्छेद 29 (1) नागरिकों के किसी वर्ग को, जिनमें बहुसंख्यक भी शामिल हैं, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है; उसे बनाये रखने का अधिकार प्रदान करती है। इस खण्ड के संरक्षण के लिए आवश्यक नहीं है कि नागरिकों का वर्ग अल्पसंख्यक हो। इसके विपरीत अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल ऐसे अल्पसंख्यकों को ही प्रदान किया गया है जो धर्म या भाषा से अल्पसंख्यक हैं।

(2) अनुच्छेद 29 (1) के द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल 3 विषयों से सम्बन्धित हैं, अर्थात् भाषा, लिपि या संस्कृति के बनाये रखने के लिए हैं जबकि अनुच्छेद 30 (1) का सम्बन्ध राष्ट्र के उन अल्पसंख्यक वर्गों के साथ है जो धर्म या भाषा पर आधारित हैं।

(3) अनुच्छेद 29 (1) भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण के अधिकार के संबंध में है, जबकि अनुच्छेद 30 (1) अल्पसंख्यक वर्गों के अपनी रुचि की शिक्षा- संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन के अधिकार के सम्बन्ध में हैं।

(4) अनुच्छेद 29 (1) के अधीन भाषा, लिपि या संस्कृति का संरक्षण ऐसे माध्यमों से भी हो सकता है जिनका शिक्षा-संस्थाओं से कोई भी सम्बन्ध न हो और इसी अनुच्छेद 30 (1) के अधीन किसी अल्पसंख्यक वर्ग के द्वारा शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और उनका प्रशासन ऐसा भी हो सकता है जिसका भाषा, लिपि या संस्कृति से संरक्षण के हेतु [motive] से कोई भी सम्बन्ध न हो। ऐसा हो सकता है कि कोई भी अल्पसंख्यक वर्ग धार्मिक शिक्षा के लिए ऐसी संस्था का प्रशासन करे जिसका

भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण के किसी भी प्रश्न के साथ कोई सम्बन्ध न हो। अनुच्छेद 30 (1) के अन्तर्गत सामान्य निरपेक्ष शिक्षा संस्थाएँ भी शामिल हैं।

(C) अनुच्छेद 30(1) के अंतर्गत अल्पसंख्यक कौन है ?

संविधान, शब्द अल्पसंख्यक का प्रयोग तो करता है पर उसे परिभाषित नहीं करता। यह प्रश्न **इन री केरल एजुकेशन बिल**[10] के मामले में उठाया गया। सर्वोच्च न्यायालय का मत था कि भले ही यह कहना आसान है कि अल्पसंख्यक समुदाय का अर्थ ऐसा समुदाय है जो 50 प्रतिशत से कम हो पर महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि किसके 50 प्रतिशत से, क्या भारत की पूरी जनसंख्या से या राज्य की या उसके किसी भाग की जनसंख्या से ? क्या यह संभव है कि कोई समुदाय राज्य के किसी एक भाग में रहे और इस प्रकार बहुसंख्यक माना जाए परन्तु पूरे राज्य की जनसंख्या के परिपेक्ष्य में वह अल्पसंख्यक हो। यदि किसी राज्य का एक भाग लिया जाता है, तो प्रश्न यह है कि हम किसे मापदण्ड माने और किस इकाई को ध्यान में रखा जाना चाहिए तथा ऐसी इकाई क्या कोई जिला, तहसील, तालुक, कस्वा या नगर निगम या वार्ड होना चाहिये ? इस अधिनियम के परिपेक्ष्य में जिसका विस्तार पूरे राज्य पर था, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था अल्पसंख्यकों को पूरे राज्य के संदर्भ में निश्चित किया जाना चाहिये तथा एक समुदाय चाहे भाषाई या धार्मिक हो तथा जो कुल राज्य की जनसंख्या से 50% से कम हो को अनुच्छेद 30 (1) का प्रयोजन के लिये अल्पसंख्यक माना जाएगा। इस प्रकार केरल में क्योंकि ईसाई समुदाय कुल जनसंख्या का केवल 50 % है, इसलिये 30 (1) के प्रयोजन के लिये अल्पसंख्यक माना जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने यही दृष्टिकोण गुरूनानक विश्वविद्यालय[11] के वाद में दोवारा अपनाया जिसमें सवोच्च न्यायालय ने पंजाब राज्य का यह तर्क अस्वीकार कर दिया कि धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यकों को भारत भी पूरी जनसंख्या के संदर्भ में अल्पसंख्यक होना चाहिये और इनरी केरल एजुकेशन बिल के निर्णय को ध्यान में रखते हुए कहा कि अल्पसंख्यक के राज्य की पूरी जनसंख्या के हिसाब से किसी राज्य विधि में अल्पसंख्यक माना जाएगा। लेकिन इस बात में केवल एक अवरोध है। यह संभव है कि किसी राज्य में जनसंख्या इस प्रकार भाषाई, धार्मिक या सांस्कृतिक वर्गों में बटी हुई हो कि किसी की भी जनसंख्या का प्रतिशत राज्य की जनसंख्या का 50 प्रतिशत ना हो और इस प्रकार सभी समूहों को अनुच्छेद 29 तथा 30 का संरक्षण मिले और ऐसा कोई बहुसंख्यक समूह ना रहे जिसके विरूद्ध संरक्षण का दावा किया गया हो।

मदर प्रोविंरियल बनाम केरल राज्य[12] में यह प्रश्न दोबारा उठाया गया। केरल राज्य ने यह प्रश्न अनिर्णित छोड़ दिया कि क्या अनुच्छेद 30 के अंतर्गत अल्पसंख्यक का अर्थ पूरे भारत में अल्पसंख्यक का होगा या राज्य में या उस क्षेत्र में जहाँ संबंधित विधि लागू होती है। सर्वोच्च

न्यायालय ने अंतिम विचार को त्याग दिया क्योंकि इससे विधायिका उन क्षेत्रों में संविधि लागू नहीं करती जहाँ धार्मिक या भाषाई समूह बहुसंख्यक होंगे । किसी राज्य की विधायीका के लिये संबंधित क्षेत्र वह क्षेत्र होंगे जहां तक विद्यायिका के क्षेत्राधिकार का विस्तार है।

एस. के. पात्रो बनाम बिहार राज्य[13] के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अल्पसंख्यक ने अनुच्छेद 30 के अंतर्गत विशेषाधिकार का दावा करते है, उन्हें भारत में निवासी अल्पसंख्यक होना चाहिये। विदेशी जो भारत में निवास नहीं करते है अनुच्छेद 30 के अंतर्गत नहीं आते। भारत के निवासी एवं जो धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक में स्पष्ट रूप से आते हैं, उन्ही को अनुच्छेद 30 का संरक्षण मिल सकता है। अनुच्छेद 29 के अंतर्गत केवल नागरिक दावा कर सकते हैं पर अनुच्छेद 30 में नागरिकता को अल्पसंख्यकों के लिये स्पष्टत: एक अहर्ता नहीं माना गया है। यह तथ्य कि विद्यालय के विकास के लिये निधि विदेश से जुटाई गई है, अनुच्छेद 30 का सरंक्षण देने से मना करने के लिये आधार नहीं हो सकता।

संविधान बनाते समय अल्पसंख्यकों के संबंध में दो मुख्य प्रश्न सामने आए जो थे। निर्वाचन के पृथक करने का प्रश्न तथा विभिन्न विधायिकाओं में अल्पसंख्यकों के लिये आरक्षण का प्रश्न । अल्पसंख्यकों से संबंधित सलाहकार समिति का मत था कि पृथक निर्वाचन का प्रावधान नये संविधान से पूर्णत: हटा लेना चाहिये क्योंकि इस व्यवस्था से भूतकाल में सांप्रदायिक मतभेद खतरनाक सीमा तक बढ़ गए थे और देश के विकास में ये एक प्रमुख रोड़ा बनकर सामने आए थे। इस प्रकार समिति ने यह परामर्श दिया की सभी केन्द्रीय तथा प्रातीय विधायिकाओं में संयुक्त निर्वाचन होना चाहिये। अल्पसंख्यकों की यह शंका दबाने के लिये कि संयुक्त निर्वाचन की व्यवसथा के कारण उन्हें विधायिक में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा समिति ने कुछ मान्यता प्राप्त अल्पसंख्यक समुदायों के लिये विधायिका में सीटों के आरक्षण का प्रावधान भर दिया। वास्तव में परामर्श समिति दे अपनी 6 अगस्त, 1947 की रिपोर्ट में यह अनुसंशा की थी कि संसद तथा राज्य विधानसभा में जनसंख्या के आधार पर विभिन्न मान्यता प्राप्त अल्पसंख्यकों के लिये स्थान आरक्षित किये जाने चाहिये। प्रारंभ में आरक्षण 10 वर्ष के लिये या और उसके बाद स्थिति की समीक्षा की जानी चाहिए थी। पर इस नियम के व्यवहारिक उपयोग में कई समस्याएँ उत्पन्न हो गई । कुछ अल्पसंख्यक जैसे आंग्ल भारतीय, पारसी, असम की जनजाति संख्या में इतनी सूक्ष्म हैं कि भारतीय जनसंख्या का आधे प्रतिशत भी नहीं बनातीं। भारतीय ईसाई तथा सिख दोनों जनसंख्या के डेढ़ प्रतिशत से भी कम है तथा मुसलमान तथा अनुसूचित जातियां अकेले वड़ा वर्ग बनाते है। सूक्ष्म अल्पसंख्यक जैसे आंग्ल भारतीय के मामले में जनसंख्या के कठोर आधार का अर्थ होगा कि कोई आरक्षण नहीं दिया जा रहा है। लेकिन

समिति ने यह परामर्श दिया कि एक तरह से आग्ल-भारतीयों के लिये एक प्रकार से कोर्ट आरंक्षण नहीं हो सकता परन्तु राष्ट्रपति या राज्यपालों को आंग्ल- भारतीयों को निचले सदनों में सदस्य नामाकित करने की शक्ति दी जा सकती है यदि वे साधारण चुनाव के बाद विधायिकाओं में स्थान नहीं प्रापत कर पाते। समिति ने यह महसूस किया कि इस तरह आग्ल-भारतीय को विधायिकाओं में अपने विशेष हित का प्रतिनिधित्व करने का समुचित अवसर मिल जाएगा। एक सामान्य सिद्धांत यह है कि समिति ने किसी एक अल्पसंख्यक समुदाय को विशेष महत्व देने का विरोध किया था। उसने यह तर्क भी अस्वीकार कर दिया कि अल्पसंख्यक समुदाय का ऐसा सदस्य जो आरक्षित सीट के लिए प्रत्याशी है, उसे जीतने के लिये स्वयं के समुदाय के कुछ न्यूनतम मत मिलने चाहिये। समिति ने संचयी मतदान का भी पक्ष नहीं लिया क्योंकि उसका मत था कि संचयी मतदान तथा समुदाय के न्यूनतम मत के प्रतिशत का प्रावधान में पृथक निर्वाचन के सारे बुरे प्रभाव आ जाएंगे। समिति के समक्ष मुख्य उद्देश्य अल्पसंख्यकों के विशेष दावों का समन्वय स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन के विकास से करना था।[14]

जनमत अल्पसंख्यकों को कोई विशेष आरक्षण देने के पक्ष में नहीं था क्योंकि इससे व्यक्तियों में भेदभाव की भावना निर्मित होती थी और स्वतंत्रता प्राप्ति पूर्व काल में भारतीय राष्ट्र वाद की भावना में अवरोध उत्पन्न होता था। संवैधानिक सभी में बहस के दौरान, व्यवहारिक रूप से सभी अल्पसंख्यक समूह-पारसी, ईसाई, मुसलमान तथा सिखों ने आरक्षण के लिये अपने दावे का त्याग कर दिया था। इसलिये विधायिका में अनुसूचित जाति तथा जनजातियों के अलावा विधायिका में किसी अन्य अल्पसंख्यक समूह के लिये कोई आरक्षण नहीं किया गया। एक अल्पसंख्यक समूह के सदस्य को, चाहे आरक्षित स्थान हों या नहीं अनारक्षित स्थान के लिये चुनाव लड़ने का अधिकार है।

अल्पसंख्यक अधिकारों पर गठित समिति ने नि: संकोच रूप से यह प्रस्ताव निरस्त कर दिया कि अल्पसंख्यकों को उनकी जनसंख्या के अनुपात से मंत्रिमण्डल में स्थान दिया जाए। परन्तु यह सुझाव दिया गया कि संविधान की अनुसूचि में ऐसी परंपरा का प्रावधान किया जाना चाहिये कि मंत्रीमण्डल की नियुक्ति के समय जहां तक व्यवहारिक हो महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक समूहों के सदस्यों को सम्मलित किया जाना चाहिये। समिति ने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया कि लोक सेवाओं में सभी अल्पसंख्यकों को योग्यता के आधार पर आरक्षण मिलना चाहिये परन्तु इस प्रस्ताव को एक खतरनाक पद्धति की भी संज्ञा दी गई। उसी समय यह भी महसूस किया गया कि प्रशासनमें क्षमता के साथ-साथ राज्य को अल्पसंख्यकों के लोक सेवाओं में नियुक्त के दावों पर समुचित ध्यान देना आवश्यक है। इस प्रकार समिति ने सुझाव दिया संविधान के किसी भाग में अल्पसंख्यकों के लोक सेवाओं में नियुक्ति के दावों को देखते हुए प्रशासनिक क्षमता के साथ-साथ केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों को

उनकी नियुक्ति को भी प्रोत्साहित करना चाहिये। इस तरह अस्थाई समय के लिये आंग्ल-भारतीयों से इस मामले में भिन्न व्यवहार किया गया।

आंग्ल भारतीय एक धार्मिक व सामाजिक तथा भाषाई अल्पसंख्यक समूह को गठित करते हैं। अनुच्छेद 336 (2)के अनुसार आंग्ल भारतीय का अर्थ वह व्यक्ति होगा जिसके माता या पिता या जिसकी पैतृक संतति में कोई यूरोपीय मूल का है पर जो भारत के राज्य क्षेत्र में निवास करता है या वह ऐसे क्षेत्र में पैदा हुआ है या हुआ था जहाँ उसके माता पिता आदतन निवास करते थे और वहां केवल अस्थाई समय के लिये स्थापित नहीं थे। संविधान में आंग्ल-भारतीय समुदाय के संरक्षण के लिये कुछ विशेष उपबंध हैं।

यदि राष्ट्रपति की राय में लोकसभा में आंग्ल- भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह उस समुदाय के अधिक से अधिक 2 सदस्यों को लोकसभा में नामजद कर सकता है। इसी प्रकार यदि किसी राज्य का राज्यपाल यह समझता है कि राज्य की विधान सभी में आंग्ल-भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है तो वह उस समुदाय के एक सदस्य को विधान-सभा में नामजद कर सकता है। यह प्रावधान आंग्ल-भारतीय समुदाय के लिये आवश्यक ये क्योंकि आंग्ल-भारतीय संख्यात्मक रूप से एक बहुत छोटा समुदाय है और पूरे भारत में फैला हुआ है और यह आशा नहीं की जा सकती कि चुनाव द्वारा वह चुनाव में कोई सीट प्राप्त कर पाएगा।

अनुच्छेद 336 आग्ल भारतीय समुदाय को कुछ सेवाओं में विशेष संरक्षण प्रदान करता है। स्वतन्त्रता पूर्व, ऐतिहासिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप आंग्ल-भारतीय कुछ प्रकार की सेवाएँ जैसे रेल, सीमा-शुल्क, डाक-तार संबंधी सेवाओं कुछ विशेषाधिकारों का प्रयोग कर रहे थे। संविधान के निर्माण के समय समुदाय की पूरी अर्थ-व्यवस्था इन रोजगारों पर निर्भर थी क्योंकि समुदाय का 76% रोजगार योग्य वर्ग अपनी जीविका के लिये इन सेवाओं पर निर्भर था। इस समुदाय को किसी आकस्मिक आर्थिक भार से बचाने के लिये ये प्रावधान बनाए गए। ये प्रावधान कुछ समय के लिये जारी रखे जाने थे और धीरे-धीरे हटा लिये जाने थे। इसी प्रकार से विशेष छूट का अंत हो गया क्योंकि यह 25 जनवरी 1960 तक के लिये थीं।

स्वतंत्रतापूर्व आंग्ल-भारतीय शैक्षणिक संस्थाओं की विशेष अनुदान प्राप्त था। ये अनुदान संविधान के आने के बाद कुछ सवाल दूसरे समुदायों के स्तर तक लाया गया। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 337 के अंतर्गत संविधान के प्रवर्तन के पहले 3 सालों तक संघ द्वारा राज्यों को आंग्ल-भारतीयों की शिक्षा के लिये दिये जाते थे जो 31 मार्च 1948 से शुरू हुए। अगले 3 सालों तक ये अनुदान पिछले वर्षों की अपेक्षा 10%कम कर दिये गए ताकि 1960 तक ये अंत हो जाएँ। परन्तु किसी

भी आंग्ल-भारतीय शैक्षणिक संस्था को तब तक अनुदान नहीं मिलेगा जब तक कम से कम 40 % प्रवेश आंग्ल-भारतीय समुदाय से भिन्न समुदायों को उपलब्ध न कराया जाए। बंबई राज्य बनाम बाम्बे ऐजुकेशन सोसाइटी के वाद में न्यायालय ने सरकार के उस आदेश को, जो आंग्ल-भारतीय स्कूलों में दूसरे समुदाय के छात्रों के प्रवेश पर रोक लगाता था, इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया कि यह आंग्ल-भारतीय समुदाय के अनुच्छेद 337 के द्वारा आरोपित कर्त्तव्य पालन से रोकता है। जिसके अनुसार उन्हें अपनी शिक्षा में 40 % प्रवेश दूसरे समुदायों को देने के लिये कहा गया है। अनुच्छेद 337 के अंतर्गत आंग्ल-भारतीय स्कूलों को अनुदान देने के लिये 40 % प्रवेश दूसरे समुदाय के छात्रों को देने के अतिरिक्त कोई शर्त नहीं लगा सकता।

अनुच्छेद 333(3) के अधीन अनुसूचित जाति एवं जनजाति के आयुक्त पर यह उत्तरदायित्व भी अधिरोपित किया गया है कि वह आंग्ल-भारतीयों को दी गई सुरक्षाओं का क्रियान्वयन कराए। आज की परिस्थिति में संसद तथा राज्य विधानसभाओं में प्रतिनिधित्व के अलावा आंग्ल-भारतीयों को कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं है और अपने वार्षिक प्रतिवेदन में आयुक्त इस स्थिति की समीक्षा करता है।

संसद की संयुक्त समिति ने विधेयक पर अपने प्रतिवेदन में यह निर्धारित करने के लिये कि क्या कोई समुदाय अनुसूचित जनजाति में आने के लिये उपयुक्त है, निम्न प्रावधान किया है। प्राचीन लक्षण, भौगोलिक पृथ्थकरण, भिन्न संस्कृति एवं धार्मिक पिछड़ापन। परंतु समिति ने यह एक बहुत विवादास्पद सुझाव भी दिया है कि कोई जनजाति का सदस्य जो जनजाति के आस्था को छोड़ ईसाई धर्म या मुस्लिम धर्म अपना लेता है उसे जनजातीय विशेषाधिकारों से वंचित कर दिया जाएगा भले ही समिति द्वारा दिये गए दूसरे प्रावधानों को पूर्ण करता हो जो कि बहुत कठिन कार्य है। भारत सरकार इस सुझाव को समर्थन नहीं लेती क्योंकि यह धर्मनिरपेक्षता के मूल सिद्धांत के विपरीत है। इस प्रश्न पर संसद का मत विभाजित है। ज्यादातर सदस्य इस सुझाव को मानने के पक्षधर है परंतु मुसलमानों और ईसाईयों ने इसका कठोरता से विरोध किया है। उनका तर्क यह है कि मात्र इसलिये कि एक जनजातीय सदस्य मुसलमान या ईसाई बन गया है वह समृद्ध, सभ्य तथा प्रगतिशील नहीं बन सकता है। यह तर्क भी दिया जाता है कि धर्म को पिछड़ेपन का आधार बनाने से यह धर्मनिरपेक्षता के विरूद्ध होगा। नबम्बर 1970 को यह विधेयक लोकसभा के समक्ष चर्चा के लिये आया परन्तु प्रश्न से जुड़ी गहरी भावनाओं के कारण से इसे स्थगित कर दिया गया। इस समस्या को संतोषजनक तरीके से सुलझाना होगा और यह कथन सत्य है कि केवल धर्म परिवर्तन से आर्थिक तथा सामाजिक दशा नहीं सुधरती।

अब यह साधारण नीति के रूप में सिद्ध हो गया है कि भाषायी अल्पसंख्यकों के बच्चों को उनकी मातृ भाषा में प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्रदान की जानी चाहिये। व्यवहारिक रूप से हर राज्य इस बात के लिये सहमत हो गया है कि प्राथमिक अवस्था में शिक्षा मातृ-भाषा में दी जानी चाहिये परंतु इस नीति के क्रियान्वयन में व्यवहारिक समस्या तीन मुख्य कारणों से उत्पन्न होती है - (1) किसी कक्षा या विद्यालय में निश्चित संख्या से कम भाषाई अल्पसंख्यक व्यक्ति होने पर ; (2) विभिन्न अल्पसंख्यक भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों की कमी के कारण ;(3) ऐसे शिक्षकों की कमी जो अल्पसंख्यक भाषा में पढ़ा सकें। भाषायी अल्पसंख्यकों के लिये गठित परिषद ने इस समस्या के निदान के लिये कुछ प्रशासनिक कदम बताए हैं। राज्यों को उत्तरदायित्व को इस बात से आंका जा सकता है कि आयुक्त ने अनु 350 श के बारे में जो स्पष्टीकरण दिया था, उसमें शब्द मातृ-भाषा का प्रयोग हुआ था जिसका आठवीं अनुसूचियों में दी गई भाषाओं से विस्तृत अर्थ है जिसका अर्थ है कि राज्य का दायित्व आठवीं अनुसूचि में दी गई भाषाओं में शिक्षा उपलब्ध कराने से ही पूर्ण नहीं होता और यह उससे आगे जाकर कहता है कि राज्य मातृ भाषा में शिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराए।

वर्तमान अल्पसंख्क दुनिया के प्रत्येक कोने में स्थित हैं। समाजशास्त्री साधारणतया अल्पसंख्यकों को ऐसे समूह के रूप में परिभाषित करते हैं जो उसी समाज के लोगों से जाति, राष्ट्रीय धर्म या भाषा के आधार पर भिन्न है और जब दोनों स्वयं को भिन्न वर्ग का मानते हैं और दूसरे भी उन्हें उसी समूह में विद्यमान पहचान के द्वारा भिन्न मानते हैं तो दूसरों द्वारा भेदभाव ऐसा व्यवहार है जो उन्हें दूसरों से पृथक करता है। प्रथम विश्व युद्ध के समय से अल्पसंख्यक शब्द ने विधिक तथा संवैधानिक महत्व प्राप्त कर लिया है। एक्विजीशन आफ पोलिश नेशनालिटी के वाद में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने कहा कि अल्पसंख्यक वे सभी निवासी हैं जो बाकी जनसंख्या से जाति, भाषा या धर्म के आधार पर भिन्न हैं पर यह परिभाषा बिल्कुल सही प्रतीत नहीं होती क्योंकि यह साफ है कि अल्पसंख्यकों को राज्य की जनसंख्या का छोटा भाग लेना चाहिये। यह बिन्दु सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इन री केरल एजुकेशन बिल के वाद में आया इसमें केरल सरकार ने तर्क दिया कि अल्पसंख्यक होना चाहिये जहाँ शैक्षणिक संस्था स्थित है, वह भी मूल अधिकारों के अंतर्गत दावा कर सकती है। न्यायालय ने इस तर्क की अस्वीकार करते हुए कहा कि यह विधेयक पूरे राज्य पर लागू होता है और अल्पसंख्यकों को केरल राज्य की जनसंख्या के आधार पर निश्चित किया जाना चाहिये और इस प्रकार ईसाई, मुसलमान तथा आंग्ल- भारतीय अल्पसंख्यक की परिभाषा के अंतर्गत सम्मलित है। इसका अर्थ यह है कि जब संसद के किसी अधिनियम के संबंध में प्रश्न उठता है, अल्पसंख्यक शब्द को पूरे भारतीय गणतन्त्र की जनता को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाएगा। ए.एम. पैट्रोनी बनाम केशवन[15] के वाद में प्रश्न यह था कि

क्या रोमन कैथोलिक केरल राज्य मेंअनुच्छेद 30 (1) के अर्थ में अल्पसंख्यक हैं और केरल उच्च न्यायालय ने कहा कि 'अल्पसंख्यक' शब्द संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है और इसलिये यह अभिनिर्धारित किया गया कि धार्मिक या भाषाई समुदाय जो राज्य की कुल जनसंख्या के 50 % से कम है, उसे अनुच्छेद 30 द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकार पाने का अधिकार है। न्यायालय के ये दो निर्णय यह प्रदर्शित करते हैं यदि नागरिकों के कोई वर्ग को अनुच्छेद 29 व 30 के अर्थ में अल्पसंख्यक वर्ग गठित करने के लिये जनसंख्या 50% से कम भाग होना चाहिये। अनुच्छेद 29 (1) उपबंधित है कि भारत क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग को जिनकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 30 (1) धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यकों की बात करता है। इन दोनों प्रावधानों का पूरा सार यह है कि संविधान द्वारा तीन विभिन्न अल्पसंख्यक वर्गों की मान्यता दी गई है वे है सांस्कृतिक, धार्मिक तथा भाषाई। यह भी स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के परिपेक्ष्य में अल्पसंख्यक शब्द को केवल भारतीय नागरिकों तक ही सीमित रखा जाएगा और विदेशी अल्पसंख्यक जो भारत में निवास करते हैं उन पर लागू नहीं होगा।

दूसरे देशों से भिन्न, शब्द 'जातीय' को भारतीय संविधान में प्रयुक्त नहीं किया गया है। क्या इसका यह अर्थ है कि भारत में कोई जातीय अल्पसंख्यक नहीं हैं ? इस शब्द का उत्तर संविधान के अनुच्छेद 29 (1) में प्रयुक्त 'संस्कृति' शब्द के संदर्भ में दिया जा सकता है। इस शब्द का विस्तृत अर्थ है और वह अपने में जीवन के सामाजिक, आध्यात्मिक, नैतिक तथा धार्मिक पहलू भी सम्मिलित करता है जो एक पृथक सभ्यता है जो बहुसंख्यक सभ्यता से भिन्न है तो ऐसा वर्ग अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत एक सास्कृति अल्पसंख्यक वर्ग का गठन करेगा और यह अंतर एक भिन्न जातीय अल्पसंख्यक वर्ग का गठन कर सकते हैं। इसलिये अपने विस्तृत अर्थ में, सांस्कृतिक अल्पसंख्यक में हर प्रकार के अल्पसंख्यक सम्मिलित होंगे चाहे धार्मिक, भाषाई या जातीय हों।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने अपनी क्षमता के अनुसार अल्पसंख्यक तथा बहुसंख्यक समुदायों के मध्य टकराव रोकने की कोशिश की और इसके लिये उन्होंने अल्पसंख्यकों के संरक्षण के उपायों का प्रावधान किया। मूल अधिकार सभी नागरिकों को दिये गये हैं। इसका अर्थ यह है कि मौलिक अधिकार प्रत्येक नागरिक को चाहे वह अल्पसंख्यक हो या बहुसंख्यक को प्राप्त हैं। इस प्रकार प्रत्येक भारतीय नागरिक को चाहे उसकी जो भी जाति, लिंग, भाषा, मूलवंश, संस्कृति या धर्म हो उसे पूर्ण विधिक समानता प्रदान की गई है। हमारे संविधान में समानता के अधिकार अनुच्छेद 14, 15 तथा 16 में दिये गए हैं।

विधिक समानता लाने के उद्देश्य से अनुच्छेद 14 भारत राज्य क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को

विधि के समक्ष समानता तथा विधियों के समान संरक्षण का अधिकार प्रदान करता है। इसका अर्थ है कि सभी पर समान विधि लागू होगी अर्थात् समान लोगों के प्रति विधि समान होगी और उन्हें समान रूप से प्रशासित किया जाएगा। क्योंकि यह अनुच्छेद किसी भी व्यक्ति पर लागू होता है जो प्राकृतिक तथा विधिक नागरिक, अनागरिक तथा इस प्रकार सभी अल्पसंख्यकों को सम्मिलित करता है चाहे उनकी जाति , भाषा, संस्कृति या धार्मिक रूप से भिन्न हों उन्हें बहुसंख्यक समूह की बराबरी का दर्जा मिलेगा। इस अनुच्छेद के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि अल्पसंख्यक, बहुसंख्यकों के समाने विधिक रूप से अक्षम नहीं है। इसी प्रकार अनुच्छेद 15 तथा 16 के प्रावधान समानता के सामान्य अधिकार का विस्तार हैं। अनुच्छेद 15 राज्य के केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी भी आधार पर किसी नागरिक के विरूद्ध असमानता के व्यवहार को रोकता है यह अधिकार केवल नागरिकों को ही प्राप्त है। अनुच्छेद 16 राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में अनुच्छेद 15 में दिये गए आधारों तथा जन्मस्थान या निवास के आधार पर भेदभाव का निषेध करता हैं। ये दोनों अनुच्छेद किसी भी प्रकार के भेदभाव का निषेध करते हैं और यह कहा जा सकता है कि अल्पसंख्यक समुदाय के कोई भी सदस्य को इसलिये अशक्त नहीं बनाया गया है क्योंकि वह किसी विशेष समूह का सदस्य है।

समानता की धारणा जैसी कि हमारे संविधान में निहित है ,ने विधि के समक्ष सभी को समान बना दिया है और यह हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक मूलभूत सिद्धांत माना गया है। इसे स्वीकार करने के बाद हमने इसे प्रशासन में सामाजिक न्याय के एक संचालक के रूप में प्रयोग किया है इससे काफी सीमा तक हम भेदभाव के गुणक को हटाने में सफल हुए हैं। भेदभाव गुणक जैसे भाषावाद, जातिवाद तथा सम्प्रदायवाद के इस भय को बल मिला है कि समुदाय के कमजोर वर्गों को उनके अधिकार नहीं मिल पाएँगे। इस प्रकार यदि दूसरी बातें समान हों तो अल्पसंख्यकों को भी ऊँचे लोकपदों पर नियुक्त होने का अधिकार , उनके पास साधारण नागरिकता और सांस्कृतिक समीपता के कारण यह अधिकार संयुक्त अस्तित्व स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभांएगें।

लेकिन अल्पसंख्यकों की विशिष्टताएँ तथा परम्परा तथा संस्कृति के सरंक्षण के लिये संविधान में अनुच्छेद 29 तथा 30 में विशेषाधिकार दिये गए हैं। ये प्रावधान अल्पसंख्यकों की संस्कृति तथा संस्था इत्यादि के प्रति संवेदात्मक विचार प्रदर्शित करते हैं। भारत क्षेत्र या उसके किसी भाग में नागरिकों का कोई भी वर्ग जिसकी भिन्न भाषा, लिपि या संस्कृति हो तो उसे संरक्षित करने का अधिकार होगा। राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश पाने से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी भी आधार पर वंचित

न किया जाएगा। अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि के अनुसार शिक्षा-संस्थानों को स्थापित करने और उन पर प्रशासन करने का अधिकार प्राप्त है। राज्य शिक्षा संस्थानों को सहायता देने में किसी विद्यालय के विरूद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म एवं भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक के प्रबंध में है। संविधान के कुछ आलोचकों का मत है कि इन प्रावधानों को बनाए रखने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि एक बार दो-राष्ट्र के सिद्धांत के आधार पर विभाजन के पश्चात् इस संरक्षण की वह आवश्यकता तथा महत्व नहीं रहा जो 15 अगस्त, 1947 से पूर्व था। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि यह प्रावधान सोच- समझकर इसलिये सम्मिलित किये गए थे जिससे बहुसंख्यकों की संस्कृति के प्रभाव से अल्पसंख्यकों को बचाया जा सके ताकि उनकी संस्कृति सुरक्षित रह सके।

सी. जे. दास ने बहुमत के पक्ष में बोलते हुए कहा कि अल्पसंख्यक समुदाय सफलतापूर्वक अपनी संस्कृति, भाषा या लिपि का संरक्षण अपनी पसंद भी शैक्षणिक संस्था द्वारा कर सकते हैं तथा और अपनी रूचि की शैक्षणिक संस्था स्थापित करने का अधिकार अपनी भाषा, लिपि तथा संस्कृति संरक्षित करने के आधार का सहगामी है तथा जो सभी अल्पसंख्यकों को अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रदान किया गया है। यह अधिकार संविधान-पूर्व तथा संविधान पश्चात् स्थापित दोनों संस्थाओं को प्राप्त है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है अल्पसंख्यक संस्था में गैर-अल्पसंख्यक सदस्य के प्रवेश से संस्था का अल्पसंख्यक चरित्र समाप्त नहीं हो जाता। यदि राज्य किसी अल्पसंख्यक द्वारा स्थापित संस्था को सहायता तथा मान्यता देना चाहता है तो इसके बदले वह उसका अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रदत्त संस्थाएँ प्रशासित करने का अधिकार वापस नहीं ले सकता। क्योंकि प्रशासित करने के अधिकार में बुरा प्रशासन करने का अधिकार सम्मलित नहीं है। इस प्रकार शैक्षणिक संस्था को प्रशासित करने का अधिकार राज्य के युक्तियुक्त विनियमन के अधिकार से टकराता नहीं है क्योंकि यह सहायता प्राप्त संस्था की श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए आवश्यक है। कि राज्य का अनुदान पाना कोई संवैधानिक अधिकार नहीं है इसलिये राज्य अनुदान दे भी सकता है और नहीं भी दे सकता। परन्तु राज्य ऐसी शर्तें नहीं लगा सकता जो अनु. 30 (1) का उल्लंघन करें। राज्य इस तर्क पर अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा स्थापित विद्यालयों का प्रबंधन नहीं ले सकता क्योंकि नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराना आवश्यक है जैसा कि नीति- निर्देशक तत्वों द्वारा अपेक्षित है (अनु 41, 45,46)। विनियमों की युक्तियुक्तता की कोई कसौटी इस वाद में नहीं बताई गई परन्तु सिद्धराज भाई बनाम गुजरात राज्य[16] के वाद में न्यायालय ने कहा है कि ऐसे विनियम जो अनुदान प्राप्त करने या मान्यता की शर्तों के रूप में विधिपूर्वक लगाए जा सकते हैं, संस्था को अल्पसंख्यक संस्था के रूप में इसके स्वरूप को बनाए रखते हुए एक शिक्षा-संस्था के रूप में प्रभावपूर्ण बनाने के लिये होने चाहिये। ऐसे विनियमों को दोहरी कसौटी पूरी करनी चाहिये-(1) उन्हें युक्तियुक्त होना चाहिये, और

(2) संस्था के शैक्षणिक स्वरूप को विनयमित करने वाला होना चाहिये जो अल्पसंख्यक- समुदाय अथवा उन व्यक्तियों के लिये आश्रय देते हैं,वे संस्था को शिक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनाने में सहायक हैं।

मद्रास राज्य बनाम चम्पाकम दौरे राजन[17] के वाद में राज्य सरकार के एक साम्प्रदायिक आदेश की संवैधानिकता को चुनौती दी गई थी। इस आदेश द्वारा राज्य के मेडिकल और इंजीनियरिंग कालेजों में प्रवेश के लिये प्रत्येक समुदाय के लोगों के लिये स्थानों का एक निश्चित प्रतिशत निर्धारित किया गया था। इस आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई कि केवल धर्म या जाति के आधार पर लोगों को कालेजों में प्रवेश करने का उपबंध करता है। याचिकाकर्ता को ब्राह्मण होने के नाते कालेज में प्रवेश देने से इंकार कर दिया था उच्चतम न्यायालय ने उक्त आदेश को 29 (1) के विरूद्ध होने के कारण अवैध घोषित कर दिया। इस निर्णय से उत्पन्न कठिनाई को दूर करने के लिये संविधान का प्रथम संशोधन अधिनियम 1951 पारित किया गया। इसका उद्देश्य अनु. 15, 29 एवं 16 (1) में समन्वय स्थापित करना था इससे संशोधन द्वारा अनुच्छेद 15 में खंड 3 के बाद एक नया खंड जोड़कर राज्य को सामाजिव व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हुए वर्गो के लिए या अनुसूचित जाति या जनजाति की उन्नति के लिए विशेष उपबंध करने की शक्ति प्रदान कर दी गयी है। एक दूसरे वाद में न्यायालय ने सरकार के उस आदेश को जो आंग्ल-भारतीय स्कूलों में दूसरे समुदायों के छात्रों के प्रवेश पर रोक लगाता था जिसका उद्देश्य हिन्दी भाषा को प्रोत्साहित करना था पर इससे आग्ल भारतीय स्कूलों पर विपरीत प्रभाव पड़ा क्योंकि इससे छात्रों की काफी संख्या कम हो गई थी। बंबई उच्च न्यायालय से परमादेश याचिका की मांग की गई। बंबई उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आंग्ल-भारतीय समुदाय एक वंशगत समुदाय है और उनकी भिन्न भाषा है तथा इस प्रकार उनको अनुच्छेद 30 के अधीन अपनी भाषा संरक्षित करने का अधिकार है और राज्य यह निर्देश नहीं दे सकता कि स्कूलों की प्रकृति कैसी हो। बंबई राज्य की अपील पर सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि क्योंकि राज्य का आदेश अनुच्छेद 29 (2) के विपरीत था, इसलिये असंवैधानिक है। न्यायालय ने आगे कहा कि अनुच्छेद 29(2) की भाषा विस्तृत है तथा शर्तहीन है तथा सभी नागरिकों को सम्मलित करती है चाहे वे अल्पसंख्यक वर्ग के हों या बहुसंख्यक हों। अनु 15 सभी नागरिकों को राज्य के विरूद्ध संरक्षित करता है जबकि अनुच्छेद 29 (2) का संरक्षण राज्य अनुदान द्वारा पोषित संस्थाओं तक है। अनुच्छेद 15 सभी नागरिकों को भेदभाव के विरूद्ध सामान्य संरक्षण प्रदान करता है परन्तु 29(2) विशेष वर्ग को संरक्षण प्रदान करता है, विशेष तौर पर शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश से निषेध का अधिकार।

अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं के प्रशासन के मामलों में धर्म और भाषायी अल्पसंख्यक

वर्गों को प्रदान किया गया अधिकार आत्यन्तिक [absolute] अधिकार नहीं है। यह अधिकार विनियमन से मुक्त नहीं है। जिस प्रकार अल्पसंख्यक संस्थाओं के शैक्षणिक स्वरूप को बनाये रखने के लिए विनियमन करने वाले उपाय जरूरी हैं उसी प्रकार व्यवस्थित दशा तथा स्वस्थ प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए भी विनियमन करने वाले उपायों की आवश्यकता है। किन्तु न्यायालयों ने अनेक विनिश्चयों में यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रशासन के अधिकार में कुप्रशासन का अधिकार शामिल नहीं है।

सरकार द्वारा अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित या प्रशासित संस्थानों को अनुदान तथा मान्यता देने के संबंध में अक्सर अनुच्छेद 30 (1) के अधीन न्यायालय के समक्ष प्रश्न उठाए जाते हैं। ये प्रश्न इन संस्थाओं के लिये अति महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि ऐसी सहायता या मान्यता के बिना आज किसी भी शैक्षणिक संस्था के जीवित रहने तथा काम करने की आशा नहीं की जा सकती है। भले ही अल्पसंख्यक अपने संस्थान अपने बच्चों को शिक्षा तथा ऐसे वातावरण देने के लिये स्थापित करते तथा चलाते है जो उनकी संस्कृति के विकास में सहायक हो पर अनुच्छेद 30 (1) के अधीन अल्पसंख्यको को दिए गए अधिकार का उद्देश्य केवल भाषा तथा संस्कृति का संरक्षण ही नहीं है। वह यह उम्मीद भी कर सकते हैं कि उनके संस्थानों के छात्र अपने जीवन में अच्छा भविष्य बनाएँ। गैर मान्यताप्राप्त विद्यालयों के छात्र ऊँचे शैक्षणिक संस्थान या लोक सेवाओं में प्रवेश नहीं पा सकते और इसलिये बिना मान्यता के अल्पसंख्यकों द्वारा चलाई जा रही संस्थाएं अपना कार्य ठीक प्रकार से नहीं कर सकतीं और अनुच्छेद 30 (1) द्वारा दिया गया अधिकार उससे बहुत सारहीन हो जाएगा। अनुच्छेद 30 (2) राज्य को शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में किसी विद्यालय के विरूद्ध कार्य एवं भाषा के आधार पर विशेष करने से होता है पर क्या सरकार अनुदान तथा मान्यता देने पर युक्तियुक्त नियम बना सकती है। शिक्षा का स्तर पूरी तरह से प्रशासनिक विषय नहीं है। इसलिये विश्वविद्यालय परीक्षाओं के लिये ऐसा पाठ्यक्रम निर्देशित कर सकता है जो सभी संस्थानों को मानना आवश्यक हो पर ऐसी संस्था अपनी पसंद के दूसरे विषय भी पढ़ा सकता है। अल्पसंख्यक के प्रशासन का अधिकार सम्मलित नहीं है। एक अल्पसंख्यक उसके द्वारा चलाई जा रही किसी ऐसी शैक्षणिक संस्था के लिये सहायता नहीं मांग सकती जो उसके द्वारा अस्वस्थ्य वातावरण में चलाई जा रही ही या बिना सक्षम तथा योग्य शिक्षकों के चलाई जा रही हो या जिसका पढ़ाई का स्तर सहीं नहीं हो। राज्य का सहायता तथा मान्यता के लिये शर्त की तरह युक्तियुक्त निंबंधन लगाने के अधिकार उसे अल्पसंख्यकों के अपनी पसंद से शैक्षणिक संस्थान चलाने के अधिकार देने के लिये प्राधिकृत नहीं करता। युक्तियुक्तता की धारणा को परिभाषित करते हुए न्यायालय इस बात पर जोर देता है कि 30 (1) के अधीन प्राप्त अधिकार निर्वन्धनों के द्वारा दबाया नहीं जा सकता जो अल्पसंख्यक संस्थाओं के लिये नहीं वरन् जनता या राष्ट्र के लिये बनाए गए हों।

अनुच्छेद 30(1) अर्थहीन हो जाएगा यद्यपि हर आदेश जनता या राष्ट्रीय हित में न्यायोचित बनाया जाए जो कि अल्पसंख्यकों के आधिकारिक चरित्र को बनाए रख उसकी प्रशासनिक क्षमता को नष्ट न करे और स्वयं उसके हित में नहीं होगा परंतु ऐसे निर्देश जो कि विधिपूर्वक अनुदान या मान्यता देने की शर्त के रूप में लगाए जा सकते हैं वे ऐसे होने चाहिये जो ऐसी शैक्षणिक संस्था को ओर सक्षम बनाएँ तथा उनका अल्पसंख्यक स्वाभाव बनाये रखें।

अल्पसंख्यक संस्था द्वारा नियम, संस्था के सही हित अनुशासन, स्वास्थ्य, सफाई, नैतिकता, लोकव्यवस्था तथा इसी प्रकार के अन्य कारणों के लिये बनाए जा सकते हैं। ऐसे नियम अधिकारों के सार पर निर्वन्धन नहीं होते परन्तु संस्था के सही क्रियाकलापों की सुरक्षा करते हैं। सिद्धराज भाई के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने यह तर्क मानने से मना कर दिया कि लोक या राष्ट्रीय हित ही युक्तियुक्तता का एकमात्र आधार है और यह कि किसी नियम को तब तक अयुक्तियुक्त नहीं माना जाएगा जब तक कि वह पूरी तरह अल्पसंख्यक पसंद के शैक्षणिक संस्था चलाने के अधिकार को नष्ट कर दे या उसका उन्मूलन कर दे। ऐसी शर्त को ऐसे शिक्षकों की सुरक्षा के लिये बनाई गयी थी जो राष्ट्र की सेवा में कार्यरत थे तथा पिछड़े वर्गो की सुरक्षा में लगे थे उनको न्यायालय ने अनुमति दे दी। परंतु ऐसे प्रावधान जो सरकार को विद्यालयों का प्रबंधन विशेष परिस्थितियों में लेने के लिये प्राधिकृत करते थे या हर्जाना देने के बाद ऐसी संस्था के प्रबंध को अपने हाथ में लेने के लिये प्राधिकृत करते थे। न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किये गए क्योंकि ऐसे प्रावधान पूरी तरह से अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रदत्त अधिकारों को नष्ट करते थे। इसी प्रकार यह शर्त कि प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण का कोई शुल्क नहीं लिया जायगा, अनुच्छेद 30 (1) के अधीन वैध नहीं होगा क्योंकि छोटी कक्षाओं में छात्रों की अधिक संख्या के कारण संस्था को नुकसान होगा जिसकी पूर्ति के लिये कोई भी व्यवस्था नहीं की गई थी और इस प्रकार से संस्था चलाना असंभव हो जायेगा।

सरकारी आदेश जिसके अनुसार प्राइवेट प्रशिक्षण महाविद्यालय में 80 % सीट सरकार द्वारा नियुक्त अभ्यर्थियों को दी जानी थी अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत संविधान के विरूद्ध माना गया क्योंकि इसने अल्पसंख्यकों द्वारा स्वयं के महाविद्यालय के प्रशासन के अधिकार पर गंभीर व्यावधान उत्पन्न कर दिया था। यह आदेश इसलिये दिया गया था ताकि लोक हित में संस्था एक अधिक प्रभावी शैक्षणिक संस्था बन सके परंतु यह युक्तियुक्तता का अतिक्रमण है।

सरकार द्वारा किसी ऐसे विद्यालय की प्रबन्धन समिति का अधिग्रहण करना असंवैधानिक होगा जो धार्मिक अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित तथा प्रशासित किया गया हो। विद्यालय की प्रबधन परिषद ने विद्यालय स्थापित किया जो JESUITS द्वारा प्रबंधित था और JESUITS

ने एक व्यक्ति को नियुक्त किया JESUITS था पर विद्यालय के हेडमास्टर के लिये विद्यालय का वरिष्ठतम् शिक्षक नहीं था। शिक्षा विभाग के निर्देशक ने प्रबन्धन द्वारा की गई नियुक्ति को निरस्त कर दिया। प्रबन्धन के अनुच्छेद 30 (1) के अधीन इसको को चुनौती दी और सर्वोच्च न्यायालय ने तर्कों को निरस्त करते हुए कहा कि हेडमास्टर की नियुक्त विद्यालय के प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है और ऐसे अधिकार पर कोई अवरोध उत्पन्न करना अनुच्छेद 30 (1) का अतिक्रमण होगा सिवाय जबकि आवश्यक अहर्ताएं अनुभव के निर्देश दिये जाएँ।[18]

बिहार विश्वविद्यालय अधिनियम में प्रावधान था कि मान्यता प्राप्त महाविद्यालयों से नियुक्ति, पदच्युति, सेवा समाप्ति या शिक्षकों की श्रेणी में पराभव केवल विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अनुशंसा पर किया जायेगा। आयोग को हर पद के लिए दो लोगों का मण्डल नियुक्त करना था। अनुशासन के मामलों में भी अंतिम शक्ति मण्डल को दी गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रावधान को अवैध ठहरातें हुए कहा कि यह महाविद्यालयों के अधिशासी निकायों को पूरी तरह से प्रत्यक्षतः महाविद्यालय पर नियंत्रण आयोग में निहित कर देता है। परन्तु ऐसा प्रावधान जो कालेज के अल्पसख्यको के द्वारा शासित निकाय में नियुक्त, पदच्चुति इत्यादि का अधिकार आयोग के अनुमोदन के बाद देता था, वैध निर्धारित किया गया।[19]

केरल राज्य बनाम मदर प्रोविंशियल के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने केरल विश्वविद्यालय अधिनियम, 1969 के कुछ प्रावधानों को अनुच्छेद 30 (1) के अंतर्गत अवैध घोषित किया। इस अधिनियम के अंतर्गत हर प्राइवेट महाविद्यालय के लिये समिति गठित की जाएगी जिसमें 11 सदस्य होंगे जिसमें से 11 संबंधित शिक्षण संस्था नामांकित करेगी, यह वह निकाय होगा जो प्राइवेट महाविद्यालय स्थापित एवं पोषित करेगा। समिति में प्रधानाचार्य, प्रबंधक तथा मनोनीत व्यक्ति भी होंगे। सदस्य चार महीनों के लिये कार्यभार ग्रहण करेंगे। यह एक नियमित निकाय होगा और उसी में महाविद्यालय का प्रबंधन निहित होगा। न्यायालय ने इन प्रावधानों को अवैध घोषित किया क्योकि वे संस्थापकों से स्वयं की संस्था के प्रशासन का अधिकार छीनते थे। एक संविधिक निकाय की स्थापना के बाद संस्थापक या समुदाय के हाथ में कोई प्रशासन नहीं बचता था। अधिशासी निकाय के पास एक विधिक चरित्र था जो शैक्षणिक संस्था से भिन्न था। इसके सदस्यों को शैक्षणिक संस्था को कोई उत्तर नहीं देना था क्योकि संस्था के कार्य एवं शक्तियाँ अधिनियम द्वारा निर्धारित थे। विश्वविद्यालय के सिंडिकेट के पास कालेज के अधिशासी निकाय के किसी क्रिया-कलाप के विरूद्ध कदम उठाने की शक्ति थी। शिक्षकों को चुनने की शक्ति भी शैक्षणिक संस्था से लेकर स्वशासी निकाय में निहित कर दी गई थी। इन प्रावधानों को गलत अभिनिर्धारित किया गया जिसमें समुदाय के संस्थापक को छोड़ कर

दूसरे व्यक्तियों को महाविद्यालय के प्रशासन में हस्तक्षेप का अधिकार था। इनके अलावा कुछ परिस्थितियों में विश्वविद्यालय को यह अधिकार दिया गया था कि वह अधिशासी समिति से महाविद्यालय प्रबंधन का अधिकार अपने हाथ में ले लिया। यह प्रावधान को भी अनुच्छेद 30 (1) द्वारा प्रदत्त अधिकार से बाहर माना गया।

अत: अल्पसंख्यकों द्वारा चलाई जा रही साधारण शैक्षणिक संस्थाओं को बहुसंख्यक समूह द्वारा चलाई जा रही संस्थाओं के अपेक्षा सरकारी नियत्रंण से अधिक सुरक्षा प्राप्त है। राष्ट्रीय हित में बहुसंख्यकों पर मान्यता तथा अनुदानों से संबंधित कठोर शर्तें अधिरोपित की जा सकती है, परंतु अल्पसंख्यक समुदायों पर ऐसे नियम लागू करने के लिए कठोर सीमाएँ बनाई गई हैं। पर क्या संविधान के निर्माता ऐसा परिणाम चाहते थे या वे चाहते थे कि अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित साधारण शैक्षणिक संस्थाएँ जिन्हें उनकी भाषा, संस्कृति या लिपि के सरंक्षण से कोई लेना-देना नहीं था, उन्हें समान प्रकार की दूसरी संस्थाओं से उत्तम व्यवहार मिले क्या निर्माताओं का यह विचार नहीं था 29 (1) जिस प्रकार की संस्थाओं पर विचार करता है उन्हें अनुच्छेद 30 (1) का आश्रय मिले यह वह प्रश्न है जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने डब्लू. प्रोस्ट के वाद में अस्वीकार कर दिया था। इसका असर यह है कि वर्तमान परिस्थिति अल्पसंख्यकों की अपेक्षा बहुसंख्यों के प्रति भेदभाव पूर्ण है।

सम्बन्धन एवं मान्यता का अधिकार मूल अधिकार नहीं है

सेन्ट जेवियर कालेज [20] के मामले में दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि क्या धर्म और भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक संस्थाओं को विश्वविद्यालय से सम्बद्ध होने [affiliation] का मूल अधिकार प्राप्त है ? पिटिशनरों ने यह दलील दी कि अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं के स्थापन के अधिकार का कोई अर्थ नहीं होगा यदि सम्बन्धन का अधिकार नहीं दिया जाता है। किन्तु न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी भी अल्पसंख्यक संस्था को सम्बन्धन का कोई मूल अधिकार है। अल्पसंख्यक संस्थाओं के सम्बन्धन का आशय पढ़ाई-लिखाई के क्षेत्र में उनकी सन्तानों तथा अन्य विद्यार्थियों की उन्नति और विकास और सुनिश्चित करना है। जब कोई अल्पसंख्यक संस्था सम्बन्धन के लिए आवेदन करती है तो वह समान पाठ्यक्रम को अपनाने के लिए रजामन्द होती है। विश्वविद्यालय के साथ सम्बन्ध के वास्तव में दो भाग हैं। एक का सम्बन्धन पाठ्य-विवरणों, पाठ्यचर्या, अनुदेश, विधियो, अध्यापकों की अर्हताओं, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, विद्यार्थियों के स्वास्थ्य एवं स्वच्छता-सम्बन्धी दशाओं के साथ है। यह भाग शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना से सम्बन्धित है। दूसरे में संस्थाओं के प्रबन्ध-सम्बन्धी निर्वन्धन और शर्तें हैं। उसका सम्बन्ध शिक्षा-संस्थाओं के प्रशासन के साथ है। सम्बन्धन अल्पसंख्यक संस्थाओं के शैक्षणिक स्वरूप का विनियमन है। ये विनियमन न केवल साधारण

धर्मनिरपेक्ष शिक्षा के हित में होते हैं, बल्कि अल्पसंख्यक संस्थाओं को शक्तिशाली तथा उन्नत बनाने वाले भी होते हैं। जब कोई शिक्षा-संस्था सम्बन्धन या मान्यता के लिए आवेदन कर सकती है तो निवेदन में यह विवक्षित रहता है कि शिक्षा-संस्था ऐसे विनियमों का पालन करेगी जो सम्बन्धन या मान्यता देने वाले प्राधिकारी द्वारा बनाये जाते हैं। उक्त प्राधिकारी सदैव ऐसे विनियम विहित कर सकता है और यह आग्रह कर सकता है कि इसके पूर्व कि वह शिक्षा-संस्थाओं को सम्बन्धन या मान्यता प्रदान करे, उसे ऐसे विनियमों का पालन करना चाहिये। किन्तु मान्यता या सम्बन्धन की ऐसी शर्तों को विहित करना जिसके परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक वर्गो की अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार न्यून होता है, अनुच्छेद 30 का उल्लंधन करने वाली होगी।

न्यायाधिपति श्री द्विवेदी बहुमत के निर्णय से पूर्णरूपेण सहमत नहीं थे और उन्होंने कुछ बातों पर अपनी विसम्मति व्यक्त की है। उन्होंने कहा कि विद्यार्थी केवल अल्पसंख्यक वर्ग के ही नहीं, बल्कि वे राष्ट्र के भी हैं। धार्मिक वातावरण में सामान्य धर्म- निरपेक्ष शिक्षा के तर्क पर अत्यधिक बल देना मेरे विचार से इस महत्वपूर्ण राष्ट्रीय पहलू की उपेक्षा करना प्रतीत होता है। सामान्य धर्म-निरपेक्ष शिक्षा राष्ट्र का पहला सरोकार होना चाहिये। विधिसम्मत रूप में यह उपधारणा की जा सकती है कि संविधान-निर्माता इस विषय में जागरूक थे कि हमारे गणतंत्र के कार्यक्रम में शिक्षा को कितनी प्राथमिकता देनी चाहिये। तब उनका आशय यह कैसे हो सकता था कि वर्ग अथवा भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक-वर्ग की शिक्षा- संस्थाओं के लिए पाठ्यक्रम और पाठ्य-विवरण विहित कर सकता है और यह आवश्यक नहीं कि वे शिक्षा- संस्थाओं की उत्कृष्टता का सुधार करने के लिए परिकल्पित हों। राज्य पाठ्यक्रम तथा पाठ्य-विवरण जितना शिक्षा-संस्था की उत्कृष्टा के दृष्टिकोण से विहित करता है, उतना ही शिक्षा के एकरूप मानक [uniform standard] के दृष्टिकोण से विहित करता है। शिक्षा का एकरूप मानक कदाचित् इसलिए आवश्यक है; क्योंकि समाज के विभिन्न अविकसित और विकसित स्तर से भिन्न योग्यता के विद्यार्थी आते हैं और वे देश के विभिन्न और अविकसित भौगोलिक क्षेत्र से आते हैं।

अधिनियम की धारा 51 (क) के बारे में उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि कुलपति द्वारा अनुमोदन की शक्ति शिक्षक और गैर-शिक्षक कर्मचारी-वृन्द की सेवा की सुरक्षा के हित में आवश्यक है। सेवा की सुरक्षा दक्षता की अभिवृद्धि हेतु और कर्त्तव्य का सचाईपूर्वक पालन कराने के लिए आवश्यक है। वह दीर्घकाल से संस्था के विकास के लिए परिकल्पित है। शिक्षक और गैर-शिक्षक कर्मचारी-वृन्द के सदस्य मामूली तौर पर अपनी व्यवस्थाओं के परितोष के लिए नयायालयों में जाने में समर्थ नहीं हैं। धारा 51 (क) में उनकी व्यवस्थाओं के परितोष के सस्ते और अधिक शीघ्रगामी उपचार

का उपबन्ध किया गया है। अपेक्षित उपबन्ध औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33 का समवर्ती है, जिसे इस न्यायालय ने विधिमान्य घोषित किया है। धारा 51 (क) के इस पहलू को, जिस पर मैंने विचार किया है, पूर्ववर्ती मामलों में न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। चूँकि अनुमोदन की शक्ति कर्मचारियों के हटाने के अधिकार के दुरुपयोग को रोकने तक सीमित है ; अतः मेरी राय में इससे अनुच्छेद 30 का उल्लंघन नहीं होता है।

गाँधी फैजेआम कालेज बनाम आगरा विश्वविद्यालय[21] के मामले में अपीलार्थी शाहजहाँपुर के मुस्लिम-समुदाय द्वारा स्थापित एक रजिस्टर्ड सोसाइटी है। अल्पसंख्यक मुस्लिम-समुदाय ने शाहजहाँपुर में 'एंग्लो वर्नाक्युलर मिडिल कालेज' के नाम से एक शिक्षा-संस्था की स्थापना की जिसने आगे चलकर हाईस्कूल, इण्टर कालेज और उसके बाद आगरा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध डिग्री कालेज का रूप धारण कर लिया। सन् 1948 में इसका नाम बदल कर 'गाँधी फैजेआम कालेज ' कर दिया गया। 1964 में कालेज ने कुछ नए पाठ्यक्रम आरम्भ करने के सम्बंध में विश्वविद्यालय से इजाजत माँगी। विश्वविद्यालय ने यह निर्णय किया कि इन पाठ्यक्रमों को इजाजत देते समय कालेज के प्रशासन में कुछ सुधार किये जायँ। विश्वविद्यालय ने अतिरिक्त नियमों को मान्यता प्रदान करने की शर्त के रूप में निर्णय लिया कि कालेज की प्रबन्ध-समिति में प्रिंसिपल तथा उनके ज्येष्ठतम अध्यापक को सम्मिलित किया जाये। उक्त शर्तों का विश्वविद्यालय के स्टेट्यूट की धारा 14 (क) में उल्लेख है। पिटिशनरों ने यह दलील दी कि विश्वविद्यालय के स्टैच्यूट द्वारा लगायी गयी उक्त शर्त संविधान के अनुच्छेद 30 के अधीन अल्पसंख्यक-समुदाय के मूल अधिकार का अतिक्रमण है। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम क्षक्नीन्ट्रल्ध्म की धारा 14 (क) द्वारा लगाये गये निर्बन्धन अनुच्छेद 30 की भावना के अनुकूल है ; अतः विधिमान्य हैं। 'सम्बन्धन' विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधा है जिसके साथ कुछ शर्तें लगायी जा सकती हैं। किन्तु शर्ते वही लगायी जानी चाहिये जहाँ तक कि अल्पसंख्यक वर्ग प्रशासन के अधिकार का अपना मूल रूप बनाये रखे। स्वशासी निकाय [governing body] में प्रिंसिपल और ज्येष्ठतम अध्यापक का होना प्रशासन के अधिकार को समुन्नत करने में सहायक हो सकता है। अतः स्टेच्यूट 14 (क) में अल्पसंख्यक-वर्ग के प्रशासन के अधिकार को कोई भी आघात नहीं पहुँचा है। न्यायालय ने कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में प्रिंसिपल की उपस्थिति सबसे महत्वपूर्ण, प्रभावकारी तथा उत्साह पैदा करने वाली है। कोई भी प्रशासन किसी भी संस्था-सेवाओं का अच्छा से अच्छा उपयोग प्रिंसिपल के बिना नहीं कर सकता है। प्रिंसिपल से शत्रुता मोल लेना स्वयं अपने को ही आघात पहुँचाना है, उसे सहयोजित करने का अर्थ शिक्षा-सम्बन्धी प्रधान को प्रबन्ध, सूझबूझ के लिये और दक्षता को बढ़ाने के लिए प्रशासित निकाय के साथ एकीकृत करना है। वह

कालेज के लिए अनजान नहीं है, बल्कि उसे प्रबन्धकों ने स्वयं नियुक्त किया है। जो विनियम स्वशासी परिषद् में उसके सम्मिलित किये जाने की अपेक्षा करता है, वह न तो बाह्य दबाब डालता है और न दोहरी निष्ठा वाली जासूसी का खतरा कालेज के लिये पैदा करता है। उसका सदस्य होना कई अर्थों में वरदान है, न किसी प्रकार का अभिशाप। न्यायाधीश श्री मैथ्यू ने अपने विसम्मत निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया कि कालेज का प्रशासन अपनी पसन्द के निकाय को सौंपना अल्पसंख्यक-समुदाय का अनन्य अधिकार है और उस निकाय में किसी बाहरी व्यक्ति को शामिल कराने के बारे में किसी प्राधिकारी का दबाव मूल अधिकार पर अतिक्रमण है।

आर्यसमाज शिलांग बनाम मेघालय राज्य[22] में अभिनिर्धारित किया था कि मेघालय राज्य में आर्यसमाज भाषाई तथा धार्मिक अल्पसंख्यक हैं।

हाल में उच्चतम न्यायालय ने इस वाद **आल केरल अनरस्डेड रिकग्नाइज्ड स्कूलस पैरेनस एसोसिएशन बनाम केरल राज्य**[23] में निर्धारित किया है कि जो संस्था पिटीशनर फादर जार्ज कैथोलिल के व्यक्तिगत प्रबंध में एक स्कूल था। यह स्कूल सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त था इसमें सरकार के इस आदेश को चुनौती दी जिसमें सरकार ने असहायता प्राप्त स्कूलों को प्लस टू कोर्स के लिए अल्पसंख्यक संस्थाओं को सहायता देने की बात कही और यह स्कूल किसी अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित नहीं किया गया था और न ही उसका प्रबंध ऐसे समुदाय द्वारा किया जा रहा था। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि पिटीशनर स्कूल अल्पसंख्यक संस्था है जिसको अनुच्छेद 30 (1) का सरंक्षण प्राप्त होता है। फादर जार्ज कैथोलिल के व्यक्तिगत प्रबंध में जो संस्था है वह अल्पसंख्यक संस्था नहीं कही जा सकती। क्योंकि अल्पसंख्यक संस्था का प्रबंध किसी निगमित निकाय द्वारा होता है, किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं इसलिए पेटीशनर अनुच्छेद 30 (1) के सरंक्षण का दावा नहीं कर सकता। क्योंकि अनुच्छेद 30 का संरक्षण व्यक्ति विशेष द्वारा संचालित शिक्षा संस्था को नहीं दिया जा सकता।

नरायन शर्मा बनाम पंकज कुमार[24] में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए अभ्यार्थियों का चयन केवल योग्यता के आधार पर होना चाहिए। इसको किसी प्रशासनिक निकाय की मनमानी विवेकाधीन शक्तियों पर नहीं छोड़ा जा सकता। यद्यपि इस केस में नार्थ ईस्टर्न कौसिल द्वारा संस्तुत अभ्यर्थियों के लिए 4 सीटों का आरक्षण (2 स्नातक कोर्स के लिए और 2 डिप्लोमा कोर्स के लिए) इस आधार पर संवैधानिक कर दिया था कि एन. ई. सी. में गवर्नर और सात राज्यों के मुख्यमंत्री होते हैं सात में से पाँच राज्यों में कोई मेडिकल कालेज नहीं है चित्र घोष बनाम भारत संघ का निर्दश देते हुए न्यायालय ने इस कोटे को सांविधानिक कर दिया परन्तु यह कहा कि हमारी राय है कि ऐसा आरक्षण केवल योग्यता के आधार पर किया जा सकता है जिसकी परख

अभ्यर्थी प्रवेश में परिणाम से हो सकती है। एन. ई. सी. अपने मनमाने तरीके से अभ्यर्थियों को नहीं चुन सकती। एन. ई. जी. को प्रवेश परीक्षा में प्राप्त श्रेणी के अनुसार ही संस्तुति करनी चाहिए।

इन री केरल एजुकेशन बिल [25]के वाद में राज्य ने इस विधेयक द्वारा अल्पसंख्यक वर्गों की शिक्षा-संस्थाओं को सहायता प्रदान करने के लिए कुछ शर्तें निर्धारित की थीं तथा अध्यापकों की नियुक्ति, पदच्युति तथा वेतन के बारे में भी विनियम विहित किये थे। सरकार ने अध्यापकों की नियुक्ति के लिए अर्हताएँ विहित कर दीं। अध्यापकों की नियुक्ति के लिए उम्मीदवारों का चुनाव लोक सेवा आयोग करता था। सेवा की शर्ते वैसी ही रखी गयी थीं जैसी कि सरकारी स्कूलों में होती हैं। कोई भी अध्यापक सरकार द्वारा प्राधिकृत अधिकारी की पूर्व-मंजूरी के बिना न तो पदच्युत किया जा सकता था, हटाया जा सकता था, न उसका पदह्रास किया जा सकता था और न उसे निलम्बित किया जा सकता था। अल्पसंख्यक वर्गों ने इन विनियमों पर आपत्ति उठायी कि वे उनके प्रशासन के अधिकार में हस्तक्षेप करते हैं। राज्य की ओर से यह कहा गया कि शर्तें उन संस्थाओं में कार्यरत कम वेतनभोगी शिक्षकों को, जो देश की सेवा कर रहे थे, सुरक्षा और पिछड़ी जातियों के संरक्षण के लिए लगायी गई हैं और राज्य की विनियमन शक्ति के अन्दर हैं; अतः सांविधानिक हैं। न्यायालय ने कहा कि अनु. 30 राज्य में ऐसी शिक्षा-संस्थाओं की श्रेष्ठता को बनाये रखने के उद्देश्य से विनियम बनाने से रोकता है; अतः सहायता देने के लिए मान्यता प्रदान करने के लिए राज्य युक्तियुक्त शर्तें विहित कर सकता है।

अनुच्छेद 30 यद्यपि राज्य के अल्पसंख्यक वर्गों को शिक्षा संस्थाओं में अच्छे प्रशासन बनाये रखने के लिए विनियम बनाने से नहीं रोकता है, किन्तु यह अपेक्षा करता है कि विनियम ऐसे न हों जो अल्पसंख्यक शिक्षा-संस्था के स्वरूप को बिगाड़ने वाले हों। अनु. 30 (1) द्वारा प्रदत्त अधिकार वास्तविक और प्रभावपूर्ण होने के लिए आशयित है और यह एकमात्र पवित्र अथवा पूर्त भावना नहीं है कि ऐसे अधिकार को किसी उपाय द्वारा जो विनियम के छदम रूप में है, कम नहीं होने दिया जायेगा। सिद्धराज भाई बनाम गुजरात राज्य [26] के मामले में न्यायालय ने कहा है कि ऐसे विनियम जो अनुदान प्राप्त करने या मान्यता की शर्तों के रूप में विधिपूर्वक लगाये जा सकते हैं, संस्था को अल्पसंख्यक संस्था के रूप में इसके स्वरूप को बनाये रखते हुए एक शिक्षा-संस्था के रूप में प्रभावपूर्ण बनाने के लिए होने चाहिये। ऐसे विनियमों को दोहरी कसौटी पूरी करनी चाहिए- उन्हें युक्तियुक्त होना चाहिये, और (2) संस्था के शैक्षिक स्वरूप को विनियमित करने वाला होना चाहिये जो अल्पसंख्यक-समुदाय अथवा उन व्यक्तियों के लिए, जो इसका आश्रय लेते हैं, संस्था को शिक्षा का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनाने में सहायक हैं।

अनुच्छेद 30 युक्तियुक्त विनियम बनाने से राज्यों को नहीं रोकता है। किन्तु विनियम

आवश्यक रूप से अल्पसंख्यक शिक्षा-संस्था के रूप में संस्था के हित में बनाये जाने चाहिये। उनको इस प्रकार बनाना होगा ताकि उसे शिक्षा प्रदान करने का एक प्रभावपूर्ण माध्यम बनाया जा सके। किन्तु प्रशासन के अधिकार में कुप्रशासन का अधिकार सम्मिलित नहीं है। राज्य ऐसी संस्थाओं की श्रेष्ठता सुनिश्चित करने के लिये विनियम विहित कर सकता है। शिक्षा-प्रशासन, स्वास्थ्य, स्वच्छता, नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और इसी भाँति की अन्य बातों की दक्षता के सही हित में बनाये गये विनियम निस्सन्देह रूप से चलाये जा सकते हैं। ऐसे विनियम कोई निर्बन्धन नहीं होते हैं। वे शिक्षा के मामले में संस्थाओं का समुचित संचालन सुनिश्चित करते हैं। शिक्षा के शैक्षिक स्तर और सम्बन्धित मामलों को विनियमित करने के मामले में राज्य के अधिकार से इन्कार नहीं किया जा सकता हैं। अल्पसंख्यक शिक्षण- संस्थाओं को श्रेष्ठता के इस स्तर से नीचे नहीं गिरने दिया जा सकता है जो ऐसी संस्थाओं के लिए अपेक्षित है अथवा प्रबन्ध-तन्त्र के आत्यन्तिक अधिकार की आड़ में आम शिक्षा का अनुपालन करने से उन्हें पीछे नहीं हटने दिया जायेगा।प्रबंधतन्त्र उन्ही पर छोड़ देना चाहिये, किन्तु उन्हें दूसरे के समान प्रबन्ध-तन्त्र के आत्यन्तिक (absolute) अधिकार की आड़ में आम शिक्षा का अनुपालन करने से उन्हें पीछे नहीं हटने दिया जायेगा। प्रबंधतन्त्र उन्ही पर छोड़ देना चाहिये, किन्तु उन्हें दूसरे के समान प्रबन्ध-तन्त्र चलाने के लिए विवश किया जा सकता है। विनियम यह भी उपबन्ध कर सकते हैं कि संस्था की निधि का शिक्षा के प्रयोजन अथवा संस्था की भलाई के लिए ही उपयोग किया जाना चाहिये न कि किसी बाह्य प्रयोजन के लिए। संस्थाओं की निधि का प्रबन्ध- तन्त्र के भारसाधक व्यक्तियों की जेबों में जाने अथवा किसी अन्य रीति से उनका गबन रोकने के लिए भी विनियम उपबन्धित कर सकते हैं। शिक्षा-संस्थाओं में राष्ट्र-विरोधी गति-विधियों को रोकने के लिए विनियम युक्तियुक्त समझे जा सकते हैं। साथ ही साथ विनियम में यह भी सुनिश्चित किया जाना है कि विनियम बनाने की शक्ति के अधीन ऐसी कोई बात न की जाय जो अल्पसंख्यक शिक्षा संस्था के स्वरूप को बिगाड़ने वाली हों अथवा जो अल्पसंख्यक की अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन के अधिकार पर आघात हो।

सिद्धराज भाई के मामले में बम्बई सरकार ने एक आदेश जारी किया कि अगले शिक्षण-वर्ष से गैर-सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण महाविद्यालयों में 80 प्रतिशत स्थान सरकार द्वारा नाम-निर्देशित अध्यापकों के लिए आरक्षित किये जाने चाहिये। उन्हें भी आदेश दिया कि शिक्षा-विभाग की अनुमति के बिना हर एक कक्षा की कुल संख्या के 20 प्रतिशत से अधिक प्राइवेट विद्यार्थियों को प्रवेश न दें। आदेश में यह भी उल्लिखित था कि सरकार द्वारा नाम-निर्देशित अध्यापकों को प्रवेश से इंकार करना अनियमित और सरकारी नीति के विरुद्ध है और उन्हें यह

चेतावनी दी गयी थी कि सरकारी आदेश की अवहेलना के परिणामस्वरूप उनका अनुदान बन्द कर दिया जायेगा। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त आदेश से पिटिशनरों के अनु. ३० (1) में दिये गये मूल अधिकार का अतिलंघन होता है ; अत: वे असंवैधानिक और अवैध हैं।

अहमदाबाद सेन्ट जेवियर कालेज बनाम गुजरात राज्य[27] में मामले में उच्चतम न्यायालय की 9 न्यायाधिपतियों की पीठ ने अनु. 30 (1) के क्षेत्र पर विस्तार से विचार किया है। इस मामले में पिटिशनर सोसाइटी आफ जीसस नामक एक धार्मिक संस्था थी जो अहमदाबाद में ईसाई छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए सेन्ट जेवियर कालेज आफ आर्ट एण्ड कामर्स चला रही थी। यह कालेज गुजरात विश्वविद्यालय अधिनियम, 1949 के अधीन गुजरात विश्वविद्यालय से सम्बद्ध थी। पिटिशनरों ने गुजरात विश्वविद्यालय (संशोधन) अधिनियम, 1972 की धारा 33(क), 40, 41, 51,(क) तथा 52 (क) को इस आधार पर चुनौती दी कि इससे उनके अनु. 30 के प्रदत्त मूल अधिकार का अतिक्रमण होता था। उक्त अधिनियम के अधीन प्रत्येक कालेज के स्वशासी निकाय और चयन समिति में विश्वविद्यालय के नामांकित सदस्य का उपबन्ध था, शिक्षकों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही आदि के मामले में कुलपति का अनुमोदन आवश्यक था, तथा सम्बद्ध कालेजों को संघटक में परिवर्तित करने की शक्ति थी, तथा कर्मचारी और प्रबन्ध समिति के विवादों को पंचाट को सौंपने का उपबन्ध था।

उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम के उपबन्ध पिटिशनर की अपनी रुचि की शिक्षा-संस्थाओं के प्रशासन के अधिकार का अतिक्रमण करते हैं ; अत: वे अल्पसंख्यक शिक्षा-संस्थाओं पर लागू नहीं हो सकते हैं। अधिनियम की धारा 33 (क) कालेज के स्वशासी निकाय के सदस्यों का चुनाव और चयन-समिति के प्रन्बध को पिटिशनरों के हाथों से लेकर एक अन्य निकाय के हाथ सौंप देती है ; इससे प्रशासन की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है; क्योंकि इनमें बाहरी तत्वों का प्रवेश हो जाता है। अत: धारा 33 (क)अल्पसंख्यक संस्थाओं को लागू नहीं हो सकती है। अधिनियम की धारा 51 (क) को विनियमकारी उपबन्ध नहीं कहा जा सकता है ; क्योंकि वह कुलपति को मनमानी शक्ति प्रदान करती है जिसके कारण अल्पसंख्यक संस्थाओं का प्रशासन का अधिकार छिन जाता है। धारा 52 स्वशासी निकाय की अन्दरूनी अधिकारिता को नये व्यक्तियों का प्रवेश करके नष्ट करती है। उपर्युक्त कारणों से अधिनियम की धाराएँ 33 (क), 40, 41, 51(क) अल्पसंख्यकों के मूल अधिकारों का अतिलंघन करती हैं; अत: इन संस्थाओं को लागू नहीं हो सकती हैं।

मैनेजिंग बोर्ड ऑफ मिली तालीमी मिशन बनाम बिहार राज्य[28] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी अल्पसंख्यक शिक्षण संस्था को विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता

और सम्बन्धन देने से मनमाने और अयुक्तियुक्त रूप से इन्कार करना अनु 30 और 14 का अतिक्रमण है और असंवैधानिक है। इस मामले में मिली तालीमी मिशन ने एक टीचर्स ट्रेनिंग कालेज की स्थापना की। 1977 में कालेज ने मान्यता के लिए आवेदन दिया। 1980 में विश्वविद्यालय प्राधिकारियों ने कालेज की जाँच की और सम्बन्धन देने की सिफारिश की जिसे सरकार ने प्रदान कर दिया। पुन: कालेज ने स्थायी सम्बन्ध के लिए आवेदन किया जिसे इन्कार कर दिया गया। उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय ने सरकार के आदेश को रद्द कर दिया। 1932 में शिक्षा आयुक्त ने कालेज को सम्बन्धन देने की सिफारिश की। इसके बावजूद कोई कार्यवाही नहीं की गयी। इसके पश्चात् अपीलार्थी ने प्रस्तुत याचिका उच्चतम न्यायालय में फाइल की राज्य की और से यह कहा गया कि इन्स्पेक्टर की जाँच के पश्चात् यह पाया गया कि विद्यालय में कुछ कमियाँ थी जिनके कारण सम्बन्धन इन्कार किया गया था। 'जैसे' पूर्णकालिक प्रिंसिपल या प्रवक्ताओं का अभाव, मान्यताप्राप्त स्कूलों में सम्बन्धन होना, कालेज का रात्रि में चलाया जाना जिससे प्रैक्टिकल कराना अव्यावहारिक है, कालेज का अपना भवन न होना, लाइब्रेरी और प्रयोगशाला की उचित व्यवस्था न होना। उच्चतम न्यायालय ने सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया कि राज्य ने शिक्षा आयुक्त की सिफारिशों पर विचार किये बिना और भ्रामक आधारों पर सम्बन्धन देने से इन्कार किया था जिसका कोई पर्याप्त कारण नहीं था; अत: वह अनु. 30 का अतिक्रमण करता है और असंवैधानिक है। यद्यपि सम्बन्धन का अधिकार एक मूल अधिकार नहीं है। किन्तु बिना उचित और पर्याप्त आधार के अनुदान या सम्बन्धन को देने से इन्कार करना अनुच्छेद 30 का अतिक्रमण है; क्योंकि इसका सीधा परिणाम संस्था को नष्ट करना होता है जिसकी सुरक्षा के लिए अनुच्छेद 30 को संविधान में समाविष्ट किया गया है।

मार्कनटी बनाम केरल राज्य[29] के मामले में अपीलार्थी एक रोमन कैथोलिक मिशन स्कूल का प्रबन्धक था। यह स्कूल मूल रूप से बालकों के लिए स्थापित किया गया था। उसने अपने स्कूल में अपने समुदाय की बालिकाओं के प्रवेश के लिए शिक्षा-प्राधिकारियों से अनुमति माँगी। शिक्षा-प्राधिकारियों ने एजूकेशन रूल्स, 1959 के अधीन दो आधारों पर उपयुक्त अनुमति देने से इन्कार कर दिया - (1) उक्त स्कूल मूलत: बालकों के लिए स्थापित किया गया था; और (2) उस क्षेत्र में लड़कियों के लिए मुस्लिम गर्ल्स हाईस्कूल पहले से ही था। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उर्पयुक्त नियम अल्पसंख्यकों पर लागू नहीं किया जा सकता है। यदि उपयुक्त नियम का विस्तृत निर्वचन किया जायेगा तो वह अल्पसंख्यकों को अपनी रुचि की संस्थाओं में अपने समुदाय की लड़कियों की शिक्षा देने के अधिकार का अतिक्रमण करेगा और इस रूप में उपयुक्त नियम विनियमन की सीमा से बाहर हो जायेगा और अल्पसंख्यकों की शिक्षा- संस्थाओं के प्रशासन के अधिकार में हस्तक्षेप करेगा।

शिक्षा- प्राधिकारियों ने इस आधार पर लड़कियों के प्रवेश की स्वीकृति देने से इन्कार नहीं किया था कि सह-शिक्षा के परिणामस्वरूप अनुशासन या सदाचार के ह्रास होने की आशंका है, बल्कि केवल इस आधार पर अनुमति इन्कार की गई थी कि मोहल्ले में पहले से ही एक मुस्लिम स्कूल है। यह अल्पसंख्यकों के अपनी रुचि की संस्थाओं के प्रशासन के अधिकार का अतिक्रमण करता है।

लिली कूरीयन बनाम लेबिना[30]के मामले में केरल यूनिवर्सिटी ऐक्ट, 1957 के अधीन जारी किये गये अध्यादेश 33(4) की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि उससे अनु. 30(1) द्वारा प्रदत्त अधिकार का अतिक्रमण होता है। अध्यादेश 33 (4) के अधीन किसी अल्पसंख्यक शिक्षण-संस्थान की प्रबन्ध-समिति द्वारा किसी शिक्षक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही किये जाने के निर्णय के विरुद्ध इस शिक्षक को विश्वविद्यालय के कुलपति के यहाँ अपील करने का अधिकार दिया गया था। अपीलार्थी लिली कूरीयन रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा स्थापित एक स्त्रियों के प्रशिक्षण-कॉलेज की प्रधानाध्यापिका थीं। धार्मिक संस्था की प्रबन्ध-समिति ने उसे सेवा से पदच्युत कर दिया। अपीलार्थी ने अध्यादेश 33 (4) के अधीन कुलपति के यहाँ अपील की, जिसने पदच्युति का आदेश रद्द करके उसे बहाल कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अध्यादेश 33 (4)अनु. 30(1) द्वारा प्रदत्त अल्पसंख्यकों के अधिकारों का अतिक्रमण करता है ; अतः अविधिमान्य है। अल्पसंख्यक संस्था की प्रबन्ध-समिति के निर्णय के विरुद्ध एक बाहरी प्राधिकारी (कुलपति) को अपील सुनने का अधिकार देना प्रबन्ध-समिति के अनुशासनिक प्राधिकार को नष्ट करता है जो प्रशासन का एक आवश्यक तत्व है। राज्य प्रशासन के अधिकार के प्रयोग को विनियमित कर सकता है, किन्तु इसे ऐसा निर्बन्धन लगाने का अधिकार नहीं है जो अल्पसंख्यकों की अपनी रुचि की शिक्षण-संस्थाओं के 'प्रशासन' के अधिकार को बिल्कुल नष्ट कर देता हो। ऐसे निर्बन्धन को, जो अधिकार को ही नष्ट करता है, संस्था के हित में निर्बन्धन या विनियमन नहीं कहा जा सकता है।

आल सेण्ट्स हाईस्कूल बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[31]के मामले में उच्चतम न्यायलय ने अनुच्छेद 30(1) द्वारा प्रदत्त मूल अधिकार के क्षेत्र एवं विस्तार से सम्बन्धित पिछले सभी विनिश्चयों का विश्लेषण किया है और उद्भूत होने वाले सिद्धातों को स्पष्ट किया है इस मामले में अपीलार्थियों ने आन्ध्र प्रदेश रिकग्नाज्ड प्राइवेट एजूकेशन इन्टिट्यूशन्स कन्ट्रोल ऐक्ट, 1975 की 3 से7 तक की धाराओं की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दिया कि उसके अधीन सम्बन्धित प्राधिकारी को उनकी शिक्षण संस्थाओं के प्रबन्ध में प्रशासनिक नियन्त्रण की शक्ति प्रदान करके उन्हें अपनी संस्थाओं के प्रबंध के अधिकार से वंचित किया गया है और इस प्रकार अनु. 30 (1) में प्रदत्त उनके अधिकार का अतिलंघन किया गया है। धारा 2(1) यह उपबन्ध करती है कि किसी भी प्राइवेट शिक्षण-संस्था में नियुक्त किसी

भी शिक्षक को तब तक पदच्युत या पंक्तिच्युत नहीं किया जायेगा जब तक कि सक्षम अधिकारी द्वारा इसका पूर्वानुमोदन न प्राप्त कर लिया जाय। अधिनियम में सक्षम अधिकारी द्वारा अपनी शक्ति के प्रयोग के लिए कोई मार्गदर्शन नहीं दिया गया था। फलतः उसे विस्तृत और अनियन्त्रित शक्ति प्रदान की गई थी जिसका प्रयोग उसे स्वविवेक से करना था। बहुमत ने (न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ और फजल अली-कैलाशम का विसम्मत)यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 3(1) अनु. 30(1) में गारन्टी किये गये अधिकारों का अतिक्रमण करती है अतएव वे उन पर लागू नहीं होती है।

धारा (3) (क) और(ख) यह उपबधिन्त करती है कि किसी भी शिक्षक को तब तक निलम्बित नहीं किया जायेगा जब तक कि उसके दुराचरण के विरूद्ध जाँच पूरी न कर ली गई हो। यदि ऐसी जाँच दो महीने के भीतर पूरी नहीं होती है तो सम्बन्धित शिक्षक का निलम्बन समाप्त हो जायेगा और उसे पुनस्थापित माना जायेगा। (न्यायाधिपति चन्द्रचूड़ और फजल अली-कैलाशम का विसम्मत) न्यायालय ने बहुमत से यह निर्णय दिया कि ये उपबन्ध विनियमात्मक है और प्रबंन्ध-समिति के मनमानीपन से शिक्षकों को संरक्षा प्रदान करते हैं। उक्त उपबन्ध प्रबंध-समिति की इस शक्ति पर यह निर्बन्धन लगाती है कि वह उसका प्रयोग जाँच से पश्चात् ही कर सकती है, अतः धारा 3(क) और (ख) संवैधानिक हैं।

धारा (4) यह उपबन्ध करती है कि यदि किसी प्राइवेट शिक्षण -संस्था में नियोजित किसी अध्यापक को पदच्युत या पंक्तिच्युत किया जाता है अथवा उसके वेतन या सेवा-शर्तों में अलाभकारी परिवर्तन किया जाता है तो उसे ऐसे प्राधिकारी के यहाँ अपील फाइल करने का अधिकार होगा जिसे इस प्रयोजन के लिए विहित किया जाये। तीनों न्यायाधिपतियों ने सर्वसम्मति से यह निर्णय दिया कि उक्त धाराएँ असंवैधानिक हैं क्योंकि अपील की शक्ति का प्रयोग सम्बन्धित अधिकारी कैसे करेगा इसके लिए उसमें कोई मार्गदर्शन नहीं दिया गया है। सम्बन्धित प्राधिकारी किन सिद्धातों के आधार पर प्रबंध-समिति के आदेशों की परीक्षा करेगा, इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। निश्चय ही उक्त धाराओं से प्रबन्ध-समिति के अधिकारों का अतिक्रमण होता है अतः वे असंवैधानिक हैं।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय संशोधन अधिनियम[32]के उपबंध पृथकता की भावना को बल प्रदान करते हैं। अपीलार्थी की ओर से यह तर्क दिया गया कि क्योंकि अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी मुसलमानों द्वारा बनायी गई है इसलिये उन्हीं के द्वारा प्रशासित किये जा सकते हैं; इस संशोधन अधिनियम जिसके अनुसार मुसलमान विश्वविद्यालय के प्रशासनिक निकायों में गैर मुसलमान सदस्यों को सम्मलित किया गया था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि :(1) धार्मिक अल्पसंख्यकों को अपनी रूचि की शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार है परन्तु शर्त यह है कि उन्होंने स्वयं उन्हें स्थापित किया

हो। शब्द 'स्थापना' और 'पोषण ' दोनों को साथ-साथ पढ़ा जाना चाहिये (2) शब्द स्थापित करने का अर्थ आस्तित्व में लाना है। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी को मुसलमानों द्वारा स्थापित नहीं किया गया था, अपीलार्थी का तर्क स्वीकार नहीं किया और न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम असंवैधानिक था।

एक अधिक रोचक मामला बाद में सर्वोच्च न्यायालय के समय आया इस वाद में केरल यूनिवर्सिटी एक्ट, 1969 को अनुच्छेद 30 के अधीन प्रदत्त मूल अधिकार के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी गई थी। इस अधिनियम द्वारा प्रत्येक प्राइवेट कालेज के लिये एक अधिशासी निकाय बनाया गया जो कि 11 सदस्यों द्वारा निर्मित होना था जिसमें विश्वविद्यालय द्वारा मनोनीत सदस्य भी थे, एक व्यक्ति राज्य सरकार द्वारा मनोनीत था तथा एक व्यक्ति स्थाई सदस्यों द्वारा उन्हीं में से निर्वाचित था। अधिशासी निकाय को अपने अंतर्गत आने वाले महाविद्यालय को प्रशासित करना था। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि ये प्रावधान अल्पसंख्यकों के उनकी संस्था को प्रशासित करने का अधिकार छीनते हैं तथा इस कारण असंवैधानिक है और अनु 30 के उपबंधों को देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय के पास उपरोक्त निष्कर्ष पर आने के अलावा कोई रास्ता नहीं था। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि उपरोक्त प्रावधान से अल्पसंख्यकों की पृथकता की भावना को पोषित भरने को बल मिला है। संभवत: संविधान के संस्थापकों ने इस स्थिति की कल्पना नहीं की थी।

ए. पी. क्रिश्चियन मेडिकल कालेज एजूकेशन सोसाइटी बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[33] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है यदि किसी अल्पसंख्यक शिक्षण संस्था की स्थापना समुदाय के बच्चों को शिक्षा देने के उद्देश्य से नहीं बल्कि व्यवसाय करने के प्रयोजन के लिए की जाती है तो उसे अनु. 30 (1) का संरक्षण नहीं मिलेगा। प्रस्तुत मामले में उक्त सोसाइटी ने अल्पसंख्यक संस्था के रूप में एक मेडिकल कालेज की स्थापना की और यह असत्य कथन किया कि सरकार का अनुमोदन मिल चुका है। संस्था के संगम ज्ञापन में कोई ऐसी बात नहीं थी जिससे यह प्रकट होता हो कि वह अल्पसंख्यक संस्था है। विश्वविद्यालय में संस्था को सम्बन्धन नहीं प्रदान किया गया था। आन्ध्र प्रदेश ऐक्ट और एजूकेशन ऐक्ट का उल्लेख करके सोसाइटी ने विश्वविद्यालय कालेज के छात्रों को प्रवेश दिया। विश्वविद्यालय ने उनकी परीक्षा लेने से इन्कार कर दिया। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि उक्त संस्था अनु. 30 (1) का संरक्षण पाने की हकदार नहीं थी ; अत: राज्य सरकार को संस्था के चलाने की अनुमति देने तथा विश्वविद्यालय को छात्रों की परीक्षा लेने के लिए निर्देश नहीं दिया जा सकता है।

फ्रैंक एन्थोनी पब्लिक स्कूल इम्पलाईज एसोसिएशन बनाम भारत संघ [34]के मामले में अपने ऐतिहासिक महत्व के विनिश्चय में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है

कि गैर सहायता प्राप्त संस्था दिल्ली प्रशासन द्वारा मान्यता प्राप्त है। उन्हें अपने शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों को वही वेतन, भत्ते और अन्य लाभ देना चाहिये जो सरकारी स्कूलों के शिक्षकों और कर्मचारियों को मिलता है। प्रस्तुत मामले में फ्रैंक एन्थोनी पब्लिक स्कूल के कर्मचारियों ने दिल्ली स्कूल एजूकेशन ऐक्ट की धारा 12 को इस आधार पर चुनौती दिया कि वह अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है अत: अवैध है, दिल्ली एजूकेशन ऐक्ट की धाराएँ 8-12 मान्यताप्राप्त गैर सहायता प्राप्त प्राइवेट स्कूलों के कर्मचारियों की सेवा शर्तों को विनियमित करती हैं। किन्तु धारा 12 यह कहती है कि 'उक्त प्रावधान गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थाओं पर लागू नहीं होंगे।' पिटिशनरों ने न्यायालय से यह कहा कि वह सरकार को यह निर्देश दे कि उक्त अधिनियम की धारा 8-10 और उनके स्कूलों पर भी लागू करें। यह कहा गया है कि उक्त प्रावधान विनियमात्मक है तथा संस्था को उत्तम बनाने के उद्देश्य से बनाये गये हैं और इनसे उनके मूल अधिकार पर कोई आघात नहीं पहुँचता है। सरकार की ओर से कहा गया कि उक्त प्रावधानों को उन स्कूलों पर धारा 12 द्वारा इसलिए लागू नहीं किया गया है क्योंकि उससे अल्पसंख्यकों के अपनी रूचि की संस्था के प्रबन्ध में हस्तक्षेप होता है।

उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे प्रावधान जो अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं के शैक्षिक स्तर एवं उत्तमता को बनाये रखने के लिए कर्मचारियों की सेवा शर्तों को विनियमित करते हैं वे अनु. 30 (1) का उल्लंघन नहीं करते हैं। शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा का स्तर और उत्तमता बनाये रखना, उनमें कार्यरत शिक्षकों के ऊपर निर्भर करता है। इसके लिए उनकी सेवा शर्तों का भी अच्छा होना आवश्यक है। अनु. 30 (1) के अधिकारों का प्रयोग करके ऐसी संस्थाओं को शिक्षकों और कर्मचारियों का शोषण करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। शिक्षकों और कर्मचारियों के शोषण से उनमें असन्तोष पैदा होगा और उससे शिक्षा का स्तर गिरेगा। दिल्ली एजूकेशन ऐक्ट की धाराएँ 8 से 11 में विनियमात्मक प्रावधान हैं जो शिक्षण संस्थाओं की उत्तमता बनाये रखने के लिये बनाये गये हैं और धारा 12 जो उक्त धाराओं को इन स्कूलों पर न लागू करने का प्रावधान करती है वह असंवैधानिक है। फ्रैंक एन्थोनी पब्लिक स्कूलों के शिक्षक और कर्मचारी दिल्ली के सरकारी स्कूलों के शिक्षकों और कर्मचारियों के बराबर वेतन एवं अन्य परिलब्धियों के हकदार हैं।

न्यायालय का उक्त निर्णय समयानुकूल और उचित है। समान कार्य के लिये समान वेतन हमारे संविधान का लक्ष्य है। अभी तक पब्लिक स्कूलों में अनु. 30 (1) का सहारा लेकर अल्पसंख्यक संस्थाओं में इसका उल्लंघन होता रहा है। यह निर्णय उक्त संस्थाओं में कार्यरत अल्पसंख्यक कर्मचारियों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के साथ-साथ उन्हें देश की मुख्य धारा में भी लाने में सहायक होगा। न्यायालय का यह कार्य निस्सन्देह रूप से प्रशंसनीय है।

वाई थेकलामा बनाम भारत संघ [35] के मामले में दिल्ली स्कूल एजूकेशन ऐक्ट 1973 की उपधारा 8 (4) को जिसके अधीन किसी अध्यापक को निलम्बित करने से पूर्व शिक्षा निदेशक का पूर्वानुमोदन आवश्यक था, विधिमान्य घोषित किया गया क्योंकि उक्त उपबन्ध विनियमात्मक प्रकृति के थे जिनका उद्देश्य अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं में शिक्षकों को मनमाने ढंग से दण्डित किये जाने के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करना था। इससे प्रबन्धकगण की अनुशासनिक कार्यवाही में कोई हस्तक्षेप नहीं होता था।

क्रिश्चियन मेडिकल कालेज हास्पिटल एम्प्लाइज यूनियन बनाम क्रिश्चियन मेडिकल कालेज, वेलूर एसोसियेशन [36] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 की धाराएँ 9-अ, 11-अ, 12 और 33अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं पर भी लागू होती हैं क्योंकि ये विनियमात्मक प्रकृति की हैं और इनसे अनु. 30(1) में प्रदत्त अधिकारों पर कोई आघात नहीं पड़ता है। औद्योगिक विवाद अधिनियम एक सामाजिक सुरक्षा अध्युपाय है जो श्रमिकों के कल्याण के लिये बनाया गया है। यह अधिनियम सभी प्रकार के उद्योगों पर लागू होता है चाहे इसमें काम करने वाले पक्षकार किसी धर्म या जाति के हों। किसी शिक्षण संस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें कार्यरत कर्मचारी को अत्याचार या दुर्व्यवहार के विरुद्ध सुरक्षा हो प्रस्तुत मामले में ईसाई मेडिकल कालेज वेलौर के प्रबन्धक मण्डल द्वारा कालेज के तीन कर्मचारियों को निकाल दिया गया। कर्मचारियों की माँग पर सरकार ने अधिनियम के अधीन उस विवाद को श्रमिक न्यायालय को सौंप दिया। प्रत्यर्थियों ने तर्क दिया कि अस्पताल अल्पसंख्यक कालेज का अभिन्न अंग था अत: उसके कर्मचारियों और प्रबन्धकगण के बीच विवाद को उक्त अधिनियम के अधीन निर्णय के लिए श्रमिक न्यायालय को सौंपा नहीं जा सकता है। निर्णय दिया गया कि उपर्युक्त धाराएँ अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं पर उसी तरह लागू होती है जिस तरह अन्य संस्थाओं पर। अनु. 30 (1) का अधिकार राज्य के विनियमात्मक शक्ति के अधीन है। अनु. 30 (1) कुप्रबन्ध का अधिकार नहीं प्रदान करता है। सामाजिक कल्याण विधियाँ तथा ऐसे अन्य विनियमात्मक उपाय यद्यपि अनु. 30 (1) के अधिकार पर कुछ हद तक प्रभाव डालते हैं किन्तु वे उसे कम नहीं करते हैं। न्यायालय को अनु. 30(1) के अधिकार की सुरक्षा तथा उनमें कार्यरत कर्मचारियों की सुरक्षा का सामाजिक उत्तरदायित्व दोनों में सामंजस्य स्थापित करना है। अधिनियम के अधीन श्रमिक न्यायालयों की शक्तियाँअसीमित एवं अनियन्त्रित नहीं है। वे प्रबन्धकगण के निर्णय में हस्तक्षेप तभी कर सकेंगे जब वे सन्तुष्ट हो जायें कि श्रमिक को दिया गया दण्ड उसके दोष के अनुपात में अधिक है। न्यायालयों को अपने निर्णय के कारण को भी देना पड़ता है। उनके निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय में अपील तभी की जा सकती है।

आल बिहार क्रिश्चियन एसोसियेशन बनाम बिहार राज्य[37] के मामले में पिटिशनर ने जो एक धार्मिक संघ है, बिहार गैर सरकारी स्कूल (प्रबन्ध एवं नियन्त्रण अधिग्रहण) अधिनियम, 1981 की विधिमान्यता को चुनौती दी गई। पिटिशनर ने राज्य में अनेक सेकेण्डरी स्कूलों की स्थापना की। उपर्युक्त अधिनियम राज्य में सेकेण्डरी शिक्षण संस्थाओं के उचित गठन एवं विकास के उद्देश्य से पारित किया गया था। अधिनियम की धारा 3 यह उपबन्धित करती है कि राज्य सरकार अल्पमत गैर सेकेण्डरी स्कूलों का अधिग्रहण तभी करेगी जब उसकी प्रबन्ध समिति स्वेच्छा से बिना शर्त इसके लिए प्रस्ताव करे। अनुच्छेद 18 अल्पसंख्यक स्कूलों को मान्यता प्रदान करने की शर्तें विहित करता है। ऐसे स्कूलों को मान्यता तभी प्रदान की जायेगी जब उनका प्रबन्ध अनुच्छेद 18 (3) के खण्ड (ी) से (ब) के उपबन्धों के अनुसार किया जायेगा। इसके अनुसार प्रत्येक अल्पमत स्कूल की एक प्रबन्ध समिति होगी और यह स्कूल के प्रबन्ध के लिए लिखित उपविधियाँ बनायेगी। प्रबन्ध समिति शिक्षकों की सेवा शर्तें विहित करेगी जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित होगी। प्रबन्ध समिति को स्कूल सेवा बोर्ड के अनुमोदन से किसी शिक्षक को उसके पद से हटाने की शक्ति होगी। ऐसे स्कूल छात्रों से वही शुल्क लेंगे जो सरकार विहित करे। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उपर्युक्त उपबन्ध विनियमात्मक प्रकृति के हैं, जो अल्पसंख्यक स्कूलों से शिक्षा की उत्तमता और प्रबन्ध में कार्यकुशलता को सुनिश्चित करते हैं। ये स्कूल सेवा बोर्ड को असीमित शक्ति नहीं प्रदान करते है। उसका कार्य केवल यह देखना है कि स्कूलों के शिक्षकों को उचित वेतन मिले, उनकी पदावधि सुरक्षित रहे और अनुशासनिक कार्यों में प्रबन्ध समिति नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का पालन करे। उपर्युक्त उपबन्ध 300 अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं के हित में हैं अत: संवैधानिक है।

उपर्युक्त तीनों मामलों में दिये गये निर्णय समयानुकूल एवं स्वागत योग्य हैं। ये अल्पसंख्यक संस्थाओं को देश की मुख्य धारा में लाने और कल्याणकारी राज्य के आदर्शों को साकार करने में सहायक होंगे। इन निर्णयों द्वारा अल्पमत संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों एवं कर्मचारियों के पदावधि की संरक्षा होगी तथा समान कार्य के लिए समान वेतन के सांविधानिक लक्ष्य की प्राप्ति भी होगी।

बिहार एस. एम. ई. बोर्ड बनाम एम. एच. ए. कालेज[38] के मामले में प्रत्यर्थी ने बिहार राज्य मदरसा शिक्षा बोर्ड अधिनियम 1982 की धारा 7 (2) (ी) की विधिमान्यता को चुनौती दिया था। अधिनियम के अधीन बिहार राज्य में मदरसों में शिक्षा के विकास एवं निरीक्षण के लिए एक स्वायत्त बोर्ड के गठन का उपबन्ध किया गया था। मदरसा मुस्लिम समुदाय द्वारा स्थापित शिक्षण संस्था है जिसमें इस्लामिक अरबी और फारसी की शिक्षा दी जाती है। बोर्ड को मदरसों की प्रबन्ध

समिति को इस आधार पर भंग कर दिया कि उसने बोर्ड के अध्यापकों के वेतन भुगतान संबंधी निदेशों का पालन नहीं किया था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि अधिनियम की धारा 7 (2)(I)अनु. 30 (1) का उल्लंघन करती है, और अवैध है। राज्य विनियम की शक्ति के प्रयोग में अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं के उनके प्रबन्धन के अधिकार को पूर्णरूप से नहीं ले सकती है ।

सेन्ट स्टीफेन्स कालेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय[39]के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि राज्य या उसका कोई अभिकर्त्ता अनिवार्य सम्बन्धन द्वारा अनुच्छेद 30 (2) के अधीन प्रदत्त प्रकृति को नष्ट नहीं कर सकता है। प्रबन्धन का अधिकार नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए। किन्तु शिक्षा का स्तर प्रबन्धन का भाग नहीं है। राज्य शिक्षा के स्तर को विनियमित कर सकता है। अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं में भी शिक्षा का स्तर गिरने नहीं दिया जा सकता है। विद्यार्थियों का चुनाव प्रशासन का आवश्यक भाग है इसका भी राज्य द्वारा विनियमन किया जा सकता है किन्तु यह इन संस्थाओं के कल्याण एवं उत्थान के लिए किया जाना चाहिए।

सेन्ट जान टीचर्स ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट बनाम तमिलनाडु राज्य[40]- के मामले में अपीलार्थियों ने तमिलनाडु सरकार के स्कूलों के मान्यता सम्बन्धी नियमों की विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दिया कि इससे उनके अनुच्छेद 30(1) में प्रदत्त अधिकारों का अतिक्रमण होता था। इस नियम के अधीन विहित नियमों का पालन न करने पर राज्य सरकार ने मान्यता देने से इन्कार कर दिया था। मान्यता नियमों के अनुसार उन्हीं टीचर्स संस्थानों को मान्यता दी जा सकती थी जिनके पास एक निश्चित भूमि हो, जिस पर संस्थान का भवन बनाया जा सके, कमरों का निश्चित साइज हो, प्रयोगशाला, एक अच्छा पुस्तकालय, स्टाफ के लिए कमरे, एक शौचालय, आफिस तथा कक्षाओं के लिए पर्याप्त फर्नीचर, शिक्षण सामग्रियों खेल-कूद, कला, मनोरंजन सम्बन्धी सामग्रियाँ, खेल के मैदान प्रशिक्षुओं को प्रशिक्षण देने के लिए एक मिडिल स्कूल की स्थापना, आदि हो। यह अभिकथन किया गया कि उक्त शर्तों का पालन करना अल्पसंख्यक संस्था के लिए असम्भव है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उपर्युक्त शर्तें अनुच्छेद 30 (1) का अतिक्रमण नहीं करती हैं। बल्कि अल्पसंख्यक संस्थाओं के हित में है। शिक्षा के उच्च स्तर को बनाए रखने के लिए ऐसे नियम आवश्यक हैं। मान्यता पाने का कोई मूल अधिकार नहीं है और कोई भी संस्था जो मान्यता प्राप्त करना चाहती है उसे राज्य द्वारा विहित शर्तों का पालन करना चाहिए। शिक्षकों का शिक्षण संस्थानों में दायित्व अधिक होता है क्योंकि वे राष्ट्रनिर्माण में योगदान देते हैं। उनके शिक्षा देने के संस्थानों का स्तर उच्च कोटि का होना चाहिए।

एन. अहमद बनाम मैनेजर, इमजाये हाई स्कूल [41]के मामले में उच्चतम न्यायालय

ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक अल्पसंख्यक को अपनी शिक्षण संस्था के प्रबन्धन का अधिकार है जिसमें किसी भी अर्हता प्राप्त व्यक्ति को अपने स्कूल के प्रिंसिपल के पद पर नियुक्ति के लिए चुनने का अधिकार भी आता है, और अनुच्छेद 30 (1) के अधीन सुरक्षित है और सरकार द्वारा इसे कोई अधिनियम बनाकर या कार्यपालिका आदेश द्वारा कम नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत मामला केरल राज्य में स्थित सरकारी सहायता प्राप्त कर अल्पसंख्यक स्कूल में हेड मास्टर की नियुक्त से सम्बन्धित था। स्कूल की प्रबंध समिति मिस्टर पी. एम. अबूबकर को हेड मास्टर नियुक्त करना चाहती थी। मिस्टर एन. अहमद जो ज्येष्ठतम अध्यापक थे उन्होंने केरल उच्च न्यायालय में एक रिट फाइल की और न्यायालय से निवेदन किया कि वह प्रबन्ध समिति को उन्हें नियुक्त करने का निर्देश दे। उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अल्पसंख्यक स्कूल की प्रबन्ध समिति अपने कर्मचारियों में से या बाहर से किसी भी अर्हता प्राप्त व्यक्ति को हेड मास्टर के पद पर नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र है, उसमें न्यायालय कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। किसी व्यक्ति ने यह आरोप नहीं लगाया था कि प्रत्यर्थी के पास हेड मास्टर के पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक अर्हता नहीं थी।

विजय शांति एजुकेशन ट्रस्ट बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान और अन्य[42] के बाद में याचिका कर्त्ता न्यास द्वारा दर्शन दंत्त महाविद्यायालय को एक धार्मिक अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था के रूप में मान्य किये जाने हेतु याचिका संचित की थी याचिका कर्त्ता न्यासी श्री वी.सी.जैन ,श्री सुरेश चंद जैन , श्री नरेश जैन और न्यास के संस्थापक संरक्षक न्यासी थे। न्यास को न्यास मंडल के सदस्यों जिनमें संस्थापक संरक्षक न्यासी और मंडल के अन्य सदस्य थे उसके द्वारा संचालित किया जाना था। अध्यक्ष ,सचिव तथा कोषाध्यक्ष को आफिसर धारियो के रूप मे नियुक्त किया गया था जो कि न्याय मंडल के सदस्यो में से चुने जाने थे न्यासी बनने की आवश्यक शर्त थी कि व्यक्ति को श्वेताम्वर होना चाहिऐ और मूलतः राज्य का निवासी होना चाहिए तथा ऐसे लोग एक राशि का भुगतान के बाद संदस्य बन सकते थे।

न्यास अभिलेख के खण्ड 4(स) के अनुसार - न्यास को शिक्षा,प्रसार एवं धर्मादा उद्धेश्यो हेतु जैन समाज के सदस्यो द्वारा स्थापित किया गया है याचिका कर्त्ता द्वारा यह दावा किया गया था कि चूंकि न्यास जैन समुदाय के व्यक्ति के द्वारा स्थापित है तथा यह इन्ही लो गो के द्वारा संचालित किया जा रहा है न्यास की स्थापना कल्याण कारी शिक्षा केप्रसार हेतु की गयी है और न्यास द्वारा स्थापित दर्शन दतं महाविद्यालय शैक्षणिक संस्था, एक धार्मिक अल्पसंख्यक श्वेताम्र जैन स्थापित एवं संचालित की जा रही है अतः इस महाविद्यालय को संविधान के अनुच्छेद 30 के अनुसार एक धार्मिक अल्प संख्यक शैक्षणिक संस्था के रूप में मान्यता दी जाये। याचिका कर्त्ता द्वारा उदयपुर में एक दंत महाविद्यालय खोलने की अनुमतिहेतु भारतीय दंत परिषद में आवेदन किया गया था। एवं इस प्रकार की अनुमति प्राप्त कर के न्यास ने दंत महाविद्यालय

के नाम से सौ पंलग वाला एक महाविद्यालय खोला जिसे राजस्थान विश्वविद्यालय प्राविधिक मान्यता दीगयी थी न्यास ने राज्य सरकार से अनुरोध किया कि दंत महाविद्यालय एक व्यवसायिक पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण देने हेतु जैनो के धार्मिक समुदाय द्वारा शैक्षिणक संस्थान के रूप में स्थापित एवं संचालित है जो राजस्थाान का एक अल्पसंख्यक समुदाय है अतः इसे भारतीय सविधान के अनुच्छेद 30 के उद्धेश्य की प्राप्ति के रूप मे शैक्षणिक संस्था के रूप में मान्य एवं व्यहारित किया जाना चाहिए जहां तक कि न्यास का प्रश्न है इसे राज्य अल्पसंख्यकआयोग तमिलनाड़ूके द्वारा जिसके क्षेत्र में यह स्थापित था एक अल्पसंख्यक धार्मिक संस्थान के रूप में मान्यता मिल चुकी है। राज्य सरकार ने न्यास को राजस्थान अल्पसंख्यक आयोग को पहुचने हेतु सूचित किया जिसके बदले में आयोग ने एक प्रमाण पत्र जारी किया कि न्यास एक जैन अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा संचालित है तथा यह न्यास जैन अल्पसंख्यक संस्था के रूप में जैन दर्शन दंत महाविद्यालय संचालित कर रहा है एंव बाद में राज्य अल्पसंख्यक आयोग द्वारा न्यास को सूचित किया गया कि राजस्थान में जैन समुदाय को अल्पसंख्यक घोषित करने पर विचार चल रहा है। एवं निर्णय अभी लिया जाना है तथा इस संबंध में जारी किया गया प्रमाणपत्र निरस्त कर गया इस सबंध में एक अधिसूचना भी जारी की गयी थी।

याचिकाकर्ता ने इस संबंध में एक आवेदन किया कि पहले जारी किये गये प्रमाणपत्र को निरस्त न किया जाये तब न्यायालय ने कहा कि कुछ समय बाद दंत महाविद्यालय में प्रवेश देने की अनुमति देगी कुछ समय बाद याचिका कर्त्ता ने एक लोक अधिसूचना जारी कर के दंत महाविद्यालय पाठ्यक्रम 2000-2001 के लिए आवेदन पत्र आमंत्रित किये यह नोटिस जून 2000 के लिए जारी किये गये थे अगस्त 2000 क ो एक खंड आदेश जारी कर न्यास के धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय की शैक्षणिक संस्था के दावे का खंडन किया गया इस की दो वजह थी एक तो राजस्थान अल्पसंख्यक आयोग के पास किसी भी संस्था को अल्पसंख्यक घोषित करने की शक्ति नही थी इस लिए आयोग इस प्रकार का प्रमाण पत्र जारी करने के लिए अधिकृत नहीं है। दूसरे, राज्य शासन केवल ऐसे समुदायो को अल्पसंख्यक के रूप में शामिल किया है केन्द्र सरकार ने अल्पसंख्यक घोषित किया है जबकि केन्द्र सरकार ने अल्पसंख्यक नहीं माना है राज्य सरकार को यह संभव नही था कि वह याचिकाकर्त्ता के दावे को स्वीकार करें। यह तथ्य न्यायालय के सामने लाया गया कि अल्पसंख्यक समुदायो का अधिकार जो कि अल्पसंख्यक समुदाय की शैक्षणिक संस्थाये चलाने से है अनुच्छेद 30 के अनुसार है ना कि म्युनिसिपल विधि के अनुसार। जो कि संसद या राज्य विधान मंडल द्वारा क्रियाशील बनाया जाता है इसे ना तो कम किया है यह प्रतिबंधित किया जा सकता है यह इच्छा व्यक्त की सभी अल्पसंख्यक समुदाय चाहे वे भाषा या धर्म पर आधारित हो उन का मौलिक अधिकार है कि वे ऐसे संस्थाओ की स्थापना कर सकते है जैन समुदाय जिन धर्म और उपदेशो का पालन सूक्ष्म रूप से

करता है और राजस्थान राज्य में भारत की जनगणना 1991 के अनुसार 6 बडे धार्मिक समुदायो में से एक एवं स्थानीय जनसंख्या का 1.8 प्रतिशत है विद्धान अधिवक्ता बताते है अनुच्छेद 30 के अन्तर्गत अधिकारो कि संरक्षण तथा उसके द्वारा लाभ प्राप्ति राज्य के अन्तर्गत किसी भी गति विधि के संन्दर्भ में सर्वथा उचित है उन्होने आगे क्हा कि भले ही एक समुदाय जो कि सम्पूर्ण भारतीय परिदृश्य में अल्पसंख्यक के रूप मे दिखता हे परन्तु फिर भी अधिकारो के संबंध में एक अल्पसंख्यक समुदाय हो सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने डी.ए.बी.कालेज जालन्धर बनाम पंजाब राज्य की बात कही जिसमें पजांब के हिन्दुओ ने एक अल्पसंख्यक समुदाय का गणन किया था साथ ही साथ पंजाब राज्य में जन संख्या के अनुपात के आधार पर आर्य समाजियो को ऐसे लाभ हो ,उस का पात्र समझा जाये उन्होने दिल्ली उच्च न्यायालय के एक निर्ण य पर ध्यान आकर्षित कराया जो कि ए.एस.ई. न्यास बनाम दिल्ली प्रशासनिक शिक्षा के निर्देशक के वाद में जिसमें दिल्ली के क्षैत्र जैन धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में मान्य किये गये थे श्री सिघवी के द्वारा यह कहा गया कि याचिकाकर्ता राजस्थान एक शैक्षणिक संस्थान चला रहा था कि यह संस्था एक न्यास के द्वारा शासित थी जो कि जैन समुदाय का था और राजस्थान का श्वेताम्बर जैन समुदाय के द्वारा प्रबंधित थी उसने दंत महाविद्यालय से संबंधित सभी प्रधिकारी से अनुमति ले कर एवं विश्वविद्यालय से मान्यता लेकर चलाया गया है यह अनुच्छेद 30 के दोनो शर्तों को पूरा करती है कि जैन अपने अधिकार क्षेत्र में एक स्वतंत्र सम्प्रदायिक समुदाय है जिसका धार्मिक दर्शन अन्यों से भिन्न है अंतिम रूप से यह निर्णय लिया गया था कि कोई शैक्षणिक संस्था व्यवसायिक शिक्षा दे रही है और किसी सम्प्रदायिक अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा स्थापित एवं संचालित है उसके प्रबंधन में 50 प्रतिशत सीटे उसी अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यो द्वारा भरने के लिए बाध्य होगा इस आधार पर दंत महाविद्यालय उपलब्ध सीटों को भरे जाने का दावा प्रबंधन तथा राज्य प्राधिकारी के सामने किया गया इस सबंध में श्री सिंघवी ने सेन्ट स्टीफेन कालेज बनाम दिल्ली विश्व विद्यालय (1992)तथा जे.एम.ए.पाई फाउन्डेशन बनाम कर्नाटक राज्य (1993),माथमल शीला इंजीनियरिंग कालेज बनाम तमिलनाडू राज्य(1995) की बात करते हुये याचिका कर्ता के बात के संबध मे मत व्यक्त किया कि संसद ने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग 1992 (इसके पूर्व राष्ट्रीय आयोग अधिनियम1978 को क्रियाशील) किया था जिसके अन्तर्गत अल्पसंख्यक शब्द की परिभाषा केन्द्र सरकार के अनुरूप दी गयी है यदि कोई समुदाय केन्द्र शासन द्वारा या राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग द्वारा इस हेतु अल्पसंख्यक अधिनियम 1992 में अल्पसंख्यक समुदाय घोषित न किया गया हो तो यह अल्पसंख्यक स्तर तथा अधिनियम हेतु और अनुच्छेद 30 के उद्धेश्य हेतु ऐसा दावा नही कर सकता सविधान के अनुच्छेद 29 एवं 30 के अन्तर्गत कुछ अल्पसंख्यक किसी भी समुदाय को संख्यात्मक भाग के रूप में लाभान्वित होने के अधिकारी नही होगे।

ए.पी.क्रिश्चियन मेडीकल एजुकेशनल सोसायटी बनाम आन्ध्रप्रदेश शासन[34] एवं शिव नंद पाण्डे बनाम भगवान दास के वादो पर भी अपना विश्वास व्यक्त किया बाहय रूप से यह उचित होगा कि सविधान के अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार अनुच्छेद 25 से 30 के प्रावधान को भी स्पष्ट किया जाये जहां अनुच्छेद 25 स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार देता है जिसके अन्तर्गत किसी भी धर्म, विश्वास , सिद्धांत को मान्य पालन करने तथा उसके अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता प्रदत्त करता है वही अनुच्छेद 26 ,29 व 30 किसी धार्मिक संस्था की सामुदायिक रूचियों को उसकी भाषा एवं धर्म के आधार पर मान्य होना चाहिए। अनुच्छेद 26 स्वतंत्रता का अधिकार देता है जिसके अनुसार कोई भी अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार आचरण कर सकता है तथा कल्याणकारी उद्धेश्यो हेतु एवं धार्मिक हितो की पूर्ति हेतु संस्थायें स्थापित कर सकता है। चल और अचल संम्पत्ति ले सकता है एवं विधि के अनुसार ऐसी सम्पत्ति की देखरेख संचालन कर सकता है स्पष्टत: अनुच्छेद 26 के अन्तर्गत शैक्षणिक संस्था स्थापित या संचालित करने के अधिकार से भिन्न ,अलग तथा विशेष अनुच्छेद 30 है जो कि कहता है सभी अल्पसंख्यक समुदायो को चाहे वे भाषा पर आधारित हो अधिकार है कि वे अपने रूचि की शैक्षणिक संस्था संचालित कर सकते है। अनुच्छेद 26 के अधिकार किसी अल्पसंख्यक समुदाय के संबंध में भले ही ना हो पर यह प्रत्येक समुदाय के द्वारा प्रयोग किया जा सकता है।

शब्द सम्प्रदाय एक विस्तृत महत्व रखता है इस अभिव्यक्ति की व्याख्या उच्चतम न्यायालय द्वारा हिन्दू धर्मादा अधिनियम बनाम लक्ष्मेन्द्र श्री स्वामियार के वाद में की गयी इस का अर्थ है कि अलग अलग लोगो का एक समान नाम का समुह हो जो कि एक उभयनिष्ठ विश्वास हासिल करे या समान रूप से विश्वास करने हेतु विशेष नाम द्वारा निर्मित है। आचार्य जगदीश्वरानंद अवधूत बनाम कमिश्नर आफ पुलिस के वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा धर्म के वारे में तीन शर्ते निम्नानुसार है - 1. इसे ऐसे अलग अलग व्यक्तियो का समुह होना चाहिए जो एक समान सिद्धांत व विश्वास रखते है जिन्हे वे अपने अध्यात्मिक रूप हेतु मानते है। 2. सार्वजनिक संगठन हो। 3. एक विशेष उपाधि हो।

अत: अनुछेच्द 26 की उददेश्य की प्राप्ति हेतू , प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा समूह को धार्मिक समूह कहा जा सकता है यदि वे एक से विश्वास संगठन नाम वाले का समूह है अनुछेच्द 29 व 30 में सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकारों के संरक्षण संबंधित है अनुछेच्द 29 किसी नागरिक के किसी वर्ग को अपनी अलग भाषा लिपी व धर्म एवं संस्कृति को मानने का अधिकार देता है यह अधिकार किसी वर्गीकरण पर आधारित नहीं है बल्कि धर्म पर आधारित है परन्तु यह भारत के किसी भी क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति हेतु है अनुछेच्द 29 को लागू करने हेतू किसी भी क्षेत्र में रहने वाले लोगो के समूह को विषेशत: बोली जाने वाली भाषा की समान्य लिंक द्वारा पहचान प्राप्त है यह अधिकार न तो धर्म की

सार्वभौमिकता पर निर्भर है और न ही किसी क्षेत्र की तुलनात्मक जनसंख्या पर यह केवल एक अलग पहचान वाले समूह या बोली जाने वाली भाषा तथा संस्कृति पर निर्भर करता है अनुछेच्द 29 के उद्देश्य हेतु यदि अलग-अलग धर्मो से व्यक्ति एक समान भाषा ,लिपि और संस्कृति को धारण करते है तो उन्हें इन आधारों पर एक समुदाय के रूप में जाना जाता है अनुछेच्द 30 ,अनुछेच्द 29 से भिन्न व्यक्तियों समुदाय के अधिकारो के बारे में बताता है

धार्मिक अल्पंसख्यक समुदाय के लिए एक ही विश्वास को मानने वाल ,एक ही विश्वास को मानने वाले समुह ,उस क्षेत्र की संम्पूर्ण जनसंख्या की तुलना में संदर्भित किया जा सकता है इसी प्रकार भाषायी अल्पंसख्यकको संख्या के आधार पर माना जाना चाहिए जिससे बोली जाने वाली भाषा के आधार पर कुल जनसंख्या में अल्पंसख्यककहा जा सके यह अधिकार मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्था प्राप्त करने तथा संचालित करने तक सीमित है अपेक्स न्यायाल य द्वारा यह स्वीकार किया गया कि अल्पंसख्यक शब्द का अर्थ है कि साख्यिकीय रूप में 50 प्रतिशत से कम यह प्रश्न उच्चतम न्यायालय के समक्ष इन-री केरल एजुकेशन बिल के वाद में संविधान के अनुछेच्द 143 के अन्तगर्त रखा गया था न्यायालय ने माना कि यदि शब्द संविधान में परिभाषित नहीं तो इसे संख्या में 50 प्रतिशत से कम के आधार पर भी माना जाना चाहिए इस प्रकार न्यायालय ने कहा कि इस प्रकार का उत्तर नहीं दिया कि क्या किसी ईसाई को अल्पंसख्यक के रूप में व्यवहार करना चाहिए केवल इतना जानकर कि अल्पंसख्यक का अर्थ 50 प्रतिशत से कम होता है ? परन्तु यह 50 प्रतिशत किसका है? क्या यह भारत का सम्पूर्ण जन सख्या का या राज्य की जनसंख्या का ? न्यायालय ने इस प्रश्न के सबंध में कहा कि कथित अभिव्यक्ति के निर्धारण के लिए केरल राज्य की कुल जनसख्या तथा ईसाईयो को हिन्दू, मुस्लिम आदि की जनसंख्या पर विचार होना चहिए केरल राज्य के वाद में कहा गया कि किसी भाषीय समुदाय अथवा धार्मिक समुदाय के संचालन का निधरिक कारक इसकी संख्यात्मकता होना चाहे इसे समान भाषा के आधार पर वर्गीकृत किया जाये या धार्मिक समानता के आधार पर। जैसा कि इस वाद में 50 प्रतिशत से कम का निर्धारण किया गया है वह राज्य के जनसंख्या का हो ना कि भारत की ।

जैनों को मध्यप्रदेश सरकार, राजस्थान सरकार और दिल्ली सरकार में अल्पसंख्यक घोषित कर दिया गया है। उपरोक्त वादों से स्पष्ट है कि न्यायालय भी जैनों को अल्पसंख्यक का दर्जा देने के पक्ष में है। तथा उनकी शैक्षणिक संस्थाओं और संस्कृति को संरक्षित, पोषित करने के लिए सहमत है।

धार्मिक स्वतंत्रताओं के संवैधानिक संरक्षण ने असमानताएँ तो समाप्त कर दीं पर नए विशेषाधिकार निर्मित नहीं किये। इसने धार्मिक समानता तो प्रदान की पर सिविल प्रतिरक्षा प्रदान नहीं की। इसका सार धार्मिक नीति की समानता से स्वतंत्रता है, ना कि विधि की समानता से

स्वतंत्रता। धार्मिक निष्ठा राज्य के प्रतिरोध के बिना भी निभाई जा सकती हैं।इस प्रकार हमारे संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंन्त्रताओं का सार यह है कि कोई धर्म न तो राज्य का समर्थन प्राप्त करेगा और न ही उसका द्वेष। धर्म, राजनैतिक शासन के क्षेत्र से बाहर है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे सभी मामले जो धार्मिक संस्थाओं या मान्यताओं से संबंधित हैं, शासन के क्षेत्राधिकार से बाहर हैं। यदि ऐसा होता तो राज्य तथा चर्च में पृथ्थकरण के स्थान पर राज्य किसी अन्त: करण से संबंधित मामले में चर्च के अधीन हो जाता। परन्तु अभी तक अल्पसंख्यकों द्वारा अपने धर्म के पालन में बहुसंख्यक की सिविल विधि बनाने की राजनैतिक शक्ति पर कोई अवरोध केवल इसलिये नहीं पैदा किया क्योंकि वह उनके अन्त:करण पर प्रहार कर सकते थे।जिसका अर्थ है अल्प संख्यकों का अंत: करण बहुसंख्यकों के अंत:करण से अधिक पवित्र है।

यदि भारत कभी ऐसा राष्ट्र बनना चाहता है कि जिसमें आंतरिक शान्ति बनी रहे या आर्थिक संसाधन विकसित करना चाहता है, कला तथा विज्ञान को प्रोत्साहित करना चाहता है तो हिन्दुवाद तथा इस्लाम दोनों का पुनर्जन्म होना चाहिये। इन दोनों जातियों को कठोर पुर्नजागरण तथा तपस्या से गुजरना पड़ेगा और दोनों का तर्क तथा विज्ञान के अनुसार नवीनीकरण करना पड़ेगा तथा दोनों को शुद्ध करना पड़ेगा। जो भी सरकार ने हिन्दुत्व या इस्लाम के बारे में कहा है उसे दूसरे धर्मो पर भी लागू करना पड़ेगा। यदि अल्पसंख्यकों के सद्भाव को एक सच्चाई बनाना है ताकि मात्र लोकजीवन के आदर्श को धर्म से अलग कर देना चाहिये। उसे केवल व्यक्ति तथा सृष्टिकर्ता के मध्य संबंधों तक सीमित कर देना चाहिये। जीवन के दूसरे क्षेत्रों को भी तर्क तथा संबंधबाद से प्रभावित होना चाहिये। इस वैज्ञानिक उपलिब्धयों के युग में विज्ञान को मात्र हमें सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिये प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। इसे आधुनिक समाज तथा जीवन के मनोविज्ञान का आधार भी बनाना चाहिये।

संदर्भ सूची

1. मोहम्मद इमाम, माइनारिटीज एण्ड दा लॉ, प्रथम संस्करण पृष्ठ 316
2. कस्टीट्यूएन्ट असेम्बली डिवेट्स 198-99, भाग-5
3. पूर्वोक्त, 204
4. बंबई ऐजुकेशन बनाम बंबई ऐजुकेशन सोसाइटी, ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 561
5. एस. अजीज पाशा बनाम यूनियन आफ इंडिया, ए. आई. आर. 1966 सु. को. 10
6. सिद्ध राज भाई बनाम गुजरात राज्य, ए. आई. आर. 1963 सु. को. 540
6. डी . ए. बी. कालेज भटिण्डा बनाम पंजाब राज्य, ए. आई. आर. 1971 सु. को. 1737
7. (1995) 4 एस. सी. 646
8. जे. एन. पाण्डेय, भारत का संविधान संस्करण तैतीसवां, पृ. 280, 281
9. डब्लू प्रोस्ट बनाम बिहार राज्य, ए. आई. आर. 1969 सु. को. 469
10. इन री केरल इजुकेशन बिल ,ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 956
11. श्री कृष्ण बनाम गुजरात राज्य, ए. आई. आर. 1962 गुजरात 88
12. मदर प्रोविंरयल बनाम केरल राज्य, ए. आई. आर. 1970 केरल 196
13. एस. के. पात्री बनाम बिहार राज्य, ए. आई.आर. 1970 एस. सी. 259
14. कास्ट्टीयूएन्ट असेम्बली डिबेट्स, भाग-5 पृ. 198-199
15. ए. एम. पैट्रानी बनाम इंजी. केशवन, ए.आई.आर. 1965 केरल 75
16. ए. आई.आर. 1963 सु. को. 540
17. मद्रास राज्य बनाम चम्पाकम दौरे राजन, सु.प्र.नोट 7
18. के. बी. वरर्कीय बनाम स्टेट, ए. आई. आर. 1969 केरल 191
19. आर्य प्रतिनिधि सभा बनाम बिहार राज्य, ए. आई. आर. 1958 पटना 359
20. सेंट जेवियर कालेज बनाम गुजरात राज्य, (1974) 2 उप. नि. 1303
21. गांधी फैजेआम कालेज बनाम आगरा विश्वविद्यालय, ए.आई. आर. 1975 उम. नि. प. 355
22. आर्य समाज शिलांग बनाम मेघालय राज्य, ए. आई. आर 2001 गोहाटी 47
23. आल केरल अनरस्टेड रिकग्नाइल्ड स्कूल पैटेनस ऐसोसिएशन बनाम केरल राज्य, ए. आई आर. 2000 केरल 339
24. नरायण शर्मा बनाम पंकज कुमार, ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 72
25. ए. आई. आर. 1971 सु. को. 1737

26. ए. आई. आर. 1963 सु. को. 540

27. (1974) 2 उम. नि. प.

28. मैनेजिंग बोर्ड ऑफ तिली तालीमी मिशन बनाम बिहार राज्य, (984)4 एस. सी 500

29. मार्कनिटी बनाम केरल राज्य, ए. आई आर. 1979 एस. सी. 83

30. लिली कुरीयन बनाम लेबिना, ए. आई.आर. 1979 एस. सी. 52

31. आल सेण्ट्स हाईस्कूल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1042

32. ए. आई. आर. 1966, एस. सी. 10

33. (1986) ,2 एस.सी. सी.

34. (1986) 4 एस.सी. सी.

35. (1987) 2 एस.सी. सी. 516

36. ए.आई. आर. 1988 एस.सी.सी. 37

37. ए.आई. आर. 1988 एस.सी.सी. 305

38. (1990) 1 एस.सी. सी. 428

39. (1992) 1 एस.सी. सी. 558

40. (1993) 3 एस.सी. सी. 595

41. हिन्दुस्तान टाइम्स सितम्बर 14, 1998

42. विजय शांति एजुकेशन ट्रस्ट बनाम स्टेट आफ राजस्थान और अन्य, 2000, राजस्थान लॉ जनरल

ॐ
तृतीय-खण्ड

अध्याय -6

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्राचीन भारत से ही भारत के संपूर्ण लोगों का संपूर्ण जीवन चक्र वेदों और धर्म शास्त्रों पर आधारित था उसकी विधि व्यवस्था आदेश, निर्देश, व्यादेश, आज्ञाये, देवीय विधान पर आश्रित थी जब राज्य, समाज, एवं कानून नहीं था तब भी धर्म ही व्यक्तियों के आचरण को नियंत्रित करता था। वैदिक युग में कर्त्तव्य का पालन ही परम धर्म माना जाता था मनु के अनुसार यदि हम धर्म के अनुसार आचरण नहीं करते तो हम पाप करते है। और दंड के भागी बनते हैं क्योंकि धर्म का अनुपालन न करना अनुद्विकास की ओर उन्मुख होता है। यही कारण है कि इसे व्यक्ति का मानवाधिकार माना गया है। मानवाधिकार की अवधारणा सर्वप्रथम सन 1215 के मैग्नाकार्टा से हुई मानी जाती है और यह मानवाधिकार धर्म की तरह व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं।

यद्यपि आज की बदलती हुई परिस्थितियों में तेजी से हो रहे सामाजिक , राजनैतिक विघटन का प्रभाव भावनाओं पर पड़ा है लोगों में धर्म के प्रति आस्था एवं विश्वास में कमी आयी है इसलिये व्यक्ति के द्वारा धर्म को अपने हितों की पूर्ति के लिये इस्तेमाल किया जाने लगा इसलिये धर्म को संरक्षण की आवश्यकता महसूस हुई। और संपूर्ण विश्व में धर्म को मानवाधिकार के रूप में संरक्षण दिये जाने की गुहार शुरू हो गयी इसी परिपेक्ष्य में संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में धर्म को मानवाधिकारों के रूप में उपबंधित किया।तथा किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म के आधार पर विभेद किये जाने से मना किया गया।

संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता का उल्लेख किया है और शासन इस अधिकाराके मान्यता प्रदान करताप है। कभी धार्मिक अल्पसंख्यक के अधिकारों पर शासन और स्थानीय निकायों द्वारा अधिकारों पर शासन और स्थानीय निकायो द्वारा अधिकारों का हनन भी हुआ है। भारत धर्म निरपेक्ष राज्य हैजिसमें सभी धर्मो को अपनी पूजन करने का स्वतंत्रता है। शासन किसी भी धार्मिक समूह का पहचान नहीं करती। यधपि मुसिलिम और हिंदुओं के बीच में तनाव की स्थिाति देखे ाके मिलती है इसी प्रकार हिंदु और ईसाईयों के बीच में मतभेद की घटनाएं धर्म निरपेक्षता को चुनौती देती है।निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि राज्य सरकारों स्थानीय स्तर पर धार्मिक स्वतंत्रता का सम्मान करती है।

संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता प्रजातन्त्र के कार्य को प्रभावित कर सकती है। प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया कम से कम तीन प्रकार से धर्म से प्रभावित होती है। पहला कि भिन्न धर्म सामाजिक परिवर्तनों के भिन्न मानक बता सकते हैं जो कि आज के समय के अनुसार ना हों। दूसरा वे राज्य के क्रियाकलापों पर अपना निर्णय सुनाने लगेंगे और तीसरा वे मतदाताओं को एक या दूसरी राजनैतिक पार्टी के प्रति एक जुट कर लेंगे जो नैतिक कल्याण के लिये आवश्यक माना गया है। इन

सभी मामलों में यह खतरा है कि धार्मिक अल्पसंख्यक राष्ट्रीय लक्ष्य के लिये कार्य ना करें।

संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतन्त्रता ने, यह किया जाता है कि, उन धर्मो के मानने वालों में पृथकता की भावना निर्मित की है। यह एकता की प्रक्रिया में प्रमुख रोड़ा है। अनुच्छेद 25 अन्त:करण की स्वतंत्रता के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक किसी धर्म को अबाध मानने, आचरण तथा प्रचार करने की स्वतन्त्रता प्रदान करता है

यह स्वीकार किया गया है कि धार्मि क स्वतंत्रता का अर्थ मात्रा अंत:करण की स्वतंत्रता ही होना चाहिये। धर्म को अबाध मानने, आचरण तथा प्रचार करने की स्वतत्रता ने राष्ट्रीय जीवन में समस्याएं पैदा भर दी है जिससे अल्पसंख्यकों में सद्भाव मुश्किल हो गया है।

यधपि विधिक रूप से धार्मिक स्वतंत्रता है परंतु विधि का नियमन ।धारण है राज्य और स्थानीय स्तर पर यहां कि छोटे-छोटे समूहों में आपसी संघर्ष और अशांति देखने को मिलती है वहां राज्य शासन तथा स्थानीय निकाय प्रभावी कदम नहीं उठा पाते कुछ चरमवादी हिंदु ईसाईयों के उपर आक्रोश व्यक्त करते रहे है तथा शासन भी इस दिशा में अपर्याप्त कदम उठा सका है समाचार पत्रो विभिन्न समुदाय एक दूसरे पर छींटाकशी करने में पीछे नही हटते और कही कही यह हिंसक रूप की धारण कर लेता है। शासन इसके वचाव के लिए स्थानीय राजनीति को दोषी मानती है। कुछ राज्यों में तो इन मुद्दों पर पहरा भी करायी गयी है।

शासन जो कि प्रजातंत्रात्मक आधार पर सभ धर्मो धार्मिक परंपराओं का सम्मान करता है और ईसाई सोहार्द्र से धर्म निरपेक्ष आचरण करता है जैसे वर्तमान में भा. ज. पा. जिसने हिंदु राष्ट्रवाद तथा कट्टरवादी हिंदुवाद क समर्थक है ने ईसाई मुसलमानों पर हिंसात्मक कार्यवाही की है भा. ज. पा. का जिन राज्यों में स्वतंत्र अधिकार है जैसे गुजरात, हिमाचल प्रदेश, उ. प्र. के सदस्य राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की आदर्शवादिता के अनुयायी है यद्यपित भा. ज. पा. स्वतंत्र राजनैतिक पार्टी है फिर भी भा. ज. पा. की नीतियों पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रभुत्व परिलक्षित होता है आर. एस. एस. में हिंदु मान्यता और हिंदु संस्कृति का प्रभुत्व है जहां-जहां भी ईसाई और मुसलमान दृष्टिकोणों का विरोध का प्रशन है भा. ज. पा. और आर. एस. एस. के सदस्य जिसमें सक्रिय रहे है यद्यपि भा. जा. पा. जातिवाद के विरूद्ध है परंतु अधिकांश सदस्य हंदु राष्ट्रवाद का समर्थन करते है पुरने मंदिर की जगह पर नये मंदिर की स्थापना उनके प्राप्ति वादी दृष्टिकोण का समर्थक है।

अक्टूबर 2000 के मध्य में आर. एस. एस. आगरा में 3 दिन का शिविर और ली आयोजित की। के. एल. सुदर्शन जो कि आर. एस. एस. के प्रमुख थे ने विदेशी गिरजाघरों को प्रतिबंधित करने की

मांग की तथा चीनी आधार पर राष्ट्रीय क्रिश्चियन धमृ की स्थाना का सुझाव दिया। इस प्रकार भारतीय ईसाईयों को विदेशी प्रभाव से मुक्त करने का एक सुझाव था श्री आडवाणी जी गृहमंत्री ने इस में भाग लिया तथा इन सुझावों का जहां एक ओर समर्थन होता रहा वही कुछ धार्मिक कट्टर संप्रदाय इनका विरोध करते रहे अंत में भा. ज. पा. समर्थित शासन ने इस प्रकार के विरोधी प्रावधानों ाके संविधान में शामिल नहीं किया। दिस 2000 में झारखंड के रांची स्कूल में क्रिश्चियन संस्थाओं पर अनक जधन्य अपराध और हमले किये गये वहां भी स्थानीय अधिकारियों ने एक अपराधी समूह को इन कृत्यों का उत्तरदायी माना।

23 मार्च का भा. ज. पा. और आर. एस. एस. ने आंध्रप्रदेश में एक ईसाई प्रार्थना सभा पर हमला किया उसका कारण यह दर्शाया गया कि ईसाई लोग हिंदुओं को धमृ परिवर्तन के लिए बाध्य कर रहे थे। मार्च 2000 के अंत में कुछ ईसाईयों नेतओं ने हिंदु संप्रदायों के नेताओं से साक्षात्कार कर स्वदेशी गिरजाघर और ईसाईयों पर हमले का विरोध दर्ज कराया परंतु वर्ष के अंत तक इसका कोई परिणाम नहीं निकला। 7 मई को उडीसा के जाटनी शहर में फादर जयदीप पर हमला हुआ स्थानीय लोगो ने जयदीप के प्रचार का विरोध करने के लिए यह हमला किया इस प्रकार विभिन्न संप्रदायों तथा उनके धार्मिक नेताओं के द्वारा बीच-बीच में धार्मिक उन्माद को बढावा दिया जाता रहा है। 8 मार्च को आर. एस. एस. ने इस्लाम और क्रिश्यिचन धमृ को भारतीयकरण का प्रस्ताव रखा यहां तक कि आर्गनाइजर पत्रिका में ईसाई मिशनरी का विरोध करते हुए। भारत छोडों की धमकी भी दे डाली।

धर्म के संबंध में एक ऐसा सिद्धांत है जिस पर चलना सभी सरकारों के लिए बांछनीय होगा, किन्तु समाज के विघटन का जोखिम उठाये बिना भारतीय सरकार उस सिद्धांत से हट नही सकती है वह सिद्धांत यह है कि हर व्यक्ति अपने धर्म को मानना, सहना किया जाना चाहिए और यह कि कोई व्यक्ति किसी अन्य धर्म का अपमान करे यह सहन नहीं किया जाना चाहिए ।

धर्म के विरूद्ध आचरण करने वालों को भारतीय दंड संहिता, सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय बनाया गया है। और यदि कोई व्यक्ति धर्म के नाम पर दंगा करता है या करने के लिये उत्प्रेरित करता है या धोखा , प्रलोभन या जबरदस्ती धर्म परिवर्तन करवाता है तो उसके विरूद्ध कार्यवाही उपरोक्त अधिनियम के अंतर्गत की जा सकती है।

उपरोक्त प्रावधान इसलिये किये गये है कि कोई भी व्यक्ति धर्म का जो कि व्यक्ति का मानवाधिकार है, का अपमान करता है या धर्म स्थल को अपवित्र करता है या धार्मिक कार्यो में विघ्न डालता है तो उसे दंडित किया जायेगा। धर्म परिवर्तन करवाना भी एक दंडनीय अपराध है।राज्य के द्वारा सामुहिक जुर्मने का प्रावधान किये जाने का उद्देश्य यह है कि व्यक्ति सामुहिक रूप से एकजुट होकर

किसी अन्य धर्म का या धार्मिक स्थल का अपमान न करे। या क्षति न पहुंचाये। इससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के विरूद्ध आचरण करने से रोका गया है।

नवीन विश्व के सभी महान धर्म 600 ईसा पूर्व से 700 ईसवी के मध्य पाए गए जब धर्मनिरपेक्षता तथा प्रजातन्त्र दोनों असंभव थे। यह सामान्य बातहै कि उनके द्वारा सुझाई गई विधियां अप्रचलित हो चुकी हैं। यह सामान्य बुद्धि की बात है कि उन्हें सीमित कर देना चाहिये और उनमें यथासंभव सुधार करना चाहिये और यह बहुत वड़ी तथा सामान्य भूल है कि हम अपनी विधियां और नैतिकता आज की आवश्यकताओं तथा अनुभवों को ध्यान में रखकर नहीं परन्तु धार्मिक किताबों के आधार पर तय करते हैं।

उपरोक्त मत अल्पसंख्यकों के सद्भाव का सिद्धांत प्रतिपादित करता है। हममें से सभी को यह महसूस करना होगा कि बड़ी सीमा तक आज धर्म अप्रचलित हो चुकें और आज का समाज ऐसे मानक बताता है जिनसे व्यक्तियों के संबंध शासित हो। यदि इसे सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन का आधार बना लिया जाए और इसी बात पर हमारे कृत्य तथा विधियां निर्भर हो जाएं तो अल्पसंख्यकों की समस्या आसानी से सुलझ जाएगी।

भारत में सभी धर्मों को मानने वाले व्यक्ति हैं और इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - (1) हिन्दु, बौद्ध, जैन तथा सिख, (2) मुसलमान तथा ईसाई।

पहले वर्ग धर्मों के धर्मगुरू भारत में पैदा हुए और उनके सभी धार्मिक स्थान भारत में स्थित हैं जबकि दूसरे वर्ग के धर्मगुरू भारत से बाहर पैदा हुए और इनके कई धार्मिक स्थान भारत से बाहर स्थित हैं। इसलिये उन वर्गों के लिये यह सामान्य बात है कि अपनी धार्मिक उन्नति के लिये वे उन स्थानों पर निर्भर रहें।भारतीय समाज की असमान प्रकृति को देखते हुए संविधान के संस्थापकों ने अल्पसंख्यकों के लिए विशिष्ट उपबंध बनाए हैं।

भारतीय संविधान के संस्थापकों ने अल्पसंख्यकों के मस्तिष्क से भय दूर करने के लिए उनके लिये विशेष उपबंध बनाए थे और उनके अनुसार भारत विभाजन के पश्चात् यह आवश्यक था। अब यह देखने का समय आ गया है कि क्या इन विशेष उपबंधों ने अल्पसंख्यकों को देश की मुख्य धारा से जुड़ने में मदद की है या इन प्रावधानों से उनके मन में पृथकता की भावना निर्मित की है जो अल्पसंख्यकों की समस्या के लिये महत्वपूर्ण है जिसकों वे बचाना चाहते हैं।

भाषाई समस्या ने विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के मध्य इतने मतभेद उत्पन्न कर दिये थे कि भाषाई अल्पसंख्यक उसी में संलग्न हो गई थीं और भारत में असम तथा पंजाब में भाषाई दंगे हुए और

दूसरे भागों में उथल पुथल पैदा हो गई। इसके बजह से राज्यों को भाषाई आधारों पर बांटने की मांग उठी और इसका परिणाम यह हुआ राज्य भाषा के आधार पर बँट गए।

जब लोग समुदाय के एक वर्ग को समृद्ध पाते हैं जिनके पास धन से मिलने वाले सारे आराम होते हैं और जब वे स्वंय को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित पाते हैं तो यह सामान्य है कि उनमें द्वेष तथा विद्रोह की भावना व्याप्त हो जाए। एक भावना यह है कि जीविका के स्तर को ऊपर उठाने के लिये या समाजवादी समाज की उन्नति के लिये अभी तक कुछ भी नहीं किया गया।

एक तर्क यह उठाया जाता है कि सिविल संहिता का अधिनियमन अल्पसंख्यकों के प्रति अन्यायपूर्ण होगा। क्या यह अन्यायपूर्ण है ?किसी भी विकसित मुस्लिम देश में अल्पसंख्यकों के व्यक्तिगत कानून इतने अधिक मान्यता प्राप्त नहीं हैं कि सिविल संहिता को अधिनियमित कर सकें। उदाहरण के लिए तुर्की या मिस्त्र को ले लें। इन देशों में किसी भी अल्पसंख्यक को ऐसे अधिकार नहीं दिये गए है। यदि आप समुदाय को एक करना चाहते हैं तो आपकों उन लाभों पर ध्यान देना चाहिये जो पूरे समुदाय को होंगे।

संविधान का अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को दो प्रकार के अधिकार प्रदान करता है- (1) अपनी रूचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना तथा प्रबन्ध का अधिकार (2)उन्हें प्रशासित करने का अधिकार। इन दोनों अधिकारों ने अल्पसंख्यकों के मन में पृथकता भी भावना को और अधिक प्रबल कर दी है। सर्वोच्च न्यायालय ने कई वादों में इस अनुच्छेद को परिभाषित किया है और यह प्रयास किया है कि वह संविधान में दिये गए व्यापक विचारों से मिलता जुलता अथान्वयन हो। और शैक्षणिक संस्थाओं को अपनी रूचि की शेक्षणिक संस्थाएं स्थापित करने का अधिकार राज्य द्वारा सहायता देने के लिये व मान्यता प्रदान करने के लिये युक्तियुक्त शर्तें विहित करने के अधिकार से नहीं टकराता है। न्यायालय ने यह भी कहा कि अनु 30 (1) द्वारा प्रदत्त अधिकार अनु. 29 (2) के अधीन है जिसके अनुसार राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश पाने से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी भी आधार पर वंचित न किया जाएगा। इस प्रकार अनु. 29 (2) एवं 30 (1) का सही आशय यह है कि वे अल्पसंख्यक संस्थाओं को बाहरी लोगों के प्रवेश के लिये कहते हैं।

हमारे देश में पारंपरिक रूप से अल्पसंख्यक धार्मिक मान्यताओं में बँटे हैं। इस प्रकार हमारे यहाँ मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन बौद्ध और इसी प्रकार के दूसरे धर्म हैं। ये अवश्य है कि ज्यादातर अल्पसंख्यक, बहुसंख्यकों की नीति से समन्वय स्थापित करने में गंभीर कठिनाई महसूस कर

रहे हैं। ईसाई अल्पसंख्यकों द्वारा उठाई जा रही कठिनाईयाँ जो कि भारत का तीसरा सबसे बड़ा अल्पसंख्यक समूह है।

भारत में ईसाई अल्पसंख्यक एक भिन्न लोगों से बना समूह है। केरल में 200 वर्षों से रह रहे हैं तथा गोआ, बंबई तथा भारत के दूसरे भागों में 400 साल से रह रहे धर्मान्तिरित व्यक्ति तथा सबसे हाल के उत्तर के निवासी विशेष तौर पर जनजातीय व्यक्ति जो ईसाई समुदाय में हाल ही में सम्मिलित हुए हैं। करीब 60% समुदाय दक्षिण भारत में रहता है और केरल की एक तिहाई जनसंख्या ईसाई है। इस प्रकार अल्पसंख्यक उत्तर में दक्षिण की अपेक्षा अधिक है क्योंकि दक्षिण में वे सुस्थापित हो चुके हैं। उत्तर में स्थानीय ईसाईयों को अक्सर विदेशी माना जाता है और इसमें जनजातीय ईसाई सम्मिलित हैं जो अपनी जातीय उत्पत्ति तथा पिछड़ेपन के कारण भेदभाव सहन करते हैं।

दूसरे तरफ राष्ट्रीय स्तर पर ईसाई समुदाय को शैक्षणिक तथा सामाजिक हितकारी संस्थाओं के लिये जाना जाता है। ब्रिटिश राज के समय ज्यादा आधुनिक ईसाइयों को कुछ विशेषाधिकार प्रदान किये गए थे। स्वतंत्रता संग्राम केवल कुछ ने भाग लिये तथा बाकी पुनः स्थापित होने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं।

हम अधिकतर अनिवार्यता द्वारा अल्पसंख्यक तथा विकल्प द्वारा अल्पसंख्यकों की बात करते हैं। इच्छा या अनिवार्यता द्वारा अल्पसंख्यक अपनी पहचान बनाए रखना चाहते हैं और निडरतापूर्वक अपनी परंम्पराओं से जुड़े रहते हैं जिसे वे अपनी विशिष्ट संस्कृति का भाग समझते हैं तथा व्यवस्था से तब तक नहीं जुड़ते जब तक कि उन्हें कुछ स्वायत्तता नहीं मिले और इसमें असंतुष्टि व्याप्त रहती है और परेशानी का कारण बने रहते है। दूसरी तरफ अनिवार्यता द्वारा अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों की संस्कृति में मिल जाना चाहते हैं पर बहुसंख्यक ऐसे प्रयास का विरोध करते हैं। भारत में उत्तम उदाहरण जाति प्रथा है।

ईसाई अल्पसंख्यकों के बारे में क्या कहा जा सकता है कि वे स्वेच्छया अल्पसंख्यक है और ऐसा प्रतीत होता है भारतीय गणतन्त्र में ईसाई अल्पसंख्यक बाध्यता की बजह से अल्पसंख्यक हैं क्योंकि वे स्वयं को अनिवार्य रूप से भारतीय तथा भारत का नागरिक मानते हैं परन्तु धर्म के कारण अल्पसंख्यक केरूप में वर्गीकृत किये गए हैं। और वे देश की संस्कृति में स्वतंत्रता पश्चात् से मिलना चाहते हैं। तथा कुछ स्थानों पर उन्हें दूसरो से भिन्न करना मुश्किल हो जाता है। परंतु इसमें असली प्रतिरोध साम्प्रदायिक समूह जैसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ तथा जनसंघ का है जो विशिष्ट वैदिक हिन्दू समाज पुनः स्थापित करना चाहते हैं।

भारतीय प्रजातन्त्र के कार्य से यह सिद्ध हो गया है कि ऐसी अपेक्षाएँ काल्पनिक थी। निर्वाचन प्रक्रिया में सांप्रदायिक तथा जातीय तत्व महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं तथा प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में प्रत्येक राजनैतिक दल ने जाति तथा संप्रदाय का ध्यान रखा हैं परिणामस्वरूप प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में कोई एक जाति या संप्रदाय प्रभावी है तो उस जगह उसी जाति या संप्रदाय के जीतने की संभावना रहती है। परिणाम यह है दृश्यमान रूप से धर्मनिरपेक्ष तथा असांप्रदायिक दल चुनाव लड़ते हैं परंतु अंततः विभिन्न जाति तथा संप्रदाय मोटे तौर पर अपने अनुपात के राजनैतिक शक्ति प्राप्त करते हैं, चाहे जो दल जीते या हारे। यह शक्ति का विभाजन सरकारी प्रक्रिया में देखा जाता है। परिणामस्वरूप प्रत्येक जाति या संप्रदाय को ही राजनैतिक शक्ति, सेवाओं के अवसर आदि का भाग पाते हैं।

सामान्यत: पारंपरिक अल्पसंख्यकों की सभी समस्याएँ नहीं सुलझ पाई हैं पर उनकी राजनैतिक शक्ति तथा दर्जा अवश्य बढ़ा है। हर जाति या संप्रदाय जिसे मत देने की शक्ति है उसको कुछ शक्ति मिलती है लेकिन पूर्ण नहीं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मतदाता आंख बंद कर अपनी जाति के व्यक्ति को मत दे देता है तथा उस राजनैतिक दल की बात भी मानता है जो संप्रदाय का प्रतिनिधित्व करता है जैसे मुस्लिम लीग।

अल्पसंख्यकों से हमारा तात्पर्य धार्मिक या जातीय अल्पसंख्यकों से है या एक ही विश्वास के भिन्न संप्रदायों से है जैसे शिया- सुन्नी, कैथोलिक- प्रोटेस्टेन्ट्स। भारत में धार्मिक अल्पसंख्यक जैसे मुसलमान, ईसाई, पारसी तथा सिख इत्यादि हैं। धार्मिक अल्पसंख्यकों तथा संप्रदायों के अस्तित्व मात्र से उनके तथा बहुसंख्यकों के मध्य दंगे नहीं होते। लंबे समय से वे धार्मिक, जातीय तथा सैद्धान्तिक भिन्नताओं के बाबजूद वे साथ साथ जीवित रहते हैं। इतिहास का यह अनुभव रहा है कि अल्पसंख्यकों के अस्तित्व का उस समय की सरकारों ने लाभ उठाने की कोशिश की है जिसके विरूद्ध आंदोलन भड़काना है। ऐसे मामलों में प्रभावित सरकारें सक्रिय रूप से घृणा की भावना को प्रेरित करते हैं और उनके अभिकर्त्ता दंगे तथा धार्मिक भावनाएँ भड़काते हैं।

ज्यादातर भारत में अल्पसंख्यक उसे कहते हैं जो कि बहुसंख्यक (हिन्दू) से बाहर हों। यह दर्शाता है कि भारत की अन्दरूनी पहचान हिन्दुत्व है। ये यह भी दर्शाता है कि भारत की अन्दूरूनी पहचान हिन्दूत्व है। ये यह भी दर्शाता है कि जब तक वे भारतीय न हो जाऐं अल्पसंख्यक इस मुख्य धारा से बाहर है (और, अत: इस देश से भी)। जब भी अल्पसंख्यक अपनी प्राकृतिक और सांस्कृतिक पहचान को बनाने में लगे हैं, तभी बहुसंख्यक द्वारा उनके बीच की दूरियों को और मजबूत करके उनको यह बार-बार याद दिलाया जाता है कि वे अल्पसंख्यकहैं। इसके परिणामस्वरूप बहुसंख्यक

के इस व्यवहार के कारण अल्पसंख्यकों में प्राकृतिक और सांस्कृतिक दूरियां बहुत अधिक बढ़ गई हैं। बहुसंख्यक ने इस कार्य से अल्पसख्यकों को धर्म से संबंधित पहचान दे दी है।

अल्पसंख्यक सामान्यतया अपने प्राकृतिक और सांस्कृतिक पहचान चिन्हों के लिए संवेदनशील होते हैं और वे इन्हें बचाने का ठोस प्रयास करते रहते हैं। जब की पहचान बदलने का खतरा समूह के बाहर से हो। बहुसंख्यकों द्वारा अल्पसंख्यकों के सुधारों की मांग सहानूभूति से प्रेरित नहीं लगती बल्कि ऐसा प्रतीत होता है यह मांग करके वो अल्पसंख्यक को बहुसंख्यक की शक्तिशाली पहचान के अन्दर शामिल करना चाहते हैं। इन मांगों के पीछे जो आशय प्रतीत होता वह अल्पसंख्यकों को राजनीति विरोध करके उनका राजनीतिक हनन करना चाहते हैं।

भारत में अल्पसंख्यक अपनी अलग पहचान बनाने के लिए एक अलग क्षेत्रीयता की मांग कर रहें हैं। यह समझने लायक बात है कि एक अलग छोटी राष्ट्रीय पहचान किसी क्षेत्रीयता में उन समूहों की धार्मिक एकता पर आधारित होती है। इस धार्मिक एकता को एक राष्ट्रीय पहचान में परिवर्तित करने के लिए सांस्कृतिक मिलाप या एकता की जरूरत है। ज्यादातर सरकार की घोषणायें जो कि अल्पसंख्यक के उद्धार के लिए कि जाती हैं वे सिर्फ घोषणायें ही रह जाती हैं।

इससे अल्पसंख्यकों को गरीबी पिछड़ेपन में अविकसित दशा में जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। अब भारतीय समाज के हर अनिष्ठ कार्यों के लिये अल्पसंख्यकों को ही उत्तरदायी माना जा रहा है। जैसे-जैसे देश एक के बाद एक विपदाओं का सामना कर रहा है, इन सभी के लिए ''बर्बाद और उपेक्षित'' अल्पसंख्यकों को ही जिम्मेदार ठहराया जाता है। उन लोगों कि संख्या भी कम नहीं है जो अल्पसंख्यकों की देशभक्ति और वफादारी से हमेशा परीक्षण में रखना चाहते हैं। यह सिर्फ अल्पसंख्यकों के अन्दर कसूरबार होने का आभास कराने का है। यह आभास करा के और दंगे कराकर सिर्फ अल्पसंख्य के अन्दर डर पैदा करना है, जिससे वो अपने आप को छोटा समझें। इस सभी का स्पष्ट उद्देश्य पूरा नियंत्रण और राजनीतिक दबाव बनाने का है। क्योंकि लोग यह सोचते हैं कि अल्पसंख्यक ने अपनी शक्ति और इच्छाओं के लिए गलत जागरुकता का विकास कर लिया है।

अपनी मांगों को रखते समय अगर धर्म और राजनीति को मिलाकर पेश किया जाये तो उनकी मांगों पर अधिक ध्यान दिया जायगा, क्योंकि सरकार भी उन्हीं मुद्दों पर ध्यान देती है जो कि धर्म के केन्द्र के आसपास होते हैं। जो भी साधन राज्य द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं वो सिर्फ उनको अल्पसंख्यक बनाए रखने के लिए होते हैं और न कि उन्हें समाज में एक आर्थिक-राजनीतिक हैसियत प्रदान करने के लिये।

भारत में अल्पसंख्यकों को खतरा उस स्थिति से पैदा होता है जिसमें राज्य की शक्ति को दरकिनार कर दिया जाता है या नजर अंदाज कर दिया जाता है। भीड़ अब एक दैवीय शक्ति के रुप में कार्य कर सकती है और राज्य-शक्ति नामक संस्था इस अपनी सीमाओं को लांघने के कार्य को रोकने में नपुंसक साबित होगी। यह एक वास्तविक खतरा है जिसमें राज्य के बराबर में एक दूसरा राज्य बन जाता है राज्य को एक तरफ रखकर। कभी-कभी यह आभास भी होता है कि राज्य खुद इन शक्ति के सामने अपने आप की जिम्मेदारियों को समर्पित कर देता है। वास्तविक खतरा हमारे संविधिक रुपी संवैधानिक प्रजातंत्र को उन लोगों से है जो नफरत की राजनीति का प्रचार करते हैं एक राष्ट्रीय या ऊंची पहचान के अंतर्गत जिनके लिए कानून के नियमों के लिए कोई आदर या सम्मान नहीं है।

सांस्कृतिक और धार्मिक अधिकारों का प्रावधान अल्पसंख्यकों के लिए किए गये हैं खास कर मुस्लिम अल्पसंख्यकों के लिये असफल सावित हुए हैं, इसका कारण है उनका सत्ता से दूर रहना। किसी भी अल्पसंख्यक को खासकर ऐसे देश में जहाँ धर्म के प्रति जागरुकता बहुत शक्तिशाली हो वहाँ इन अधिकारों का निर्वाह करके अत्यन्त कठिन और मुश्किल भरा कार्य है। इसके लिए आवश्यक है कि इनको राजीति और सरकार में प्रतिनिधित्व का अवसर प्रदान किया जाए।

बहुसंख्यक को सौंपा है कि वे अल्पसंख्यक को न्याय, समानता और सुरक्षा दिला सकें। भारत के संबंध में आधुनिकता का सिद्धान्त राष्ट्र और राज्य के विरुद्ध इन लोगों को नैतिक संस्था नहीं बनाता और वह नैतिकता ही है जो कि बहुसंख्यकों से चाही गई है। इसलिये अल्पसंख्यकों को न्याय और समानता दिलाने के लिए नैतिक दावों की जगह विधायिका की प्रत्याभूति की जरूरत हैं।

उन्होंने पूर्ण बफादारी से बहुसंख्यक के शासन को स्वीकार किया है जबकि यह शासन मूलतः सांप्रदायिक बहुसंख्यक का है न कि राजनीतिक बहुसंख्यक का। इसलिए बहुसंख्यक का कर्त्तव्य है कि वे अल्पसंख्यकों का शोषण न करें। जिस क्षण बहुसंख्यक शोषण करना छोड़ देंगें उस क्षण अल्पसंख्यक, अल्पंसख्यक के रुप में समाप्त हो जायेंगे।

सरदार पटैल के नेतृत्व में संविधान सभी की कमेटी ने इसके गठन के दो उद्देश्य बताये एक यह कि धर्म राज्य का शोषण न कर सके और दूसरा, राज्य धर्म का शोषण न कर सके। इसी प्रकार गोविन्द बल्लभ पंथ ने जोर देते हुए कहा कि अल्पसंख्यक विषय संबंधी प्रश्न का संतोषजनक उत्तर ही स्वतंत्र भारत को स्वस्थ शक्तिशाली और उर्जावान बनायेगा। अभी तक अल्पसंख्यकों को सिर्फ उत्तेजित किया गया है, जिससे देश की अखंडता और एकता बुरी तरह प्रभावित हुई है। परन्तु अब ये आवश्यक हो गया है कि एक नया अध्याय शुरु किया जाये और हम सभी अपने अपने दायित्वों को समझें। जब तक

अल्पसंख्यक को संतृप्त नहीं किया जाता हम प्रगति नहीं कर सकते उसी प्रकार जैसे कि शोर से परिपूर्ण बातावरण में शांति की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

अल्पसंख्यक के लिए जिस उप-समिति का गठन किया गया था उसने अल्पसंख्यकों के लिए कुछ मौलिक अधिकार देने की बात कही। सलाहकारी समिति ने इसे स्वीकार किया एवं कुछ संशोधनों के बाद उसे निम्न रुप में संविधान सभा में प्रस्तुत किया।

1. अल्पसंख्यक की भाषा, लिपी एवं संस्कृति को हर प्रकार से संरक्षण दिया जाएगा एवं ऐसा काई कानून नहीं बनेगा जो इसे आघात पहुँचाए।

2. किसी अल्पसंख्यक पर उसके धर्म अथवा भाषा के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा और न ही उसे किसी शिक्षण संस्थान में प्रवेश को रोका जाएगा।

3.(अ) हर अल्पसंख्यकों को उसकी भाषा धर्म एवं जाति के आधार पर शिक्षण संस्थान की स्थापना का अधिकार होगा।

(ब) ऐसे किसी भी शिक्षण संस्थान को सरकरी सहायता देने में सरकार किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगी।

इस उपखण्ड को अनुच्छेद 24 के रुप में संविधान में शामिल किया गया बाद में प्रारुप समिति ने इसे अवलोकन किया और अतंत: इसे अनुच्छेद 29 व 30 का नाम दे दिया गया। संविधान सभा द्वारा उठाए गए इन कदमों के बाबजूद भी किसी अल्पसंख्यक को कोई राजनैतिक अधिकार नहीं मिले। अल्पसंख्यक शब्द का इस्तेमाल केवल अनुच्छेद 29 व 30 में किया गया। अनुच्छेद 366 जो कि केवल अल्पसंख्यक शब्द की परिभाषा देता है। यह सुविधा रेल्वे, आवकारी, डाकसेवाएँ एवं विशिष्ट शैक्षिणिक सहायता देने का प्रावधानर 10 साल तक के लिए किया गया। संविधान सभा ने अल्पसंख्यकों के लिए कोई राजनैतिक अधिकार नहीं दिए, सिवाए समानता के अधिकरों के जिन्हें अनुच्छेद 14, 15, 330, 335, 347, 350, अ और ब के अंतर्गत बताया गया है।

इस तरीके से अल्पसंख्यक के लिए एकरुपता एवं समानता के अधिकार तो दिए गए लेकिन राष्ट्र की एकता, अखंडता एवं प्रगति को संरक्षण देने के लिए उन्हें कोई राजनीतिक अधिकार नहीं दिए गए। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ सभी धर्मो को समान अधिकार देना है। लेकिन इसके विपरीत कुछ धर्मों को अधिक बढ़ावा दिया गया जिसके खिलाफ एस. गोपाल ने आवाज बुलंद की। इसी का दुरुपयोग करते हुए जो दल सत्ता में है वह किसी विशेष धर्म को बढावा देता है एवं अल्पसंख्यक को हानि पहुँचाता है।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने अल्पसंख्यक को प्रगतिशील बनाने के लिए अथक प्रयास किए किन्तु अल्पसंख्यक से जुड़े मूलभूत समस्याओं की अवहेलना की। अल्पसंख्यक को एक समान अधिकार देन ही उन्होंने इस समस्या का हल समझा परन्तु वह गलत साबित हुआ इसी कारण वश संविधान में प्रत्येक नागरिक को उसकी जात या भाषा के परे समान मौलिक अधिकार दिए गए।

सरकार का दायित्व किसी एक धर्म को बढ़ावा देना नहीं है अपितु हर एक धर्म को समान अधिकार देना है। संविधान में किसी भी भाषा को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं दिया गया है, अपितु भारतीय संविधान ने हिन्दी को सर्वाधिक उपयोग में लाई जाने वाली सरकारी भाषा का दर्जा दिया है।

केन्द्र सरकार अल्पसंख्यक को संरक्षण नहीं दे पा रही। इस कारण अल्पसंख्यक जातियां चिंतित हैं कि कहीं उनका, समूल सांस्कृतिक विनाश न कर दिया जाए। वे यह जानते हैं कि राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक विघटन उनके विनाश का कारण बन सकता हैं। इसीलिए यह तय है कि सरकार को अल्पसंख्यक के लिए आर्थिक संरक्षण देने की पुरजोर आवश्यकता है।

संघ परिवार ने दिल्ली उच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की जिसके तहत मक्का यात्रा में दी जा रही सरकारी रियायत को उच्चतम न्यायालय के उस आदेश की अवहेलना बताया जिसके तहत किसी धर्म को विशेष दर्जा नहीं दिया जा सकता। इसके विपरीत स्वयं हिंदुओं के ऊपर करोड़ों रुपए सरकार द्वारा खर्च किए गए जो कि 24 जनवरी 2001 प्रयाग में महाकुंभ में शामिल होने के लिए आए थे। इससे यह बात साफ है कि संघ परिवार हिंदुत्व कि स्थापना करना चाहता है जो कि भारतीय संविधान के अनुसार कदापि उचित नहीं है।

अल्पसंख्यकों के जनसंख्या वृद्धि से अल्पसंख्यक से राजनेताओं का वोट बैंक सशक्त हुआ है इसलिए राजनेता अल्पसंख्यकों को छूट देने की योजनाएँ बनाते रहते हैं हमें यह याद रखना चाहिए कि सभी अल्पसंख्यक समुदायों के साथ यही व्यवहार करते हैं और वे एक के बाद दूसरा वोट बैंक खरीदते रहते हैं तथा एक को असंतुष्ट छोड़ दूसरे की ओर मुड जाते हैं इसके परिणाम स्वरूप भारत एक असंतुष्ट समूहों का समूह बन गया है सीमाओं के बाहर के शरणार्थियों को भी भारत में रहने की अनुमति वोट के लालच में दे दी जाती है तथा स्थिति यहां तक पहुँच गयी है कि हिन्दु यह शिकायत करने लगे हैं कि भारत में तो अल्पसंख्यक होना ज्यादा अच्छा है क्योंकि पूरी राजनीति अल्पसंख्यकवाद तथा बहुसंख्यकवाद की अनुगामी हो गयी है।

अल्पसंख्यकवाद तथा बहुसंख्यकवाद इन दोनों आदर्शों में स्वतंत्रता पश्चात् महत्व

ग्रहण कर लिया है तथा इन्हें वोटों की लालच में राजनीतिक दलों के द्वारा बढ़ावा दिया है तथा राजनीति दलो द्वारा उनमें भेद बढ़कर अपना वोट बैंक सुनिश्चित किया है इससे यह सुनिश्चित होता है कि अल्पसंख्यक तथा बहुसंख्यक समुदाय दोनों में से, किसी को भी दिया गया संरक्षण असभ्यता को नहीं हटाती बल्कि इस भावना पर बल देती है कि किसी विशेष समूह को प्रोत्साहन किया जा रहा है तथा इसके देश को चिंताएँ बढ़ती है इसे हम एक उदाहरण द्वारा समझा करते हैं।

हमें स्वतंत्रत हुए 55 साल हो चुके हैं तथा तभी से कांग्रेस का शासन हैं अपने राज्य में चुनाव के दौरान अपने वोट बढ़ाने के लिए साम्प्रदायिक गतिविधियों में भी लिप्त हो गयी और उसने मुसलमानों को खुश करने के लिए कई नीति अपनाई काग्रेस ने मुसलमान पृथकतावादियों के समक्ष शाहवानों के निर्णय में घुटने टेक दिये थे तथा इस मात्रा पर छूट प्रदान की थी।

जहाँ राजीवगांधी मौलवियों को खुश करने में लगे हुए थे वही भारतीय जनता पार्टी ने अयोध्या में हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिए शिलान्यास को बढ़ावा दिया। इसने 'सहमत' को अपने अभिव्यक्ति के अधिकार के प्रयोग से रोका उसने अपने ईसाई धर्म को प्रोत्साहन करने की बात की।यह केरल में जो कि एक साम्प्रदायिक दल है इस में ही सशक्त हो गया पंजाब में मिण्डरवाल समस्या को पोषित किया इसने कश्मीरी पंडितों की दशा नजरअंदाज किया तथा साध्वी रितम्भरा तथा बाला साहब ठाकरे थे। आग लगाने वाले भाषण से साम्प्रदायिकता बहुत अधिक बढ़ी है।

शक्तिशाली समूह की अल्पसंख्यक समूह के प्रति पूर्वाग्रह और शत्रुता में विचारिक तथ्य एक प्रमुख तथ्य है बहुसंख्यक समूह अल्पसंख्यकों को निष्कासन अथवा धर्मांतरण के विकल्प प्रस्तुत करता है वरिष्ट समूह जिसकी स्थिति उच्च होती है हमेशा विभेद तथा पूर्वधारणाओं जैसी विधियों का प्रयोग करके अपने प्रतिद्वंदी को अयोग्य ठहराता है जब तक कि प्रतिद्वंदी उसके स्थान पर ठहराता है यह समूह मित्रवत रूप से काम करता है।

एक विशिष्ट प्रकार के अल्प संख्यक स्वयं को असुरक्षित महसूस करते हैं ओर यदि उनहें सही तरह से ना समझा जाए या उनसे सही व्यवहार ना किया जाति तो वे राष्ट्रीय आपत्ति पैदा कर सकते हैं या राष्ट्रीय जीवन को तनावयुक्त बना सकते हैं। असामान्य परिस्थितियों में अल्पसंख्यक सदेहयुक्त हो जाते हैं और एनमें काल्पनिक सत्र व्याप्त हो जाता है और इस कारण उनमें उच्च उतर भी व्यग्रता पैदा हो जाती है और उसके परिणामस्वरूप वे आक्रामण हो जाते हैं। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप बहुसंख्यक अल्पसंख्यों के प्रति शंकालु हो जाते हैं और इसकी एक क्रसिक प्रतिक्रिया होती है जिसका परिणाम दोनों पक्ष में सत्र तथा आक्रोश के यप में सामने आता है। इसके परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय लक्ष्य एक तरफ

हो जाते हैं ओर वयक्ति सामुदायिक तथा धार्मिक भावनाओं द्वारा निदेर्षशित होने लगते हैं वे षड़यंत्र की भावना से भयभीत हो जाते हैं। आगे इसकी यह प्रतिक्रिया होती है कि पराक्रम विकसित हो जाता है और सहादत पाने की आशा में अधर्म सहन करने तक के लिये सहमत हो जाते हैं। यह सिर्फ एक संक्रमणयुक्त स्थिति है ओर यदि समय से उपचार ना किया जाए तो यह समुदाय में उथल पुथल ला सकता है। तानाशाही देशों में अल्पसंख्यक समसया को तानाशाह उनके संपीड़न तथा अवशास.यन द्वारा सुलझा लेता है। परन्तु प्रजातान्त्रिक देशों में विधि को अल्पसंख्यक तथा बहुसंख्यक समुदायों के मध्य एक-शांत- मानवीय संबंधों की स्थिति लानी पड़ती है।

भारत में सामान्यत: ऐसी गंभीर समस्याएँ नहीं उत्पन्न होती फिर भी कभी-कभी अल्पसंख्यकों तथा बहुसंख्यकों के मध्य संदेश निर्मित हो जाता है, कुछ ऐतिहासिक कारणों से तथा कुछ मानसिय पूर्वग्रहों से। उदाहरण के लिये कोई मुसलमान कोई गुप्त सूचना पाकिस्तान में पहुँचा देता है तो उसका यह व्यक्तिगत कार्य बहुसंख्यक द्वारा सामूहिक गतिविधि के रूप में देखा जाता है जबकि वैसा ही कृत्य अल्पसंख्यक बहुसंख्यक समूह के सदस्य द्वारा किया जाता है तो इसे व्यक्तिगत कृत्य के रूप में देखा जाएगा। इसी प्रकार एक मुसलमान के प्रति छोटे से भेदभाव के मामले को बहुत अधिक बल दिया जाता है पर हरितन के साथ उसी प्रकार से कृत्य पर ध्यान नहीं दिया जाता। इस तरह यह साफ है कि कोई भी पक्ष को निदोष नहीं ठहराया जा सकता। पर वह मानना पड़ेगा कि राष्ट्रीय एकता तथा सद्‌भाव के लिये मुसलमान तथा दूसरे अल्पसंख्यकों को अपने आप को भारत की संस्कृति की मुख्य धारा से मिलाना पड़ेगा और उनहें सामाजित पारिवर्तनों के साथ खुद को बदलना पड़ेगा जैसे उन्हें परिवार नियोजन, विवाह विवाह विच्छेद, सिविल संहिता आदि के मामले में अपना दृष्टिकोण बदलना चाहिये।

अल्पसंख्यक समस्या और संभावित हल

जब से राष्ट्रवाद के सिद्धांत तथा राष्ट्रवाद की व्यवहारिक परिकल्पना का उदय हुआ है एक सामान्य धारणा कि अल्पसंख्यक अनुचित है कठोर लेकर सामने आई है 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में उदारवाद का सिद्धांत अल्पसंख्यकों की समस्या के वाहक के रूप में जाना जाता था जिसके अंतर्गत निम्नलिखित चार निराकरण करने का प्रयास किया गया था

1. एक साझा सरकार के अधीन कई राष्ट्रीयता की संरचना 2. जीवन के राष्ट्रीय पथ पर अल्पसंख्यको के धर्म परिवर्तन हेतु आंदोलन 3. जनसंख्या विनिमय 4. निष्कासन

हमारे देश में शक्तियों में विभिन्न केंद्र जो कि राजनैतिक तथा धार्मिक कारणों पर आधारित हो तब तक स्थापित नहीं हो सकते जब तक कि देश के विभिन्न समूह शिक्षा धन तथा क्षमता में

लगभग समान नहीं होगे। किसी अल्पसंख्यक समूह को किसी विशेष हित के आधार पर दवाने से देश साधनहीन हो जाएगा। हमें अल्पसंख्यकां की समस्या को इस दृष्टिकोण से देखना चाहिए कि प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय का एक कीमती तत्व है तथा देश में हर अल्पसंख्यक का एक विशेष योगदान है। धर्मनिरपेक्षता के संबंध में यह दृष्टिकोण व्यक्त किया जाता है कि यह विभिन्न अल्पसंख्यकों को प्रदान की गई एक छूट है। बहुसंख्यकों की राय में ऐसा कोई समूह जो अपनी पृथक पहचान बनाए रखना चाहते है उनके लिये खतरा है, ऐसी सोच प्रजातंत्र के लिये घातक है। दूसरी ओर अल्पसंख्यक समूहों को यह भ्रांति है कि बहुसंख्यक उन्हें पचा लेगें या निगल जायेगे।

मुस्लिमों, ईसाईयों, ऐग्लों इंडियनों तथा सिक्खों मं यह भावना व्याप्त हो गयी कि भारतीय संविधान के अनुसार उनके राय व्यवहार नहीं किया जाता है। मुस्लिम तथा भारतीय ईसाईयों में यह भावना विकसित हो गई है कि उन्हें केंद्रीय एवम राज्य सेवाओं प्रतिष्ठानों उद्यमों तथा निगमों इत्यादि उचित प्रतिनिधित्व के अवसर प्रदान नहीं किये जाते है। परिणामस्वरूप इनमें यह भावना घर कर गयी हे कि इन सेवाओं के लिये प्रयास करना व्यर्थ है।

अल्पसंख्यकों की यही शिकायत उद्योग, व्यापार तथा व्यवसाय के संबंध में भी है। आज कल कई उद्योगों, व्यापारों तथा वाणिज्यों हेतु विशेष लाइसेंस या परमिट प्राप्त करना आवश्यक होता है। अल्पसंख्यकों में यह भावना व्याप्त है कि लायसेंस या परमिट प्रदान सकते समय उनके साथ भेदभाव वरता जाता है और उचित न्याय नहीं किय जाता है अल्पसंख्यक समाज की विभिन्न क्षेत्रों में संविधान के निर्देशों के अनुसार प्रतिनिधित्व न मिलने के कारण अपने आपको अपेक्षित महसूस करते हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

वर्तमान के उचित अवसरों की कभी तथा अल्पसंख्यकों के शैक्षणिक पिछडेपन की वजह से उनकी स्थिति बहुत कठिन हो गई हे। राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था भारत के सभी वर्ग के व्यक्तियों में राष्ट्रीय भाईचारा निर्मित का सबसे प्रभावशाली औजार है संयुक्त राज्य अमेरिका तथा यू. एस.एस. आर. जैसे देशों में शिक्षा के द्वारा ही एकीकरण प्राप्त हुआ है। ऐसी शिक्षा पूरी तरह राष्ट्रीय तथा धर्मनिरपेक्ष होनी चाहिये तथा सभी समुदायों को समान अवसर प्रदान करने वाली होनी चाहिए। इसके साथ कुछ ऐसे साधन एक आंतरिम समय के लिये आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि अल्पसंख्यक समुदाय के व्यक्ति वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा मं सभी स्तरों पर उचित अंश प्राप्त कर सके विशेषत: चिकित्सकीय, अभियांत्रिक एवं शिल्प वैज्ञानिक शिक्षा में।

अल्पसंख्यकों को यह महसूस कराना चाहिये कि उनका भी राज्य पर उतना ही दावा है जितना

कि बहुसंख्यक समुदाय का। वास्तव में अल्पसंख्यकों तथा बहुसंख्यकों के बीच के सभी भेद धीरे-धीरे अदृश्य हो जाने चाहिये और व्यक्तियों को केवल उनकी योग्यता के आधार पर मान्यता मिलनी चाहिये। एक मध्य के समय के लिये ये आवश्यक होगा कि अल्पसंख्यकों के सदस्यों को कुछ वचाव उपलब्ध कराए जाऐं, विशेषत: मनोवैज्ञानिक कारणों को ध्यान रखते हुए जो 1947 के भारत के विभाजन से उत्पन्न हुए। इसके लिये यह सुझाव दिये जाते हैं कि -

1. अनुरूप प्रशासनिक उपायों द्वारा अल्पसंख्यकों को यह विश्वास दिलाया जाएगा कि उन्हें विभिन्न स्तरों में सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व मिलेगा।

2. परमिट एवं लाइसेंस समान रूप से वितरित किये जायें जिसका उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य पर हितकरी प्रभाव पडेगा।

3. सभी राष्ट्रीय पार्टियों को विभिन्न अल्पसंख्यकों को संसद राज्य विधानमण्डलों विभिन्न स्थानीय निकायों तथा विभिन्न राजनैतिक संगठनों में प्रतिनिधित्व के बारे में लगातार निरीक्षण करना चाहिये।

4. राष्ट्रीय त्योहार जैसे गणतंत्र दिवस उत्सव जिनमें भारत के सभी वर्ग भाग ले सकें. को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

5. जब भी सांप्रदायिकता का विकास होता है, अल्पसंख्यकों सबसे अधिक सहन करना पडता है। राज्य के पृथक एवं प्रमुख महत्व का प्रश्न यह होना चाहिये कि विधि एवं व्यवस्था बनी रहे। एक नागरिक को जीवन तथा संपत्ति की सुरक्षा का अधिकार है। वास्तव में राज्य के प्रति उसका दायित्व इसी आधार पर निर्भर करता है। कानून एवं व्यवस्था तभी संभव है जब नागरिक से प्रतिकार लेने का अधिकार ले लिया जाए भले ही प्रकोपन कितना भी गंभर क्यों न हो।

6. यदि कानून एवं व्यवस्था बनाए रखना राज्य का प्रथम कर्तव्य है तो जब भी दंगे होते है, प्राधिकारी अपने प्राथमिक दायित्व में असफल हो जाते है। व्यवहारिक रूप से यह दायित्व न्यायधीश तथा कलेक्टर का सभी जिलों में है तथा पुलिस कमीश्नर या ऐसे ही दूसरे प्राधिकारियों का महानगरों में इस प्रकार प्राधिकारियों को यह स्पष्टत: बता देना चाहिये कि जब भी नागरिक उपद्रव होगा तो यह माना जाएगा कि वे अपने प्राथमिक कर्तव्यों के निर्वहन में असफल रहे चाहे कोई भी कारण हो जैसे निर्णय का अभाव, अयोग्यता या कुछ मामलों में भेदभाव या भ्रष्टाचार मुख्य प्राधिकारी को उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए उन्हें शांति के भंग होने पर दण्ड मिलना चाहिये।

7. इस बिंदु पर महत्व देना आवश्यक है कि दो समूहों में साधारणता तब तक टकराव उत्पन्न नहीं होता जब तक कि काफी समय तक उन समूहों की धीमी-धीमी असंतुष्टि न हो। करीब सभी मामलों में

अफवाहें महीनों नहीं तो हफ्तों चलती है और यदि जिला न्यायधीश को यह जानकारी न हो तो यह एक बड़ी बुरी बात है। और यदि सही समय पर उचित कदम उठाए जाएं तों देगे कभी नहीं हो सकते और यदि जिला मजिस्ट्रेट का व्यक्तिगत रूप से दोषी ठहराया जाएगा तो वह स्थिति नियंत्रण से बाहर होने के पूर्व आवश्यक कदम उठाएगा।

इस बारे में मैं यह सुझाव दूंगी कि सिविल प्राधिकारी जैसे कलैक्टर व मजिस्ट्रेट को उत्तरदायित्व एवं प्राधिकार देने होंगे ताकि वह साफ तौर पर कानून एवं व्यवस्था बनाए रख सके। सभी पुलिस प्राधिकारियों को सीधे चार्ज दिया जाना चाहिये ताकि कोई एक दूसरे पर दोषारोपण न कर सके।

8. किसी भी दंगे के लोगों का बहुत छोटा समूह ही सक्रिय भाग लेता है जो कि पूरी जनसंख्या का 5% भी नहीं होते पर जब दंगें गुरू होते हैं तो दूसरे तत्व भी सक्रिय हो जाते हैं। कुछ लूट के लिये, व्यक्तिगत लेने के लिये और कुछ भावना के कारण सक्रिय हो जाते हैं। आदतन अपराधी जो दंगे शुरू करते हैं, संख्या में बहुत कम हैं तथा समान्यतः पुलिस स्टेशन के इनचार्ज उन्हें जानते हैं यदि इनचार्ज ये न जाने तो उनकी अक्षमता को प्रदर्शित करेगा और यदि स्वयं का भविष्य दांव पर लगे तो वे स्वयं आवश्यक कदम उठाएंगे। दूसरा उपाय जिसका प्रबल प्रभाव होगा वह है दण्डात्मक पुलिस को सीमित करना लगा दण्डात्मक कर लगाया जाना। अधिकतर क्षेत्र उपद्रव के विरोधी रहते हैं पर निष्क्रीय दर्शक बने रहते हें तथा कुछ अपराधी दंगे शुरू करते हें। ऐसे दण्ड का डर ऐसे अपराधियों पर रोक लगाएगा।

उत्पीड़न रोकने में सहायक सुझाव -

1. जिला न्यायाधीश एवं कलेक्टर को उनके क्षेत्र में होने के लिये उत्तरदायी बनाया जाए और दण्ड के रूप में उनका स्थांतरण तुरंत किया जाए। इसका तथ्य को उनके सर्विस रिकार्ड में भी दर्ज किया जाए जिससे वे निलम्बन, पदावनति तथा सेवा समाप्ति तक के लिये उत्तरदायी हो जाए।

2 पुलिस अधीक्षक को एक समानांतर तथा स्वतंत्र प्राधिकारी की तरह कार्य नहीं करना चाहिये तथा उसे जिला मजिस्ट्रेट के प्रति कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में जबाबदेह बनाना चाहिये और उसे भी तुरंत स्थानांतरित कर देना चाहिये तथा उन्हें भी निलम्बित, सेवा समाप्ति तथा पदवनति के लिये उत्तरदायी होना चाहिये।

3. प्रत्येक पुलिस स्टेशन के इन्चार्ज को उसके क्षेत्र की कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिये उत्तरदायी बनाना चाहिये और वह बुरे चरित्र के व्यक्तियों की सूचि रखे और थोड़े संदेह पर भी आवश्यक कदम उठाए ताकि शांति न भंग हो। उसे भी उपरोक्त प्रकार से दण्डित किया जाना चाहिये और अच्छे रिकार्ड पर उसे पदोन्नति मिलनी चाहिये।

4. ऐसे प्रयास भी करने चाहिये कि विभिन्न क्षेत्रो, जातियों तथा समुदायों को अधिकारियों का निचले स्तर पर मिश्रण हो सके।

5. उन क्षेत्रों में जहां बार-बार उपद्रव होते हैं या जहां उपद्रव बहुत हिंसक या राष्ट्र विरोधी हुए हों वहां दाण्डिक पुलिस तथा कर (Tax)अधिरोपित किया जाना चाहिये।

6. मुस्लिम नेता तथा बुद्धिजीवियों को बच्चों के प्राथमिक शिक्षा के लिए सौ प्रतिशत नामांकन हेतु व्यापक आंदोलन चलाये जाये।

7. तीन भाषा के सूत्र को लागू किया जाना चाहिए जिसमें उन राज्यों में उर्दु को दूसरी भाषा क दर्जा मिल सके जहाँ बच्चे मातृभाषा के रूप में उर्दु जानते हैं।

8. कक्षा छ: से दस तक नि:शुल्क पढ़ाये जाने से मुस्लिम बच्चे शासकीय तथा निजी स्कूलों की तरफ आकर्षित होंगे इसलिये मुस्लिम बच्चों को गैर संसाधन प्राप्त मदरसों से भी छुटकारा मिलेगा और इससे मदरसा व्यवस्था भी आधुनिक होने के लिए विवश हो जायेगी।

9. अधिकतर स्कूलों में रोजगार संबंधित तथा प्रशिक्षणात्मक शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे मुसलमान तथा दूसरे गरीब छात्र उनकी ओर आकर्षित हों। वर्तमान समय में यह देखा गया है कि विद्यालय तथा महाविद्यालय बहुसंख्यक क्षेत्र में होते हैं तथा पुलिस स्टेशन अल्पसंख्यक क्षेत्र में होते हैं। मुस्लिम द्वारा अधिशासी क्षेत्रों में अधिक शैक्षणिक तथा तकनीकी संस्थाएं खोली जानी चाहिए।

10. सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों में शिक्षा पूरी तरह धर्म निरपेक्ष होनी चाहिए जिससे अल्पसंख्यक समुदाय के पूर्वाग्रहों पर विजय पायी जा सके।

11. राज्य सरकार को अपनी नीति द्वारा (अ) सार्वजनिक रूप से असंवैधानिक अविधिपूर्ण और अपराधिक घटनाओं को रोकना चाहिए जिससे सांप्रदायिक सदभानाओं को ठेस न पहुंचे।

12. भारतीय संविधान के समानता और सामाजिक न्याय के उपखंड के अनुसार नागरिकों के लिए मानवाधिकार सिविल स्वतंत्रताएं मौलिक अधिकारों को पूर्ण रूप से रखा जाना चाहिए।

13. हत्या उत्पीड़न पूजा स्थल को नष्ट करना या पवित्र ग्रंथों को नुकसान पहुंचाना या किसी की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने की घटनाओं में से किसी के होने पर उच्च स्तरीय राज्य संस्थाओं द्वारा पूर्ण एवं सही अन्वेषण करवाना चाहिए और जब तक ऐसे अन्वेषण लंबित रहे तब तक उस स्थान केपुलिस अधिकारी एवं प्रसासनिक अधिकारी का स्थानांतरण कर देना चाहिए जिससे अन्वेषण में किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो सके। यह अन्वेषण जैसे ही पूर्ण हो उन व्यक्तियों को जो किसी भी संप्रदाय के क्यों न हों तथा उन अधिकारियों को इन सब के लिए जो उत्तरदायी हैं उनके विरूद्ध सक्त से सक्त कदम उठाना

चााहिए। तथा उन अधिकारियों को जो उसमे लिप्त हों उन्हे कठोर दंड देना चाहिए।

15. राज्य में साम्प्रदायिक एकता एवं नागरिकों को राष्ट्रीय कर्त्तव्य एवं दायित्वों के प्रति सचेत करने के लिए राज्य स्तरीय सभा का आयोजन करना चाहिए जिससे गैर राजनैतिक व्यक्तियों को जो विभिन्न संप्रदाय के हों को सम्मिलित करना चाहिए।

16. संबंधित राज्य के डायरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस को निर्देशित करना चहिए कि वो राज्य के पुलिस अधीक्षक तथा अन्य पुलिस अधिकारियों की समय समय पर विभिन्न सभाएं बुलाए जिसमें नागरिकों के अधिकारों एवं दायित्वों की जानकारी वह ले सके तथा उन्हें अधिकारों की प्रभावपूर्ण सुरक्षा के लिए निर्देशित कर सके ।

17. राज्य में शांतिपूर्ण वातावरण तथा सांप्रदायिक एकता बनाए रखने के लिए राज्य सरकार को विभिन्न स्थानों पर पर्चे इत्यादि छपवाने चाहिए और मीडिया द्वारा पूर्ण सहयोग लिया जाना चाहिए।

18. उन व्यक्तियों को जिन्हें किसी प्रकार की क्षति हुई है या मृत्यु हो गयी है उन्हें वैधानिक और विधिक आंकड़ो के आधार पर क्षति पूर्ति प्रदत्त की जानी चाहिए।

19. मौजुदा राज्य सरकार द्वारा अल्पसंख्यक बोर्ड या कार्पोरेशन बनाने का निर्णय लेना चाहिए और बोर्ड को अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली होना चाहिए जिससे अल्पसंख्यको का आर्थिक व सामाजिक रूप से विकास हो सके।

20. पश्चिम बंगाल, बिहार, आंध्रप्रदेश और असम की तरह प्रत्येक राज्य में भी अल्पसंख्यक कल्याण बोर्ड की स्थापना करना चाहिए जिससे अल्संख्यको की समस्याओं का समाधान हो सके।

21.अनुच्छेद 25 में परन्तुक है उसी प्रकार से अनुच्छेद 29 (1) में भी यह जोड़ देना चाहिए कि अनुच्छेद 25 के उपबंध (1) की कोई बात किसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगा यह राज्य को ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो सामाजिक सुधार या कल्याणकारी सुधार के लिए बनाया गया है।

22. राज्य तथा जिला स्तर पर अल्पसंख्यक न्यायालयों का गठन किया जाना चाहिए।

23. अल्पसंख्यकों को विशेष रोजगार के अवसर तथा प्रशिक्षण प्रदान किये जाने चाहिए तथा इनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए विशेष कर महिलाओं की शिक्षा पर।

24. जनजागरूता शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए जिसमें अल्पसंख्यकों पर हो रहे उत्पीड़न की जानकारी सरकार को हो सकें। और अल्पसंख्यक अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो सकें।

25. धर्म के नाम पर राजनीति करने वालों के खिलाफ कठोर कदम जैसे उन्हें आजीवन चुनाव

लड़ने से वंचित कर दिया जाना चाहिए।

26. अल्पसंख्यकों को विशेष संरक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे वे भी बहुसंख्यक वर्ग की तरह संपन्न और शिथिल हो सके और उनके मन में व्याप्त कुंठित भावनाएँ दूर हो सकें।

27. प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग के साथ सरकार द्वारा एक समान व्यवहार दिया जाना चाहिए यह अनुच्छेद 14 में भी कहा कि समान परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार हो जबकि होता यह है कि अल्पसंख्यकों में भी बहुसंख्यक वर्ग (मुस्लिम)को अधिकार सुरक्षा व संरक्षण प्राप्त है। ऐसा नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह अल्पों अल्पसंख्यकों के विरूध अन्याय है।

28. अल्पसंख्यकों को भी अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जाति की भांति ही संरक्षण मिलना चाहिए जैसे उनके लिए साकार द्वारा विशेष न्यायालयों का गठन किया है तथा अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम की तरह ऐसा ही अधिनियम अल्पसंख्यकों के लिए बनाया जाना चाहिए। जिसमें अल्पसंख्यकों के विरूद्ध होने वाले अपराधों को अजमानतीय तथा संज्ञेय बनाया जाना चाहिए।

29. अल्पसंख्यकों द्वारा उनके विरूद्ध होने वाले अत्याचार के रिपोर्ट करने पर बहुसंख्यक वर्ग का पुलिस अधिकारी लिखने से इंकार कर देता है अत: ऐसे थानों की स्थापना की जाये जिसमें अल्पसंख्यक वर्ग के ही व्यक्ति को नियुक्त किया जाये। जब तक ऐसी व्यवस्था न हो तो उन्हें थाने में ऐसे निर्देश दिये जाये कि जो ऐसी रिपोर्ट लिखने से इंकार करेगा तो उसे भी संज्ञेय तथा गंभीर अपराध माना जाये तथा उस अधिकारी को सेवामुक्त कर दिया जाना चाहिए।

30. अल्पसंख्यक आयोग तथा मानवाधिकार आयोग को वास्तविक न्यायालय की शक्तियाँ प्रदान की जायें। जिससे वे सृजनात्मक कार्यवाही कर सके। इन आयोगों को केवल न्यायालयों को मामला संदर्भित करने की बजाय उनका स्वंय विचारण तथा निर्णय का अधिकार होना चाहिए।

31. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के द्वारा धार्मिक जनसंख्या के आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग बनाये है तो फिर जब जैन समुदाय भी जनसंख्या की दृष्टि न केवल एक राज्य में में बल्कि पूरे राष्ट्र में अल्पसंख्यक हैं उन्हें सारे भारत में अल्पसंख्यक का दर्जा दिया जाना चाहिए। जिससे जैनों की शैक्षणिक, तथा धार्मिक संस्थाओं को पूर्ण संरक्षण प्राप्त हो सके।

32. ऐसा सुझाव देना शायद अवास्तविक नहीं होगा कि ऐसा कोई राज्य नहीं होगा जहां विजातीय विवाह की संस्था नहीं हैं भूख एवं काम आदमी की दो ऐसी नैसर्गक प्रवर्ति हें जो कि व्यक्ति के जीवन से तथा जातियों के विस्तार से जुड़े हुए हैं। मनुष्य ने ये समस्या विजातीय विवाह की संस्था विकसित कर

सुलझाया है किसी एक विजातीय विवाह समूह में सामाजिक तथा धार्मिक वर्जनाएं आदमी को परिवार या सामाजिक समूह में काम संबंध बनाने से रोक देती हैं। क्योंकि वयस्क पुरूषों को स्त्रियां बाहर से प्राप्त करनी होती हैं एक समू ह के अंदर काम की ईर्ष्या का एक मुख्य कारण हो जाता है भले ही यह काफी भी पूरी तरह से नहीं हटा।

33. हिन्दुओं में शरणार्थी धर्मो जैसे पारसियों, युहुदी तथा वहाईयों को प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं हैं तथा सहनशीलता भी विद्यमान है क्योंकि वे संख्यात्मक रूप से कम है तथा भले ही भारत में लंबे समय से रह रहे हैं उन्होंने भारत में अपनी जन्मभूमि के रूप में किसी भी भाग का दावा नहीं किया वह कभी भी इस विधि में लिप्त नहीं हुए इसलिए वह किसी भी डर कर सामना नहीं करने परन्तु मुसलमानों तथा ईसाईयों के प्रति हिन्दुओं में बैर की भावना है तथा मुसलमानों के प्रति यह भावना अधिक उग्र हैं।

34. जनसंख्या में अधिक कट्टर हैं उसमें कोई इया कोई शिक्षा तथा उसी प्रकार की और भी अन्य बातें नहीं है यही आज मुसलमानों की सबसें बड़ी बिडम्वना है। मुसलमानों के प्रति हिन्दू समुदाय के नकारात्क दृष्टिकोण का कारण। मुसलमानशासकों द्वारा कई हिन्दु मूर्तियों तथा मंदिरों को नष्ट कर दिया गया जाना, मुसलमानों द्वारा वहुविवाह कर सकना। मुसलमानों द्वारा गर्म निरोध के उपाय न अपनाकर खतरानाक रूप से संतान उत्पत्ति करना तथा भारत को अपनी जन्मभूमि न मानते हुए मुस्लिम देशों के प्रति निष्ठा रखना है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक जैसी कोई बात नहीं होनी चाहिए चाहे वह भाषा के आधार पर हो या फिर धर्म के आधार पर। भारत में निवास करने वाले सभी व्यक्तियों की केवल भारतीयता के नाम से पहचान होनी चाहिए। और संविधान के अनुच्छेद 29 व 30 में दिये गये केवल अल्पसंख्यको की सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक संस्थाओं के संगठन के स्थान पर सभी वर्ग के संस्थाओं को संरक्षण दिया जाना चाहिए। क्योंकि संस्कृति किसी लिपी या भाषा किसी धर्म या समुदाय विषेश की नहीं होती। बल्कि सारे देश की होती है। और शिक्षा का स्तर अल्पसंख्यको का ही नहीं बल्कि बहुसंख्यको का सुधारा जाना चाहिए। इससे संपूर्ण राष्ट्र का विकास होगा। अल्पसंख्यको पर हो रहे उत्पीड़न में व्यक्तियों की मानसिकता में ऐसा परिवर्तन लाने की आवश्यकता है कि सभी का धर्म एक है।वह है मानवता।

संदर्भ सूची

काणे, पी. वी. :हिस्ट्री ऑंफ धर्मशास्त्र, भाग प्रथम धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी अनुवाद)भाग प्रथम

चतुर्वेदी, एम. डी : भारतीय दण्ड संहिता] ए.एल. ए. पी. इलाहाबाद
: भारत का संविधान,]

डी, जे. ड. : कन्शट्रीट्यूशन आफ इंडिया

गौर, एस. एस.एच :पिनल लां आफ इंडिया, भाग -1 भाग द्वितीय दशम् संस्करण, लां पब्लिशर्स, इलाहाबाद

सिंह, महावीर :भारत का संविधान, भाग-1 प्रथम संस्करण ईस्टर्न बुक कंपनी, लखनऊ

पाण्डेय, जे. एन. :भारत संविधान, बत्तीसवाँ संस्करण सेन्ट्रल लां ऐजेन्सी, इलाहाबाद

भट्टाचार्या, टी. :भारतीय दण्ड संहिता , क्षितीय संस्करण पृ. 293सी. एल. ए. इलाहाबाद

मिश्रा, एस. एन. :भारतीय दण्ड संहिता एल.एल. ए. पी. इलाहाबाद

रतनलाल, धीरज लाल : भारतीय दण्ड संहिता 28 वां संस्करण (हिन्दी अनुवाद) बाधवा एण्ड कंपनी, नागपुर

गुप्ता, एच. पी : भारतीय दण्ड संहिता तृतीय संस्करण, ओरिएन्ट पब्लिशिंग कंपनी

रतनलाल धीरजलाल : भारतीय प्रक्रिया संहिता 15 वां संस्करण, वाधवा एण्ड कंपनी नागपुर

बावेल, वंसतीलाल, भारतीय प्रक्रिया संहिता प्रथम संस्करण, सेन्ट्रल लां एजेन्सी, इलाहाबाद

गौर, के. डी. : क्रिमिनल ला केसेज एण्ड मेटोरियल्स, द्वितीय संस्करण त्रिपाठी बम्बई
: ए. टेक्स्ट बुक आन इंडियन विनल कोड प्रथम संस्करण एन बी. टी. आई, नई दिल्ली

पांडे, राजेन्द्र : माइनरटीज् इन इंडिया-प्रोट्क्शन एण्ड बेलफेयर, पंचम संस्करण, ए. पी. एच. पब्लिकेशन, नई दिल्ली

मजीद अख्तर : नेशरू एण्ड माइनरटीज इडिंयाज पियूरल सोसाइटी एण्ड इटस् कान्सटीट्यूशनस प्रथम संस्करण कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली

इमाम, मोहम्मद : माइनरटीज् एण्ड दा लाँ, इडिण्यन लां इंस्टीट्यूट नई दिल्ली

कबीर, हूमॉयू : माइनरटीज् इन ए. डेमोक्रेसी प्रथम संस्करण किरमा के. एल. मुखोउपाध्याय कलकत्ता

अवस्थी, शैलेन्द्र कुमार :भारतीय दण्ड संहिता, भाग-1 अशोका लां हाउस, इलाहाबाद

ठाकुर, भूपेन्द्र : सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम प्रथम संरक्षण, लायर्स होम, इन्दौर

वसु, डी, डी : भारत का संविधान छठा संस्करण, प्रेंटिस हाल आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली

वर्मा, निरंजन : अल्पसंख्यक समस्याएँ और निदान प्रथम संस्करण संस्कृति शोध प्रतिष्ठान विदिशा

सोमरा, कर्ण सिंह : साम्प्रदायिक सद्भाव एवं राजनीतिक चेतना प्रथम संस्करण, प्रिन्टवैल प्रकाशन जयपुर

वर्मा, वेद प्रकाश : धर्म दर्शन की मूल समस्याएँ,प्रथम संस्करण हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली

जैन,सुरेशकुमार : अल्पसंख्यक समुदाय विधि संहिता प्रथम संस्करण, सुविधा लॉ हाउस, भोपाल

पाण्डेय जी. एस. : भारत का संविधान प्रथम संस्करण जयपुर लॉ हाउस पब्लिकेशन जयपुर

सिंह, मनोज कुमार : भारत में सामाजिक परिवर्तन प्रथम संस्करण आदित्य पब्लिशर्स बीना

राजकिशोर : अयोध्या और उससे आगे तृतीय संस्करण बाणी प्रकाशन नई दिल्ली

राजकिशोर : भारतीय मुसलमान मिथक और यथार्थ द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

मैथ्यू, पी.डी. : फ्रीडम ऑफ रिलीजन एण्ड ए डिवेट ऑन रिलीजियस् कन्वरशन प्रथम संस्करण, सामानिक

रामाचंद्रन :फन्डामेन्टल राइटस् एण्ड कन्शटीट्यूशनल रेमेडीज भाग II प्रथम संस्करण ईस्टर्न बुक कंपनी लखनऊ

सिरवई, एच. एम. : कन्शटीट्यूशनल लॉं आफ इंडिया प्रथम संस्करण, एन. एम. त्रिपाठी प्राइवेट लिमिटेड बम्बई

शुक्ला, वी. एन : दा कन्शटीटमूशन ऑफ इंडिया पंचम संस्करण, ईश्टर्न बुक कम्पनी लखनऊ

उपाध्याय, जय-जय राम : मानव अधिकार पहला संस्करण, सेन्ट्रल लॉं एजेन्सी इलाहाबाद

कपूर, एस. के. : मानव अधिकार पहला संस्करण, सेन्ट्रल लॉं एजेन्सी इलाहाबाद

त्रिपाठी, टी. पी. :मानव अधिकार प्रथम संस्करण इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन इलाहाबाद

लेख - निबन्ध

1. कोठारी, रजनी : ''क्लास एण्ड कम्यूनलिजम इन इंडिया'' जनरल आफ इकनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली अंक, क्रमांक 49 (दिसम्बर3, 1989)
2. लूथरा, वी पी. :रिलीजियस इम्पार्थलिटी सेमिनार में दिया गया भाषण, (इलाहाबाद, विश्वविद्यालय, 1967)
3. शाकिर, मोईन : सोशियल स्टस आफ कम्यूनलिजम, रिलीजन एण्ड सोसाइटी अंक 37 (दिसम्बर 1984)
4. शौरी, अरूण : इन दी नेम ऑफ मुस्लिम पर्सनल लॉ, टाइम्स ऑफ इंडिया, (मार्च 6, 1986)
5. अंसारी, ए. इकबाल: माइनरटीज् रिप्रेजेन्टेशन इन इंडियन लेजेस्लेचर
6. बाधवा, के. के : प्राब्लम ऑफ ड्राक्टिंग माइनरटीज् हिन्दुस्तान टाइम्स, सितंबर 21, 1986
7. हकसर, पी. एन : फान्डामेन्टलिज्म एण्ड सेक्यूलिज्म मैनस्टीम् मार्च 21, 1992
8. मेजर प्रायरिटिज : रिलीजन कन्टोल हिजक दा पोलिटी दा टाइम्स आफ इंडिया, न्यू दिल्ली मार्च 8, 2002 पृष्ठ 14
9. विजय, एस : अबर सेक्यूलर ओटाइज बाल्यूम 1/1 जन-जून 1983 पृष्ठ 1936
10. तालट, कमल : जनरल आफ स्टेट पॉलिटिक्स एण्ड एडमीनिस्ट्रेशन अंक 1/1 नं. 1 जन-जून 1983 पृ. 1-18

पत्र-पत्रिकायें

1. दा हिंदुस्तान टाइम्स
2. दा हिन्दू
3. दा स्टेटस्
4. दैनिक भास्कर
5. दैनिक नव भारत
6. विधि भास्कर
7. विधि आयोग रिपोर्ट
8. अल्पसंख्यक आयोग रिपोर्ट
9. मानवाधिकार आयोग रिपोर्ट
10. उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका
11. पालिटिक्ल एण्ड लॉ टाइम्स
12. यूनिक कम्पटीशन टाइम्स
13. सिविल सर्विसेज क्रांनिकल
14. किरन काम्पीटिशन टाइम्स
15. परीक्षा मंथन
16. प्रतियोगिता दर्पण
17. इंडिया टुडे
18. लीगल न्यूज एण्ड व्यूज

अन्य संदर्भ ग्रंथ

1. वेदव्यास	:	महाभारत, शाति पर्व 110/4
2. मनु	:	मनुस्मृति 4/239
3. चाणक्य	:	नीतिशास्त्र श्लोक 17/17
4. डा. रामस्वरूप	:	सर्वधर्म कोश

शब्दकोष

इनसाइलोपीडिया ऑफ बिट्रिनिका

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल सांइजेज

द न्यू वेक्स्टर शब्दकोष

आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी

कालिन्स कोविल्ड इंग्लिश लौवेज डिक्शनरी

वेवस्टर नयू इन्टरनेशनल डिक्शनरी